'रूप' की दृष्टि से भी विकास होगा किन्तु जिन कवियों को चुना गया है उनमें 'मिसिज' गिरजाकुमार माथुर (शकुन्तला माथुर) तक सम्मिलित हैं। भवानी मिश्र की वे कवितायें ली गई हैं जो उनकी प्रतिनिधि कवितायें नहीं हैं। अब रहे पाँच कवि उनमें रघुवीरसहाय तथा नरेशकुमार मेहता व्यक्तिवाद व रोमांसवाद के ध्वंसावशेष से लगते हैं। अब शेष ३ कवियों में हरिनरायण व्यास में सिद्धान्तों की घोषणा अधिक । शमशेर बहादुर में सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने की तीव्रता है पर वह गद्य में भी 'अदा' हो सकती थी, 'धर्मवीर भारती' में प्रभाव की प्रेषणीयता सबसे अधिक है, परन्तु उनमें 'हालावादी' संस्कार अवशेष हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेगी झोंपड़ी
मिट जायेंगे नीलम निलय भी ॥

—भवानीप्रसाद मिश्र

नये मनुज के हाथों में श्रम की रेखायें
आल्प्स रचेगा नए रूप में
राइन वोल्गा गंगा के वह इस धरती पर आज
लिखेगा नये जल छन्द

—नरेशकुमार

युक्ति के सारे नियन्त्रण तोड़ डाले
मुक्ति के कारण नियम सब छोड़ डाले
अब तुम्हारे बन्धनों की कामना है
खोल दो अब द्वार प्रेयसि प्रात का
मुक्त हो बन्दी अभागिन राह का

—रघुवीर सहाय

मुझे तो वासना का विष हमेशा बन गया अमृत।
बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद।

के पुनर्निर्माण की समस्या को तिलांजलि देकर उसे और भी एकाङ्गी असामाजिक और विकृत बनाने में दत्त चित्त रहे हैं और उनमें से कुछ अनेक सत्याभासों की आड़ लेकर साहित्यक प्रतिक्रियावाद को प्रश्रय देते रहे हैं"❀।

श्री शिवदानसिंह जी के अनुसार यह प्रयोगवादी साहित्य "त्रिशंकुओं" का साहित्य है। अतः स्पष्ट है कि अज्ञेय न काव्य वस्तु के क्षेत्र में, न साधारणी करण में, न समाजिक उत्तरदायित्व में कुछ "देन" दे पाये हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार कुछ निश्चित विषयों पर ही कविता हो सकती है यथा चंद्र, चंद्रिका कमल धवलगृह, नक्षत्र, निशा, सर, सरिता आदि किंतु इसके विषय में तो द्विवेदी जी ने भी कहा था कि कविता का विषय प्रत्येक वस्तु हो सकती है 'प्रयोगवाद' का प्रथम प्रयोग हुआ वस्तु के विचित्र चयन में, तो कहा गया प्रायः वे ही वस्तुयें कवि की भावनाओं का 'भवन' कर सकती हैं जो एक युग से काव्य की 'वर्ण्य' बनती आई हैं चाय, चम्मच पर लिखना व्यर्थ है, मैं कहता हूँ कि यह प्रश्न गौण है, जब प्रकृति की मनोरम वस्तुओं पर जॉनसन के समय का कोई कवि लिखता था तो वह उसका उपहास करता था, हमें जॉनसन नहीं बनना यद्यपि यह वैचित्र कुछ प्रशंसनीय नहीं है तथापि यदि कवि वस्तु के माध्यम से किसी सत्य की अभिव्यक्ति करता है, अपने हृदय पर हुई प्रतिक्रिया को संवेदनीय बनाता और यदि उसमें अपने प्राण का प्रवेग, हृदय का आवेश, तथा चिंतन का प्रकाश पाता तो वस्तु नगण्य और हेय होने पर भी प्रयोग§ सफल हो जाता है,

❀ आलोचना अंक द्वितीय पृष्ट ३

§ इस सम्बन्ध में एक लेखक ने ठीक ही कहा है—"जिस प्रकार युग के साथी होने के कारण, चाँदनी, झरने, हरी हरी वनस्थली, चन्द्र, सूर्य अपनी अनेकार्थी भावुकता के साथ हमारे ने साथी हैं और हम उनका राग मय वर्णन सामने रख सकते

गुनाहों से कभी मैली हुई वेदाग तरुनाई।
सितारों की जलन से बादलों पर आँच कब कब आई ?

—'भारती'*

अज्ञेय जी के प्रथम 'सप्तक' के कवियों में अधिकांश ( यद्यपि सब कवि नहीं हैं, राहों के अन्वेषक भी नहीं ) कम से कम सिद्धांत की दृष्टि से प्रगतिशील 'लेखक' विचारक अवश्य थे किन्तु दूसरे सप्तक में 'मनमौजी' 'रोमांटिक' या विशुद्ध रूपवादी formalists अधिक हैं, 'सप्तक' में नाम आ जाने से कवि को उपाधि मिल गई यही बहुत है किन्तु किसी भी दृष्टिकोण से 'प्रयोगवाद' की ये रचनायें प्रतिनिधि रचनायें नहीं मानी जा सकतीं। डा० रघुवंश ने 'प्रयोगवादी' कवियों की कड़ी आलोचना होते देखकर माता जैसी ममता दिखाते हुए कहा है—"इन प्रयोगशील कवियों से हमें पूरी आशा रखनी चाहिए क्योंकि जैसा कहा गया है कि इन सभी कवियों में सामाजिक चेतना के प्रति जागरुकता है, इनमें कोई भी उस कोटि का असामाजिक व्यक्तिवादी नहीं है जिस कोटि के कवि और कलाकार योरोप के पिछले युग से ही भिन्न वादों के अन्तर्गत हुए हैं।" डा० साहब यह तो मान ही लेते हैं कि इन कवियों में असामाजिक व्यक्तिवादी हैं तो अवश्य पर उस वे 'कोटि' का प्रश्न उठाकर 'सत्य की कटुता' को कम कर देते हैं, ठीक है, हमें प्रत्येक सामाजिक, असामाजिक कवि से आशा है, किन्तु क्या दूसरे तार-सप्तक के "अद्वैतवादी, गांधीवादी", रोमांसवादी, वासना के गायक कवि सजग साहित्यक कहे जा सकते हैं ? 'कोटि' का प्रश्न सापेक्ष्य है। अतः उस सम्बन्ध में यही कहना होगा कि इन कवियों में न सामाजिक उत्तरदायित्व को समझने की चाह है न अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने की। 'भारती' व 'शमशेर' में शक्ति है पर उन पर हाला, प्याला का प्रभाव अधिक है। यदि 'प्रयोगवाद की सूची में नामों की वृद्धि ही करनी थी तो अभी इनसे बाहर बहुत से कवि

* quoted by गोपाल कृष्ण कौल।

कवि प्रकृति में एक अपने हृदय की धड़कन सुनता है, जड़ प्रकृति व चेतन मानव-हृदय के इस भावात्मक सम्बन्ध को छायावाद में अभिव्यक्ति मिलती है। कवि 'निशा' में सुन्दरी के दर्शन करता है, सन्ध्या में अप्सरा का । चन्द्रमा रजत तारों पर पग रखकर उससे मिलने आता है। बालविहंगिनी से वह गाना सीखता है। प्रकृति प्रिया के साथ मिलकर वह अपने प्राण जुड़ाता है. 'छाया उसके लिए दमयन्ती' बन जाती है, और बादल 'उछलते हुए शशक'। जड़ता का लोप हो जाता है। कवि अपनी संवेदना से प्रकृति को प्राणवत्ता से रंग देता है अतः "अश्रु, मेघ के जलकण, ओस बिन्दुओं में तब कोई अन्तर नहीं रहता" रहस्यवाद के लिए इतना पर्याप्त नहीं, उसे प्रकृति के साथ नहीं 'पुरुष' के साथ तादात्म्य करना है। उसे उस 'अमर सत्ता' के केवल भान या आभास' से ही संतोष नहीं होता, उसे उसके विरह में रोता है, और अन्त में उसी में मिलकर शाश्वत आनन्द को प्राप्त करता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद वस्तुतः रहस्यवाद का सोपान हो सकता है छायावाद सौन्दर्यानुभूति को लेकर चलता है, प्रकृति में शाश्वत चेतना की अनुभूति मात्र को लेकर चलता है, रहस्यवाद सौन्दर्य व चेतना की अनुभूति या आभास से ही संतुष्ट न होकर उसमें अपने को मिला देना चाहता है, अपने अस्तित्व को मिटा देना चाहता है, इसके लिए उसका निवेदन विरह के रूप में चलता है और 'प्रिय की प्राप्ति' पर वह पुकार उठता है।

मिल गये प्रियतम हमारे मिलगये ।

—प्रसाद

पाठक देखेंगे कि रहस्यवाद की प्रथम श्रेणी अर्थात् जिज्ञासा मूलक रहस्यवाद व छायावाद में कोई अन्तर नहीं रह जाता इससे घबड़ाकर कुछ आलोचकों ने उसे केवल प्रकृति काव्य तथ

मिल सकते थे। गिरजाकुमार माथुर ने इधर संकेत भी किया है यथा डा० रांगेय राघव केदारनाथ, चन्द्रभूषण, त्रिलोचन शास्त्री आदि। इनमें केदार, रांगेय राघव तथा शास्त्री जी तो प्रयोगवाद के दूसरे सप्तक में आने ही चाहिये थे, क्योंकि इनमें सामाजिक चेतना अधिक मुखर है किन्तु इनके स्थान पर ऐसे कवियों को चुना गया है जिन्हें कवि कहना भी कठिन है। स्वयं गिरजाकुमार माथुर द्वितीय सप्तक की अधिकांश सामग्री को 'कैशोर' (एडोलेसेण्ट) तथा 'अपरिपक्व' मानते हैं उनके अनुसार "किसी की रचना में ऐसा प्रमाण नहीं कि प्रयोगशील परम्परा आगे ही बढ़ी है।" इससे स्पष्ट है कि प्रयोग का ह्रास दूसरे सप्तक में ही मिलने लगा।

'दूसरे सप्तक' में एक विशेषता अवश्य देखने में आती है कि इसके कवि अज्ञेय की तरह उलझी हुई अभिव्यक्ति को लेकर नहीं चलते, शमशेर, भारती आदि सांकेतिक पदावली में नहीं बोलते, गिरजाकुमार माथुर को 'अभिधा' से घोर घृणा जान पड़ती है, परन्तु उनका काव्य स्वयं ध्वनि काव्य का उत्तम उदाहरण उपस्थित नहीं कर पाता।'A bold error is less shameless की दृष्टि से दूसरे सप्तक के कवि अज्ञेय आदि कवियों से कुछ आगे अवश्य हैं। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र ने एक विनोद की बात कही है वे कहते हैं कि अज्ञेय का यह कहना कि आज का कवि स्पष्टता से नहीं कह पाता, संवेदना के उलझाव से वह पीड़ित है, गलत है, क्योंकि उसी अनुपात में पाठक का मन भी तो उन्हीं गुत्थियों में पड़ा हुआ है, वस्तुतः पाठक का मन उतना सन्देह ग्रस्त नहीं है जितना संवेदना की उलझन का बहाना लेकर इन कवियों का। दूसरे सप्तक में स्पष्टतः भावनाओं के साधारणीकरण में उतनी बाधा नहीं पड़ती जितनी अज्ञेय की कविताओं में, कारण यह है कि जब लेखक अपनी दुर्बलता छिपाना चाहता है तो वह उसे प्रयोगों के परिधान में लपेटता है, प्रतीकों में सजाता है, सत्य में स्वयं एक बल होता है, कबीर को देखिए, अटपटापन कबीर में सारे प्रयोगवादियों से

'शक्ति' हो। 'शक्ति' का आधार है राग या संवेदना और उसको विना स्पर्श किये हुए काव्य प्रलाप ही रहेगा। भावात्मक संतुष्टि के लिये जीवन से प्रेम होने की आवश्यकता है, अनुभूति का प्रवाह प्रयोग की पहचान स्वयं कर लेता है, तुलसी व सूर लिखने पूर्व, चम्मचों, जूतों आदि उपादानों को उपमाओं के लिये एकत्र नहीं करते थे, वे 'कुछ' कहना चाहते थे, किन्तु 'प्रयोगवादी' के पास कहना कुछ नहीं केवल प्रयोग की चेष्टा है। अतः 'सौन्दर्य' जो रागात्मक चेतना पर निर्भर करता है इस वैचित्र्य प्रदर्शन से दूर ही रहेगा। जीवन में विना प्रवेश पाये, मानवता का तार विना झंकृत किये काव्य 'आकाश कुसुम' ही रहेगा। प्रयोगवादी को सोचना होगा कि व्यक्ति यौनवर्जनाओं का पुंज मात्र नहीं है उसके सम्मुख इससे बड़े प्रश्न हैं, उसे एक ओर से सर्वग्राही पूँजीवाद से बचना है तो दूसरी ओर नूतन संस्कृति का निर्माण करना है जिसमें मनुष्य, मनुष्य हो, दानव न हो, इसके लिए एक ओर तो सारे अन्धविश्वासों का समाप्त करना है, क्रान्ति के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत करनी है तो दूसरी ओर मनुष्य को उसकी दुर्बलताओं से ऊपर उठाना है। मनुष्य 'काम' का क्रीट दास नहीं है और यह तो अज्ञेयजी भी मानते हैं कि 'कवि' के बाहर बाह्य संघर्ष है, श्रेणी संघर्ष के रूप में। 'यौन-वर्जना' भी श्रेणी संघर्ष का ही परिणाम होगा जिस दिन यह मिटेगा और जनता की 'जय' होगी, उस दिवस यह समस्या भी हल होगी। अतः संवेदना का उलझाव यदि तब भी रह जाता है तो वह अवशेष छायावादी घुमड़न ही समझनी चाहिए। यह सौभाग्य का विषय है कि अन्य किसी प्रयोगवादी में यह 'उलझन' उतनी नहीं है। प्रयोगवादी कवि न तो spent-up छायावाद से ही अपना 'पिंड' छुड़ा पाया है न प्रगतिवाद के अनगढ़पन से।

आशा यह थी कि दूसरे 'सप्तक' में (९ वर्ष बाद प्रकाशित) ...ीय युद्ध के पश्चात् की सारी युग-चिंतना प्रतिबिम्बित होगी,

अधिक था किन्तु वह "कुछ कहना चाहता था" जिन्हें परिस्थितियों को झुठलाना है उनके लिए पाठक का मन चाहे उलझा हुआ हो या निर्भ्रान्त हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता, अब हम सम्पादक 'अज्ञेय' के मौलिक तर्कों को लेकर उनकी परीक्षा करेंगे।

अज्ञेय के अनुसार प्रयोगवादी कवि के तीन उत्तरदायित्व हैं— काव्य विषय, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा संवेदना का पुनः संस्कार। काव्य विषयों के चयन में जैसा हमने देखा वैचित्र्य अधिक है, अति सामान्यीकरण की प्रवृत्ति श्रेष्ठ है परन्तु प्रतीक वही मार्मिक होते हैं जो चिर-परिचित होने के साथ साथ सादृश्य या साधर्म्य या प्रभाव को लेकर चलते हैं, प्रतीकों, उपमाओं, रूपकों आदि के माध्यम से कवि अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करता है किन्तु प्रयोगवादी इस क्षेत्र में जिन प्रतीकों को लेकर चलता है वे उसकी अस्पष्ट चिंतन-पद्धति में से न रंग का कार्य करते हैं न सौरभ का, न भाव-उद्बोधन का अपितु मनोविज्ञान की गुदड़ी में 'पिनों' से लगाये चमकदार छींट के टुकड़े से जान पड़ते हैं।

सामाजिक उत्तरदायित्व की दृष्टि तो प्रयोगवादी के पास है, जैसा कि हम कह आये हैं, प्रयोगवादी तो 'आस्कर वाइल्ड' के पंथ की ओर उन्मुख होता हुआ जान पड़ता है केवल 'प्रयोगों को लेकर न सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा होगा न कलात्मकता। भाव के सहयोग से ही 'प्रयोग सफल हो सकता है। संवेदना का पुनः सँस्कार तब स्वयमेव हो जायगा, साधारणी कारण की पद्धति प्राचीन चाहे भले ही हो गई हो परन्तु यह प्रयोग वादी भाषा व चिंतन का असाधारणी करण सफल नहीं हो सकता, कम से कम आशा तो यही है।

काव्य के लिये जिन 'रबर क्षेत्रों को लेकर प्रयोग वादी चलता है उनमें निराला के मुक्त छन्दों (यथा जुही की कली आदि में) जैसी न गठन है न प्रवाह, निराला के छन्दो में प्रत्येक शब्द दृढ़ ---र्ग में ईंट के समान चुना गया है, संगीतात्मकता तथा भावाक्षिप्तता

के पुनर्निर्माण की समस्या को तिलांजलि देकर उसे और भी एकाङ्गी असामाजिक और विकृत बनाने में दत्त चित्त रहे हैं और उनमें से कुछ अनेक सत्याभासों की आड़ लेकर साहित्यक प्रति-क्रियावाद को प्रश्रय देते रहे हैं"*।

श्री शिवदानसिंह जी के अनुसार यह प्रयोगवादी साहित्य "त्रिशंकुओं" का साहित्य है। अतः स्पस्ट है कि अज्ञेय न काव्य वस्तु के क्षेत्र में, न साधारणी करण में, न समाजिक उत्तरदायित्व में कुछ "देन" दे पाये हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार कुछ निश्चित विषयों पर ही कविता हो सकती है यथा चंद्र, चंद्रिका कमल धवलगृह, नक्षत्र, निशा, सर, सरिता आदि किंतु इसके विषय में तो द्विवेदी जी ने भी कहा था कि कविता का विषय प्रत्येक वस्तु हो सकती है 'प्रयोगवाद' का प्रथम प्रयोग हुआ वस्तु के विचित्र चयन में, तो कहा गया प्रायः वे ही वस्तुयें कवि की भावनाओं का 'भवन' कर सकती हैं जो एक युग से काव्य की 'वर्ण्य' बनती आई हैं चाय, चम्मच पर लिखना व्यर्थ है, मैं कहता हूँ कि यह प्रश्न गौण है, जब प्रकृति की मनोरम वस्तुओं पर जॉनसन के समय का कोई कवि लिखना था तो वह उसका उपहास करता था, हमें जॉनसन नहीं बनना यद्यपि यह वैचित्र कुछ प्रशंसनीय नहीं है तथापि यदि कवि वस्तु के माध्यय से किसी सत्य की अभिव्यक्ति करता है, अपने हृदय पर हुई प्रतिक्रिया को संवेदनीय बनाता और यदि उसमें अपने प्राण का प्रवेग, हृदय का आवेश, तथा चिंतन का प्रकाश पाता तो वस्तु नगण्य और हेय होने पर भी प्रयोग§ सफल हो जाता है,

* आलोचना अंक द्वितीय पृष्ट ३

§ इस सम्बन्ध में एक लेखक ने ठीक ही कहा है—"जिस प्रकार युग के साथी होने के कारण, चाँदनी, झरने, हरी हरी वनस्थली, चन्द्र, सूर्य अपनी अनेकार्थी भावुकता के साथ हमारे पराने साथी हैं और हम उनका राग मय वर्णन सामने रख सक

को लेप से उसे जमाया गया है तथा यथावसर ओज, माधुर्य आदि गुणों द्वारा उसे पुष्ट किया गया है जहाँ इसका अभाव है वहाँ निराला भी 'कठिन काव्य का प्रेत बन जाता है, अतः काव्य के साधारणी कारण के लिये गति, शक्ति, सहजता तथा नैसर्गिक मुखर-प्रवाह अत्यन्त आवश्यक है, उक्ति की वक्रता या विदग्धता तो पाठक सहन कर लेता है किंतु आड़ी सीधी लकीरों की बाढ़ पर बैठ कर बनाया हुआ शब्दों का 'पिरामिड' जिसके भीतर काव्य को 'चम्मच, चाय चप्पल' आदि सुला दिये जाते हैं, काव्य नहीं हो सकता अतः 'मुक्त छन्दों का मनमाना प्रयोग घातक है, कवित्त, सवैया, दोहा में प्रयोग करने के लिये कोई बाध्य नहीं करता किंतु केवल मुक्त छन्दों में ही प्रयोगवादी सफल हो सकते अन्य गीतों छन्दों आदि में सफल नहीं, यह कहना संकीर्णता तथा दुर्बलता है, काव्य के लिये चाहे तुक अनावश्यक को पर निश्चित पदयोजना, गति तथा शक्ति की बड़ी आवश्यकता है यदि यदि यह नहीं है तो प्रयोगवादी को कविता न लिखकर निबन्ध लिखना चाहिये।

डा० नगेन्द्र बौद्धिकता से असंतुष्ट हैं, बौद्धिकता वस्तुतः हार्दिकता का ही पर्याय होती है। प्रयोगवादी पद्धति ही अबौद्धिक है, संवेदन हमें डूबना सिखाता है, अपने 'स्व में, 'स्व में बाह्य वस्तुओं के प्रतिबिम्ब रहते हैं, बौद्धिकता के सूत्र से हम उनको चतुर मालाकार के समान एक सूत्रता देते हैं तब न अन्विति का अभाव रहता है न भावना का आतिशय्य-युक्त उद्वमन। 'प्रयोगवादी' नूतन प्रयोगों की खोज में रहता है, 'सुवरन की खोज में नहीं क्योंकि उसकी खोज तो कवि, व्यभिचारी और 'चोर करते हैं। 'प्रयोगों की यह प्रदर्शिनी काव्य को अजायबघर बनाने में संलग्न है। इस सम्बन्ध में श्री शिवदानसिंह का विचार है—"प्रगतिवादी या प्रयोगवादी लेखक नये प्रयोगों-नवीनता, उक्ति वैचित्र्य, और मनोवैज्ञानिकता के नाम पर साहित्य में मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व

कोण से इन्हें भी रहस्यवादी कह दिया जाता है परन्तु 'रहस्यवादी' वही है जो 'अव्यक्त' से सीधा सम्बन्ध जोड़कर 'आत्मा' की विरह-मिलन की स्थिति का चित्रण करे। अतः भक्ति-काल के कवियों को कबीर जायसी आदि से अलग श्रेणी में रखा जाता है। उपासना के क्षेत्र में ब्रह्म निराकार रह ही नहीं सकता उसमें गुणों का आरोप करना ही पड़ता है अतः निर्गुण से जब ब्रह्म सगुण हो जाता है तभी रहस्यवादी से साधक 'भक्त' बन जाता है।

रहस्यवाद की विभिन्न श्रेणियाँ—

साधना की दृष्टि से रहस्यवाद की विभिन्न स्थितियाँ बताई गई हैं।

( १ ) जिज्ञासा मूलक रहस्यवाद—इस स्थिति में सृष्टि प्रसार को देखकर उसके कारण पर कवि प्रश्न करता है, पुष्प, लता, तृण, वीरुध, गिरि, निर्झर का निर्मायक कौन है ? हरियाली में रस कौन भरता है, नक्षत्रों में प्रकाश कौन उड़ेलता है ?

कौन तम के पार रे कह ?

—निराला

विश्व के पलकों पर सुकुमार, विचरते हैं जब स्वप्न अजान
न जाने नक्षत्रों से कौन—सँदेशा मुझे भेजता मौन ?

'पंत'

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में,
तरल मोती सा जलधि जब काँपता।
तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज में—
ज्योत्सना के रजत पारावार में,
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
नींद के उच्छ्वास सा, वह कौन है ?

—महादेवी

का किनारा हो, बादल छाये हों, सुरा और सुराही हों, प्याला हो और 'वह' हों और बस" बस इसी में सब समाप्त।

रूढ़ियों के विरुद्ध लड़ना ठीक है परन्तु लड़ाई का ढंग एक और 'रुढ़ि' को जन्म दे, यह हानिकार होगा परन्तु कवि को तो एक बात ही दिखाई पड़ी—

विश्व तो चलता रहा है, थाम राह बनी बनाई।
किंतु इन पर किस तरह मैं—कवि चरण अपने बढ़ाऊँ।

शराब के प्याले में कवि का व्यक्ति डूबता उतराता रहा। और इसीलिये कवि को गम्भीर आवश्यता नहीं—

जब खोज किसी की हों करते, दृग दूर क्षितिज पर ओर सभी।
किस विधि से मैं गम्भीर बनूँ, अपने नयनों को नीचे कर।

'कवि' सुरा-सागर को सिर पर रक्खे भागता रहा, कहीं दूर, जहाँ 'पीने' में बाधा न हो और 'पिलाने वाला' हो। 'भार उतारने' के लिये सुरा-वितरण आवश्यक है ही।

मलयानिल को निज सौरभ दे—मधुवन कुछ हल्का हो जाता।
मैं करदेती मदिरा वितरित, जाता उर से कुछ भार उतर

'कवि यही करने को बाध्य है—

हम जिस क्षण में जो करते हैं—
हम बाध्य वहीं हैं करने को।

जागृति की चेष्टायें व्यर्थ हैं क्योंकि यह क्षण तो विस्मति का है (सन् ३५ का समय, जब टैम्स में भारत का रक्त निचोड़ा जा रहा था, आश्चर्य ?)

विस्मृति की आई है वेला, कर पाँथ न इसकी अवहेला।
आ भूलें हास रुदन दोनों—मधुमय होकर दो चार पहर॥

गांधी जी ने 'मधुमय" होने का आविष्कार किया होता तो सन् ४२ में quit India 'भारत छोड़ो' का आँदोलन न चलाना पड़ता।

'अंधी क्रान्ति, के दो ही रूप मिलते हैं (१) हालावाद (२)

किंतु प्रयोगवादी की दृष्टि थीसिस के विद्यार्थी के समान किसी नूतन 'प्रतीक' के संग्रह पर होती है, वह सोचता है कि पाठक इस कविता को पढ़कर मेरे इन प्रयोगों को देखकर मेरे सूक्ष्म निरीक्षण, मौलिकता आदि पर अवश्य प्रसन्न व मुग्ध होगा, किंतु यह नहीं सोचता कि मेरी कविता पढ़कर पाठक क्या सोचेगा? उसके हृदय पर क्या प्रभाव पड़ेगा? वह तिलमिला उठेगा उसमें मंथन उत्पन्न होगा या करुणा क्रन्दन? रहस्यवादी ने solitary Reaper में भी सौन्दर्य के दर्शन किये थे, कहा जायगा कि अलौकिक सौन्दर्य सत्ता के दर्शन करना रोमाँस है परन्तु अपनी अस्पष्ट और उलझी धारणाओं को व्यक्त करना क्या है? डा० नगेन्द्र ने यह ठीक ही कहा है कि प्रयोगवादी राग को भी बौद्धिकता के आवरण में लपेट देता है यह क्रम विपर्यय है, होना तो यह चाहिये था कि बौद्धिक मंथन को भी कवि इस प्रकार व्यक्त करता, कि वह पाठक के राग को उद्-बुद्ध कर सकता वस्तुतः प्रयोगवाद काव्य का प्रयोग उतना नहीं है, जितना "कविता द्वारा सोचने का प्रयोग"। ऐसा लगता है कि कवि अपने ही 'स्व' में डूब रहा है और जिस सूत्र को पकड़ता है वह टूट टूट जाता है फलतः 'वस्तु' तो दृष्टि से ओझिल हो जाती है और कवि प्रयोगों की धुन में नवीन नवीन उपमाओं और 'प्रतीकों की राशि लगाने लगता है। प्रयोगवाद की देन है. "प्रकृति सम्बन्धी कुछ सुन्दर कवितायें" जैसा कि हमने पहले भी कहा है किंतु यहाँ फोटोग्राफिक चित्रण ही अधिक है यदि कवि इनमें विचित्र उपमायें आदि न लाये तो इसने कम से कम इस क्षेत्र में तो प्रयोगवाद सफल हो ही सकता है।

---

है उस बुनावट के साथ हम आज बिजली का पंखा, रैफ्रीजेटर, फाउन्टनपेन, अटैचीकेस, बाइसिकल इत्यादि के अपर्याप्त सहवास से यथेष्ट भावमयता के अभाव में उत्तम चित्र सामने नहीं रख सकते"। (सद्‌गुरुशरण अवस्थी)

इसके अतिरिक्त फ्रायड इड, इगो तथा 'सुपरइगो' की व्याख्या करता है, ( Id, Ego. super ego) 'इड' के भीतर प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ रहती हैं इनकी तुष्टि न होने पर 'दमित इच्छायें 'चेतन मस्तिक के कार्य को संचालित करने लगती है । अतः वाह्य जगत को एक ओर रख कर हमें अपनी इन इच्छाओं की पूर्ति करनी होगी अन्यथा विभिन्न रोग उत्पन्न होंगे । 'इगो' सामाजिक तत्व है जो 'इड' पर अनुशासन रखता है। परन्तु 'इगो' का कार्य तभी सफल हो सकता है जब कि 'इड' की संतुष्टि होती है। 'इगो' के विकास में माता-पिता सहायता करते हैं। 'इगो' को पहचानना ही 'सुपरइगो' है। प्रारम्भिक अवस्था का यही चरित्र-विकास है। 'इगो' द्वारा 'इड' पर अनुशासन बढ़ते जाने पर तथा 'इड' की संतुष्टि में बाधा पड़ने पर 'विषय जाल' complex उत्पन्न होते हैं अतः इन विषम जालों के कारण ही व्यक्ति के चरित्र में असधारणता abnormality आ जाती है और इस 'असाधारणात्व' के सम्बन्ध में 'व्यक्ति' अचेत uncunscious रहता है क्योंकि यह अवचेतन मन का परिणाम होता है। इसी 'अवचेतन' के द्वारा उत्पन्न असाधारण क्रिया-प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण यौनिवादी यथार्थ-प्रधान साहित्य में होता है और चूँकि यह 'आदर्श के विरुद्ध नुष्य मन के पर्त खोलता है अतः यथार्थवादी कहा जाता है। शेखर व इलाचन्द जोशी के 'सन्यासी' आदि उपन्यासों में यही यथार्थवादी पद्धति अपनाई गई है, यह प्रकृतिवादी या सामाजिक यथार्थवाद से पूर्णतः भिन्न है।

फ्रायड के इस यौनिवादी विज्ञान को उसके शिष्यों ने भी पूर्णतया नहीं माना यद्यपि वे सब अवचेतन वादी रहे। इनमें 'एडलर' उल्लेखनीय है। किन्तु 'एडलर' भी कोई सामाजिक हल न खोजकर

न्तु चित्रण-सामग्री को ही ध्येय बना लेने पर अनर्थ ही होगा।
ग्रेस ने इसी लिये कहा था—

A general tendency of the images to forget the
atus of the metaphor or simile that introduced them
ıd assume an autonomy and a right to propagate.

अर्थात् रूपक, उपमा आदि का क्या स्थान है ? इसे कवि लोग
यः भूल जाते हैं, परिणाम यह होता है कि उनका रूप स्वतंत्र एवं
रपेक्ष्य हो जाता है। तो प्रयोगवाद 'वस्तुओं' के चयन में असफल
हीं होता वह 'माध्यम' के प्रयोग में असफल होता है, हम एक 'तृण'
। भी देखकर 'वितान' की कल्पना मन में ला सकते हैं, तार और
लगाड़ी' को देखकर हम 'गंतव्य' की मधुर कामना में डूब सकते
मजदूर की मैली 'टोपी' को देखकर हम शोषक के उष्णीस या हैट
। सामने रखकर दोनों की तुलना करते हुये भावना का प्रवाह बहा
कते हैं, सड़क पर गोबर समेटती हुई 'लड़की' तथा धैर्यधन गदहे
। पीठ पर डंडे जमाते हुये तथा स्वयं भी भारी बोझ से आहत
मिक को देखकर श्रम का महत्व हमारे मन में जग सकता है, और
त्र प्रकाश में प्रासादों की ईंट ईंट सामने नाचने लग सकती है
न्तु प्रयोगवादी एक दृश्य देखकर उसका प्रतीक या उपमा खोजने
लिए रुक जाता है, भावना के मुख को नहीं खुलने देता और
ही उसकी सबसे बड़ी असफलता है। काव्य की अपनी प्रक्रिया है
सके विरुद्ध चलने पर भाव क्रिया सफल नहीं हो सकती इस
्या की उपेक्षा करने पर जीवन के प्रति नवीनतम् दृष्टिकोण भी
ीकों के पिंजड़े में फड़फड़ाता ही रह जाता है। यदि हम 'प्रयो-
वाद' मूल में देखें तो उसमें 'प्रतीकवाद' किलबिलाता हुआ दृष्टि-
ोचर होता है। अज्ञेय जी जब यह कहते हैं कि 'प्रयोग' होते
ाये हैं' तो जैसे 'प्रतीकवाद' जैसे उनके 'अवचेतन' से बोलने
गता है। श्री शमशेरबहादुर सिंह जी के शब्दों में सुनिये' "मैं
गर दो शब्दों का प्रयोग करूँ तो ज्यादा अच्छा होगा। प्रयोग

# इस सम्वन्ध में प्रगतिवादी दृष्टिकोण

इस सम्बंध में प्रगतिवादी प्रवृत्ति यह रहती है कि वह मनुष्य की अंतः प्रवृत्तियों की स्वाभाविकता स्वीकार करे, "पुरुप व नारी का सम्वन्ध समाज के दो सजग व्यक्तित्वों का समझौता मात्र है, वह किसी आध्यात्मिक या पुनर्जन्म का नाता नहीं" यह उसकी स्पष्ट धारणा है अतः जव पंत ने यह कहा—

धिकरे मनुष्य तुम स्वस्थ, शुद्ध निश्चल चुम्वन ।
अंकित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर"
क्या गुह्य क्षुद्र ही वना रहेगा बुद्धिमान ।
नर नारी का यह सुन्दर स्वर्गिक आकर्पण"

तो इसमें मानव की प्राकृतिक वृत्तियाँ क्षुधा व काम को स्पष्ट प्रकट करने की प्रवृत्ति है, अवचेतन से लावा फेंकने की नहीं। प्रगतिवाद काम वासना पर अनुचित दवाव अवश्य स्वीकार नहीं करता किंतु उसका अर्थ फ्रायडवाद नहीं है किंतु डा० नगेन्द्र जैसे विद्वान भी इस प्रगतिवादी स्वाभाविक विचारधारा को फ्रायडवादी अवचेतनवाद से मिला देते हैं यह समीचीन नही हैं।❀ एक अन्य आलोचक ने निम्नलिखित पंक्तियों को प्रगतिवादी ठहराने का प्रयत्न किया है—

एक नारी सिर्फ नारी ही तुम्हें मैं जानता हूँ ।
तुम प्रणय की हो खिलाड़िन मैं तुम्हें पहचानता हूँ ॥

इसमें "नारी तुम नारी हो", आदि शक्ति 'गौरा पार्वती' नहीं, यह तो ठीक है, पर "तुम केवल प्रणय की खिलाड़िन हो" यह फ्रायडिन प्रभाव हो सकता है, प्रगतिवादी नहीं । अतः यौनवाद का यथार्थवाद अनैतिक, अवैज्ञानिक, हानिकर और अनुपयोगी है। वह मूलतः पूँजीवादी मनो विज्ञान है क्यों कि वह मनो-विज्ञान

❀ देखिये—विचार और अनुभूति पृष्ठ ६३

और 'प्रयोग' प्रयोग, जैसा कि अज्ञेय जी ने स्पष्ट किया है, निरन्तर होते आये हैं, 'प्रयोग' के अन्तर्गत मेरा निवेदन यह है कि वह रुझान है जो उपरोक्त दो कविता संग्रहों और आमतौर 'प्रतीक' की कविताओं में पाया जायगा और वह हिन्दी में नयी आज की चीज है, यह चीज योरोप की उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में पैदा हुई, पहले विश्व युद्ध के आस पास चढ़ी और अब अमरीका को छोड़कर अन्य जगहों में कमजोर पड़ गई है.........हिन्दी में इनका युग बाकी था सो आया, इसने शिल्प और प्रकार में अद्भुत सम्भावनाओं. ललित कलाओं के आपसी सम्बन्ध और कलाकार के दायित्व की एक निष्ठा पर जोर दिया। छन्दों में बोलचाल की बोलियों और नाटकीय तत्व का समावेश करके कला वस्तु को पहले से कहीं अधिक मार्मिक ढंग से उजागर करने की अद्भुत और अपार सम्भावनायें उपस्थित कीं.......इलियट और पाउंड और उनके अनुयायी याद आ जाते हैं, इन्होंने शिल्प में बड़ी मेहनत की, बड़ा श्रम किया' 'अद्भुत इनकी पकड़ है' छन्द, गति, लय और ताल का 'अक्षर का 'मर्म' ये जानते हैं मगर फिर भी जैसे कुछ नहीं जानते।'

इस उद्धरण से 'प्रयोगवाद बनाम प्रतीकवाद' की प्रवृत्ति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है। अज्ञेय का कृतित्व एक शिल्पी के नाते हिन्दी साहित्य में अक्षुण्ण है।(केवल शिल्पी के नाते।) किन्तु अज्ञेय तथा उन्हीं जैसे 'उलझी संवेदना वाले कवि 'किसी जीवन सत्य की किसी सीमा तक कलात्मक अनुभूति करके अधिक से अधिक लोगों के लिए प्रेषणीय नहीं बना सके।"

प्रयोगवाद की असफलता में एक और मोह है वह है प्रयोगों द्वारा परम्परा स्थापित करने का उनकी दृष्टि से आज का प्रयोग जिस युग में वह होता है, उस युग में उसका यथार्थ मूल्यांकन नहीं हो पाता (बच्चन ने भी यही कहा था कि दुनियाँ ने किसी कवि को आज तक नहीं समझा, देखिये इसी पुस्तक में 'हालावाद' शीर्षक

व्यवस्था के नीचे जो दुर्गंधि भरी हुई है उसके प्रति ये ध्यान आकर्षित करने में अवश्य सफल हुये। इन लेखकों ने वस्तु को वस्तु रूप में देखने की भी सफल चेष्टा की परन्तु वैज्ञानिक तथ्य का इनके साहित्य में अभाव रहा क्योंकि तब 'साम्यवादी व्यवस्था का रूप स्पष्ट न हो पाया था। फिर भी आदर्शवाद की दुर्बलता का पर्दा फाड़ कर इन्होंने साहित्य की भित्ति दृढ़ की। कथा-साहित्य की विशेष उन्नति हुई अब भी सबसे अधिक प्रगति कर रही है। इन यथार्थवादियों ने विक्टर ह्यूगो तथा अन्य आदर्शवादियों के लिये कहा था They are riding on horse-back over vacuum" और तब आदर्शवादी उनपर यह अक्षेप करते थे। They (यथार्थवादी) promised to give us a world instead they gave a hospital"* यथार्थवादी साहित्य की यह परम्परा प्रगति करती गई।

नाटकों में 'इब्सन' ने समस्यामूलक नाटक लिखे जिनमें अलंकृत भाषा तथा भावुकता के ऊहापोह के स्थान पर समस्याओं पर सरल, पर व्यंग्य मय भाषा में विचार होता रहा। इंग्लैंड में गाल्सवर्दी वर्नाडशा, थैकरे, (उपन्यास) आदि ने इस दिशा में अच्छा कार्य किया।

यथार्थवादी साहित्य को प्रेरणा मिली मुख्यतः रूस के समाजवादी लेखकों से, विशेषकर कथा साहित्य में। १६०८ ई० के पूर्व से ही गोर्की ने सामाजिक यथार्थवाद के पथ को प्रशस्त करना प्रारम्भ कर दिया था अतः भारत के लेखकों पर इनका अवश्यम्भावी प्रभाव पड़ा, परिस्थितियाँ अनुकूल थीं हीं। देश साम्राज्यवादी अँगरेजों के चंगुल में फँसा था, रेल तार डाक की सुविधा हो गई थी परन्तु धन खिंच खिंच कर विदेश जा रहा था, रीतिकालीन धारा चुपचाप बह रही थी पर दिन प्रति दिन क्षीण होती चली जा रही थी, लेखक ने सजग प्रहरी के समान अपने उत्तरदायित्व को समझना प्रारम्भ

* quoted by नंददुलारे वाजपेयी

लेख, यह 'दम्भ है, परिस्थिति विशेष में विद्रोही कवियों की अवमानना हो सकती है और हुई भी है, किन्तु वे युग के विरोध का कारण यह था 'कि उसके विप्लवकारी विचार सर्व साधारण को बोध गम्य और ग्राह्य होते थे और यह उन्हें प्रिय न हो सकता था।' रूप विधान को अत्यधिक महत्व दे देने तथा घोर व्यक्ति निष्ठता के कारण ही प्रयोगवादी ( अज्ञेय ) को 'त्रिशंकु ※ कहा गया है।

प्रयोगवाद के सम्बन्ध में रक्षात्मक समीक्षा के रूप में एक लेख तार सप्तक के कवि श्री गिरजा कुमार माथुर का है, हम पहले कह आये हैं कि 'तारसप्तक' में अपेक्षाकृत गिरजाकुमार को कुछ अधिक सफलता मिली है किन्तु कविताओं में ही इस लेख में नहीं। आपके अनुसार 'कालिदास द्वारा नये उपमानों का प्रयोग कालिदास के व्यक्तिगत शैली वैशिष्ट्य की सीमा में ही आता है' अवश्य आता है आपकी कविता में किये गये उपमानों का प्रयोग शैली वैशिष्ट्य की सीमा में आता, परन्तु है वह कौन सा तत्व 'कालिदास' में अधिक है जिसका कारण उसकी कविता हमें मुग्ध कर देती है और आपकी नहीं कर पाती, कारण स्पष्ट है 'अनुभूति की प्रेषणीयता का अभाव।' 'कालिदास' तो बुजुर्वा कलाकार था प्रयोगवादी तो सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने के लिए शपथ उठाता है किन्तु कविता तो जैसे कह उठती है—

उधर गान कहता है यदि रोना आवे तो आऊँ

रोदन का अर्थ है यहाँ सहृदयता, द्रवण शीलता, तन्मयता, तादात्म्य और यही 'प्रयोगवादी' में नहीं है, बौद्धिक चिन्तन और हृदय स्पंदन दो अलग वस्तुयें हैं।

'माथुर' साहब ने प्रयोगवाद की परम्परा दिखाते हुये बताया है कि छायावादी शैली के भीतर से 'निराला' ने सर्व प्रथम प्रयोग किये आपके अनुसार दूसरी आवश्यक बात यह है कि यह सभी ने

---

※ देखिये प्रतीकवाद या त्रिशंकुओं का साहित्य—
शिवदान सिंह चौहान

सड़े घूर को गोवर की वदवू से .दव कर।
महक जिन्दगी के गुलाव की मर जाती है।
अपरंच
साइत और कुसाइत क्या है?
जीवन से वढ़ साइत क्या है?
काटो, काटो, काटो करवी।
मारो, मारो, मारो हँसिया

उदयशंकर भट्ट ने 'कला' की उपेक्षा न करते हुए भी 'मजदूर' को वाणी दी।

मेरी वरसातें आँसू रे, मेरा वसंत पीला शरीर।
गरमी झरनों सा स्वेद, और मेरे साथी दुख दर्द पीर॥
दिन उनको, मुझको रात मिली, श्रम मुझे उन्हें आराम मिला।
वलि दे देने को प्राण मिले, हण्टर को सूखा चाम मिला॥

मांसलवादी 'अंचल' ने हिलती हड्डियाँ देखीं—

इन खलिहानों में गूँज रही, किन अपमानों की लाचारी।
हिलती हड्डी के ढाँचों ने, पिटती देखी घर की नारी॥
युग युग के अत्याचारों की, आकृतियाँ जीवन के तल में।
घिर घिर कर पुंजीभूत हुईं, ज्यों रजनी के छाया छल में॥

'अंचल'

'सुमन' ने 'लालसेना' की गति देखी—

युगों की सड़ी रूढ़ियों को कुचलती।
लहर की लहर से सदा ही मचलती॥
अन्धेरी निशा में मशालों सी जलती।
चली जा रही है वड़ी लाल सेना॥

× × × ×

हिंसा और अहिंसा क्या है?
जीवन से वढ़ हिंसा क्या है?

कविता के विपय, खेत, खलिहान, हल, वैल, हँसिया, हथौड़ा,

स्वीकार किया कि जीवन की नवीन परिस्थितियों के कारण नवीन विषय वस्तु और उसकी अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रयोगों की आवश्यकता हुई, इन नवीन परिस्थितियों का अर्थ है.........उनसे उत्पन्न नये अनुभव, सम्बन्ध, मानसिक प्रतिक्रियायें, सामाजिक समस्याय और समाधान तथा यत्न।' तीसरी बात आपने यह बताई कि प्रयोग, प्रयोगशील कविता के 'साध्य सत्य' को..........वास्तकविता के हजार पहलुओं को हजार प्रभावात्मक, रसमय ढंग से कहने के साधन हैं।'[1]

अपने लेख में माथुर महोदय वस्तुतः यहाँ दो बातें कहना चाह रहे थे (१) अज्ञेय जी द्वारा स्थापित 'सत्य' की परिभाषा का खंडन करना तथा 'प्रयोग' को संवेदना के उलझाव में ही सीमित न कर उसको व्यापक भावभूमि पर प्रतिष्ठित करना तथा परम्परा से आते हुए शैली वैशिष्ट्य के संदर्भ में ही प्रयोगवाद को रखकर उसका मूल्यांकन करना। इस सम्बन्ध में यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि 'माथुर' का 'सत्य' सामाजिक यथार्थ के अधिक निकट है, वह अज्ञेय 'स्कूल' की व्यक्ति निष्ठता तथा यौन वर्जनाओं की अस्वस्थता से अलग है अतः प्रशंसा का पात्र है। प्रयोगवाद 'शैली वैशिष्ट्य' है यह ठीक है किन्तु 'निराला' ने कुकुरमुत्ता और 'नये पते' तथा अन्य गजलों तथा मुक्तकों आदि का प्रयोग किया था वह किस लिये ? 'प्रयोग' की सिद्धि के लिये नहीं, ऐसा माध्यम खोजने के लिए जिसमें उनकी बात जनता समझ ले, अनामिका, तुलसीदास तथा रामकी शक्तिपूजा के 'निराला' व 'कुकुरमुत्ता' के 'निराला' में यही अंतर है जैसे सारी ऋजुता तथा 'प्रसादता' को लेकर व्यग्यों के वाण सम्हाँल कर निराला नूतन प्रयोगों में आ डटा है किंतु' प्रयोग वादी' यह नहीं कर पाता क्योंकि निराला का पुरुषार्थ, उसकी शक्ति प्रयोग के भीतर छिपे हुए अर्थ में हैं प्रयोगवदी में उस शक्ति के उस 'संवेदन' के दर्शन नहीं होते दूसरे 'प्रयोगवदी' प्रतीकों को

---

[1] काव्य में प्रयोगशीलता—

नरपेक्षता में नहीं किन्तु जब हम 'आनन्द' या करुणा को ना देते हैं तभी हम प्रतिक्रियावाद की ओर बढ़ना प्रारम्भ हैं।

तेवादियों पर एक आक्षेप यह है कि उसकी अभिव्यक्ति और कला हीन है, उसमें न प्राण है न संवेदना न मर्म , कोरी नाराबाज़ी है।

ह आक्षेप किसी सीमा तक ठीक है, प्रगतिवादी साहित्य का केवल अनगढ़ पन, भदेस, संवेदना का अभाव नहीं है, न व्यंग्य, व 'लालसेना' की प्रशंसा या 'लालतारा' की रचना ही वाद है। 'प्रगतिवादी साहित्य तभी प्रगतिवादी कहलायेगा कि वह साहित्य भी हो' इसके लिए प्रगतिवादियों को झोंप- की आग में महल जलाने के स्थान पर उनका यथार्थ अध्ययन करना होगा, कोरी बौद्धिक सहानुभूति अनुपयुक्त है। मखमली पर बैठकर, जन जीवन से दूर रह कर, केवल 'मूड' बनाकर ज जो कवितायें लिखी जा रही हैं उसी का परिणाम है कि प्रग- वादी साहित्य लांछित हो रहा है। 'प्रेमचन्द' महान् कैसे होगये वल अपनी अनुभूति की सचाई पर, प्राचीन कवि क्यों प्रिय हैं ? पनी अनुभूति के प्रति ईमानदारी के कारण लेखक जो कुछ सोचता है, हृदय से सोचता है, भक्तों को हृदय से अपना 'ईश्वर' प्रिय था अतः वे इतनी आत्मविभोरता ला सके, 'भूषण' व 'लाल' हृदय से वीर रस का चर्वण करते थे अतः वे अपने काव्य में ओज व उत्साह भर सके, यहाँ तक कि रहस्यदर्शी कवि हृदय से रहस्य के प्रति आसक्त थे, इसीलिये असाधारणीकृत 'वस्तु' के प्रति लिख कर भी अपनी अभिव्यक्ति सफल बना सके और आज हमारा 'वर्ण्य' वह 'जनता जनार्दन' है जिसका अध्ययन यदि हम करें तो अनुभूति की सचाई के कारण हलके स्पर्श से भी, निम्नतर कला- त्मकता से भी मानव हृदयों में संवेदना के सागर उत्पन्न कर सकते

साध्य बना कर चल पड़ता है, मैं यह नहीं कहता कि सब कवि असफल हुए हैं किन्तु समष्टि रूप से 'प्रयोगवाद' में शक्ति, तथा स्पन्दन का अभाव है। माथुर साहब के अनुसार यदि प्रयोगवादी कहीं 'रसमय' मार्ग को अपना पाता तो इतनी विडम्बना का कोई कारण नहीं था, खेद यही है कि प्रयोगवाद की असफलता का मुख्य कारण उसकी रस-हीनता है। असाधारणीकृत भावनाओं का पुंजी-भूत प्रयोगवाद अधिकांश में कौतूहल का विस्फारक अवश्य बना हुआ है। यह ठीक है कि परिस्थितियों के बदलने पर भावनाएँ बदलती हैं और तब अभिव्यक्ति का माध्यम भी बदलना चाहिये हम 'सूर के पदों' को आज सफल माध्यम नहीं बना सकते किन्तु प्राचीन प्रतीकों या प्राचीन माध्यम की भित्ति पर ही यह हो सकता है, आकाश में चिन्तन का तार बाँधकर उस पर 'कलाबाजी' करना व्यर्थ और उपहासास्पद है। माथुर साहब ने जिस बोधगम्यता communication पर सबसे अधिक जोर दिया है उसी का प्रयोग-वाद में सब से अधिक अभाव है। मुक्त छन्दों के विषय में हम कह आये हैं कि मुक्त छंद हो अवश्य पर उनमें प्रवाह होना चाहिये मुक्त छन्दों का लिखना मात्रिक या वार्णिक छन्दों के लिखने से कहीं अधिक कठिन होता है कारण यह है कि मात्रिक छन्दों में जहाँ मात्राओं, तुकों आदि का बंधन है वहाँ मुक्त छन्दों में नीरसता तथा भाव हीनता, अनगढ़पन तथा व्यर्थ शब्द व्यय का खतरा है, किस पंक्ति को कहाँ से तोड़ दिया जाय? किस पंक्ति को कहाँ तक विस्तार दिया जाय ताकि उसमें प्रभाव उत्पन्न हो सके इसका ध्यान रखना साधारण नहीं है। निराला जी सफलता का रहस्य यही है अतः मुक्त छन्द हो या अमुक्त छन्द, कविता यदि कविता है और यदि वह गद्य से किंचित भिन्न है तो वह अपने संगीत व प्रवाह के कारण ही, यह पिष्ट पेष्टित सत्य सदा नवीन रहेगा।

प्रयोगवादी कवि के अनुसार प्रयोग को दो बातों से खतरा है (१) वादियों से, (२) साइन बोर्ड वाली मनोवृत्ति के आलोचकों से।

# प्रयोगवाद

छायावाद की वायवी, प्रतीकात्मक सूक्ष्म शैली तथा रोमांटिक दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया 'प्रगतिवाद' में हुई किन्तु जैसा डा० नगेन्द्र ने लिखा कि 'प्रगतिवाद' 'छायावाद' का गला घोंट कर आया, यह समीचीन नहीं, वस्तुतः छायावादी काव्य ने जिस धूमिल वातावरण का सृजन किया उसमें उसका स्वयं गला घुट जाना स्वाभाविक था, जीवन का अंचल छोड़कर जब कविता आकाशचारिणी हो जाती है तब यही होता है, तो प्रगतिवाद ने एकान्त-अन्तर्मुखी जीवन की घुटन से निकाल कर मुक्त वातावरण में कवि को आने का आवाहन किया, कुछ कवियों ने अपनी कल्पना के वातायन से झाँक कर देखा किन्तु उनकी प्रिय पीड़ा ने उन्हें पीछे खींचा और वे वहीं रह गये कुछ वाहर निकले, 'ग्राम्या' की छवियों को अंकित कर पुनः उसी 'गुफा' में लौट गये केवल 'निराला' ललकारता रहा और प्रतिध्वनि के खोखलेपन पर विक्षिप्त बन बैठा।

सूक्ष्म सौन्दर्य अंकन के स्थान पर समष्टिवादी कवियों ने क्रांतिकारी कविताएँ दीं किन्तु अनुभूति के अभाव में गद्यात्मकता, गहन बुद्ध्यात्मकता, सिद्धान्त-घोषणा तथा प्रचार के आधिक्य से वे कला के स्तर से न बोल सकीं। जो एकरसता (Monotory) छायावादी शैली में आरही थी वही प्रगतिवादी शैली में आई, 'वर्ण्यवस्तु' आकर्षक तथा समयानुकूल होने पर भी प्रतिभा तथा साधना के अभाव में प्रभाव की प्रेषणीयता न आ सकी 'नारेवाजी' से कविता-कामिनी का गला सूखने लगा कल्पना किशोर कवियों को अनगढ़, भदेस तथा अनियंत्रित विस्फोटों में शान्ति न मिली दूसरे शब्दों में वह आत्म-विश्वास के अभाव में मार्क्सवादी नुस्खों को रटता रहा जो

दोनों तत्वों से असहमत होने का कोई कारण नहीं परन्तु ये दोनों तत्व 'स्वयं' सतही हैं क्योंकि काव्य की कसौटी प्रभाव है न कि प्रयोग। प्रभाव के लिए ही प्रयोग की साधना करनी होगी, यह निश्चित है कि प्रयोगवाद में प्रभाव का अभाव है, अच्छा होता, यदि 'प्रयोगवाद' रक्खा जाता इसके कारण क्या हैं, यह मैं बता चुका हूँ, प्रकृति वर्णनों में कुछ सजीविता अवश्य है परन्तु वह तो अभी प्रयोग कालीन ही है, रही दूसरी बात—उसका उत्तर यह है कि आलोचकों से भय क्यों? अज्ञेय ने सम्पादन करके कुछ "अज्ञात कुल शीलस्य, को कवि बना दिया और चाहे वे सतह पर झख (मछली) मारने वाले हों या गोताखोर हों, उनका बार बार नाम लेकर कम से कम प्रचार तो करते ही हैं और अज्ञेय भी स्वीकार कर ही चुके हैं कि "बदनाम गर होंगे तो क्या नाम न होगा?" यह ठीक है कि ध्वंसात्मक आलोचना सृजनात्मक प्रतिभा की चमक को नष्ट करती है, प्रोत्साहन की आवश्यकता है परन्तु तभी जब "सुपथ" पर चलने का प्रयास हो, काव्य के मूल 'तत्व' की अवहेलना कर जो कवि साधन को ही साध्य स्वीकार करता है, केवल रूप की असफल और काव्य प्रवृत्ति के विरुद्ध साधना कर प्रशंसा चाहता है, वह आलोचक से 'न्याय' नहीं माँगता। छायावाद के समानान्तर प्रयोगवादी कला तभी खड़ी हो सकेगी जब वैचित्र्य कम होकर हृदय व मीत्तपू दोनों की साधना निखर हो उठेगी और सामाजिक उत्तरदायित्व तभी निभेगा जब स्पष्ट समझना होगा कि कवि का कर्त्तव्य क्या है? प्रयोगों की कारा में 'सत्य' के प्रकाश को बन्द नहीं किया जा सकता। किन्तु हम निराश नहीं हैं, आलोचक का क्षोभ 'असत्य' के प्रति होता है, 'सत्य' के प्रति नहीं।

आत्मा का किसी शक्ति से मिलन नहीं जो उन्हें चरम सुख की ओर प्रेरित करे, जहाँ महासुख है, वरन् उनमें बुद्धि मन और श्रद्धा का लय हैं, और वे 'समरस' में तन्मयता का अनुभव करते हैं, और यह स्पष्ट ही उपनिषद् का चिंतन है। प्रसाद में पितृसत्ताक और मातृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रतिविम्ब देखना वाल की खाल निकालना है, क्योंकि श्रद्धा न मातृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रतीक है, न मनुपितृसत्ता का ही। कामायनी की कथा में स्पष्ट ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। वल्कि यह चिंतन कि देवजाति के समाज में मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी, यही भूल है। इन्द्र के उत्थान के साथ ही समाज में पितृसत्ता का उदय हुआ है और मनु का उत्थान समाज में वर्णों की स्थापना है। वर्णों की स्थापना समाज के उत्पादन के विषम वितरण का प्रतीक है।

पन्त का मानवतावाद, महादेवी का दुःखवाद, निराला का अद्वैतवाद प्रत्येक में जहाँ व्यक्तिगत विचारों और अनुभूतियों के कारण भेद रहा है, वहाँ इन सवके मूल में वैष्णव सहिष्णुता रही है और उसी के वदले हुए रूप ने अपने को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। पंत की कविता का मूलस्वर कभी नहीं वदला। वे सदैव ही ईश्वरवादी रहे, और यद्यपि अपने मध्यकाल में उन्होंने विश्व-दैन्य से अधिक व्याकुलता ग्रहण की तथापि उनका मूलस्वर कभी भी नहीं वदल सका था।

आज प्रश्न उठता है कि क्या यह ईश्वरवाद, यह दुःखवाद, यह अद्वैतवाद समाज को आगे ले जाने में शत्रु है? श्री उपाध्याय ने इस प्रश्न का अच्छा विवेचन किया है और यहाँ मेरा मत उनसे एक है कि नहीं; यह कोई वंधन नहीं है। युग का वंधन हमें प्रत्येक लेखक के विषय में देखना होगा। जो महान प्रेरणा हमें इन लोगों ने दी है उसे सहज छोटा नहीं कहा जा सकता। पंत ने अथक संघर्ष करके आधुनिक काव्य को मुक्त किया भाषा को गढ़ा, उसे आकार दिया। कुछ विकृत समाज शास्त्रियों का

ने "लोकमंगलवाद" का केवल संकुचित दृष्टिकोण सामने रख कर चले और इन्होंने 'निवृत्ति' व 'प्रवृत्ति' पक्षों को दो विरोधी शिविरों में रखकर भ्रान्त धारणाओं को जन्म दिया 'सूरदास' तथा रहस्य-वादी कवियों के मुक्तक काव्य के साथ इसीलिये वे उचित न्याय न कर सके और "आलोचना के क्षेत्र में भी एक वर्ग को व्यर्थ नीचा देखना पड़ा।"

## फारस में रहस्यवाद का विकास

इस्लाम में आत्मा ( रूह ) व 'परमात्मा' का सम्बन्ध "बन्दा व मालिक" का सम्बन्ध रहा। उपासना प्रधान इस्लाम में रहस्य का स्थान ही कहाँ था, वहाँ तो पैगम्बर की आज्ञाओं पर चलना तथा उसके माध्यम से ही 'खुदा' को पाने की चर्चा रही। फारस में 'सूफियों' ने रहस्य परम्परा स्थापित की। ईरान पर भारतीय अद्वैत सिद्धान्त का प्रभाव प्रारम्भ से ही रहा। 'यूलुस' यूहन्ना पर बौद्धों का। यूनान के प्लोटोनिस तथा डायनोसिस पर अद्वैत वेदान्त का प्रभाव लक्षित होता है। प्लोटिनिस को सूफी 'शेख अकबर' कह कर आदर देते हैं।+ इस्लाम के आचारवाद के विरुद्ध सूफियों में गुह्य साधना, चमत्कार, सुरा-प्रेमोन्माद चला, इसी को धार्मिक रूप दे दिया गया और लौकिक मादन भाव ही रहस्यवाद का आधार बन गया। सेनानी याह्वोवा ने इन्हें तलवार की शक्ति से दबाना भी चाहा परन्तु इनका विकास न रुका, ये साधक आत्मा व परमात्मा के प्रेम के गीत गाते ही रहे। 'आत्मा' के प्रेम व विरह को अभिव्यक्ति मिलती रही, सूफी उस रहस्यमय प्रिय का आभास प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में पाकर हर्षोन्मत्त होता था, उस आभास को पाकर उसे 'इलहाम'× हो आता था और

---

+ तसव्वुफ़ और सूफ़ीमत—चंद्रावली पांडेय।

× मज़ा शराब ( प्रेम का नशा ) का कैसे कहूँ तुझ से ज़ाहिद !
हाय कम्बख्त तूने पी ही नहीं ॥

उस तन्मयता की अवस्था में वह रूह व खुदा में कोई अन्तर न पाता था। सूली पर मंसूर पुकार उठा "अनहलक़" अर्थात् मैं ही खुदा हूँ, यह अहम् 'ब्रह्मास्मि' ही था। ईरान में इस्लाम का आतंक था ही, सूफियों ने तत्पश्चात् कुरान की अपने ढंग से व्याख्या की और इस प्रकार मुहम्मद, इब्राहीम आदि सब पैगम्बर भी 'सूफी' मान लिये गये।

परन्तु इस्लाम में 'प्रेम' का दौरा चलाने वाले जूलनून तथा 'रिज़ा' सम्प्रदाय वालों को इस्लाम-शासकों ने कड़ा दण्ड दिया था। इसी रिज़ा सम्प्रदाय में 'यजीद' ने अद्वैत दर्शन का प्रचार किया था, "उसी की ज्योति कण-कण में देखी जाने लगी।" प्रेम प्याला चल पड़ा, बाह्य कर्मों की उपेक्षा हुई, एकान्त-सेवन बढ़ा, 'यजीद' व 'जूलनून' ने गुरु की महत्ता स्थापित की, मुल्लाओं के आचारों की पूर्ण निन्दा की गई 'हल्लाज' ( मंसूर ) ने अपने प्राण देकर भी 'सूफ़ी' मत का गौरव स्खलित न होने दिया था। आगे चलकर 'इमाम गज़ाली' ने सदा के लिये इस्लाम व सूफीमत का समन्वय कर दिया। रहस्यवादी कवियों में हाफ़िज, उमर खैयाम आदि प्रसिद्ध कवि हुये।

७ वीं शती के बाद से सूफियों का भारत में निश्चित रूप से प्रवेश होता रहा। सूफियों के चमत्कार हमारे यहाँ प्रसिद्ध हैं, तुर्क शासक इन्हें बहुत मानते थे। शेख सलीम चिश्ती भी सूफ़ी ही था। हमारे यहाँ सूफियों ने साहित्य में एक परम्परा ही बना दी, कुतुबन, जायसी, उस्मान, कासिमशाह, नूरमुहम्मद, उस्मान प्रसिद्ध प्रेममार्गी कवि हुये। लौकिक प्रेम कहानियों का आधार लेकर, इन सूफियों ने आध्यात्मिक प्रेम को स्पष्ट किया। इन्होंने फारसी 'मसनवी' शैली में हिन्दुओं की प्रेमगाथाओं को पद्य-बद्ध किया और इसी के सहारे अपने 'दर्शन' को वाणी दी। प्रेममार्गी सूफियों ने "प्रेम की पीर" को जगाया और 'आत्मा' किस प्रकार उस परम सत्ता ( प्रिय ) को प्राप्त कर सकती है, किस प्रकार उसमें कष्ट

उठाने पड़ते हैं, और अन्त में किस प्रकार आशिक ( प्रेमी-साधक ) उस माशूक ( प्रिय-ब्रह्म ) को पाकर शराब पानी की तरह एक हो जाता है, इसी का चित्रण किया गया है।

'कबीर' पर सिद्धों के भारतीय साधनात्मक रहस्यवाद का प्रभाव अधिक था उन्होंने भारतीय परम्परा के अनुसार 'आत्मा को पत्नी' माना है। सूफियों के समान साधक को 'पुरुष' नहीं। परन्तु उनकी उक्तियों पर विरहानुभूति पर सूफियों का प्रभाव अवश्य है। किन्तु कबीर भारतीय प्रतीकों, चरखा आदि द्वारा ही अपनी रहस्यानुभूति को व्यक्त करते हैं। भारतीय योग शाखा व सिद्धों के रहस्यवाद से वे अधिक प्रभावित रहे। 'कबीर' से रवीन्द्र बहुत प्रभावित थे।

सूफी रहस्यवाद की विशेषतायें—

( १ ) वेदान्त में 'आत्मा' के ऊपर आवरण चढ़ाने वाली 'माया' नामक शक्ति है किन्तु सूफियों में 'माया' की कल्पना नहीं है। 'शैतान' ही 'रूह' को भटकाता है।

( २ ) साधक परमात्मा की प्राप्ति तब कर सकता है जब चार साधनों को पार कर जाये, ( १ ) शरीयत, ( २ ) तरीकत, ( ३ ) हकीकत ( ४ ) मारफत। 'मारफत' में पहले की अवस्थायें विधि-विधान सम्बन्धित तथा उनके द्वारा आत्म शुद्धि करने वाली हैं इनमें बड़ा कष्ट सहन करना पड़ता है। मारफत में 'रूह' फना होकर खुदा' में मिल जाती है। आत्मा व परमात्मा का यह तादात्म्य ही 'अनलहक' अर्थात् 'अहम् ब्रह्मास्मि' कह कर प्रकट किया जाता है।

पानी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया विलाय।
जो मैं था सोई भया, अब कछु कहा न जाय॥ 'कबीर'

शराब और पानी की तरह बन्दे व खुदा की एकता हो जाती है।

( ४ ) इस मत में प्रेम का अंश अत्यन्त महत्वपूर्ण है, 'रूमी' व 'जामी' जैसे कवि प्रेम के ही गीत गाते हैं, इस्लाम के आचारवाद

के विरुद्ध यह कितनी बड़ी क्रांति थी ? इस अवस्था में एक 'खुमार' या 'नशा' (लौ) का अनुभव होने लगता है इसी में ईश्वर की अनुभूति होती है इसीलिये सूफी विरह जगाते हैं।

*हरि रस पीया जानिये, कबहुँ न जाय ख़ुमार।
मैमत्ता घूमत फिरै, वाही तन की सार॥

(४) सूफी ईश्वर की स्त्री मान कर चला है। साधक उसे प्रेम-पात्री मान कर उसके रूप का आभास प्रकृति के कण-कण में पाकर विरह में तड़प उठता है, उसके हाथ की शराब पीने को (आध्यात्मिक शराब) लालायित रहता है। वसंत में अपने विरह के घावों को वह कुरेद कर ताज़े रखता है और उसी माशूक के लिये आहें भरता है।

भारतीय मत में यह 'आह-कराह' उतनी नहीं है। उसमें घाव खौंटने, तेग से कटने, नाले भरने, दिल के दाग़ देखने आदि की वीभत्सता नहीं है, यद्यपि प्रेम की तीव्रता कम नहीं है। ख़ुमार, मूर्च्छा का वर्णन भी कम रहता है। सूफियों के इस रहस्यवाद ने योरोप पर प्रभाव डाला था।

## योरोप में रहस्यवाद का विकास

अरबों का शासन 'यूनान' से लेकर स्पेन तक रहा। अरबों से योरोप ने बहुत बहुत कुछ सीखा। रहस्यवादी सूफियों का प्रभाव भी योरोप के कवियों पर पड़ा। दार्शनिक दृष्टि से प्लेटो के प्रतिबिम्बवाद में रहस्यवाद के बीज थे क्योंकि वह शाश्वत सत्ता का विश्वासी था। डायोनिसस पर अद्वैतवाद का स्पष्ट प्रभाव पड़ा था। यूरोप में ईसाई धर्म के प्रसार के साथ सूफियों के प्रभाव से Bride groom तथा आध्यात्मिक विवाह का वर्णन होने लगा और 'साधक' तुरायावस्था (trance) में अज्ञात प्रियतम के विविध आभासों की अनुभूति का वर्णन प्रतीक पद्धति पर करते रहे। संत

* Quoted by रामकुमार वर्मा।

'वर्नाड' ऐसे ही संतों 'में' थे। रोमॉटिक कवियों में ब्लेक, रहस्य-वादी कवि था। 'वर्डसवर्थ' ने प्रकृति रहस्यवाद दिया। कालरिज व शैली में मधुर रहस्यानुभूति के दर्शन हुये। उसकी दार्शनिक कविताओं में 'सर्ववाद' का वर्णन वरावर मिलता है 'ब्लेक' और उसके वाद 'अवरक्राम्बे' तथा इलियल 'यीट्स' 'हाउस मैन' आदि रहस्यवादी कवि कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त 'वायरन' तथा 'ब्राडनिंग' में भी हमें रहस्यानुभूति के स्पर्श मिलते हैं, किन्तु विशुद्ध रहस्यवाद की परिधि में शैली, ब्लेक, अवर क्राम्बे व यीट्स की ही गणना होती है।
ब्लेक कहता था—

The world of imagination is the world of eternity infinate and eternal. There exist in that eternal world realities of everything which we see reflected in the vegetable glass of nature. ब्लेक के वाद इसी धारा में, यीट्स ने लिखा। मिस मैकाले की भी रहस्यवादी श्रेणी में गणना होती है ये कवि कल्पना के जगत में उस परम सत्ता की 'झलक' को देखते और उन्हें वाणी देते थे।

ईसा की छटी शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक का योरोपीय रहस्यवाद साधनात्मक रहा। संत ग्रेगरी तथा वर्नाड ( १८ वीं सदी ) ने तुरीयावस्था में ही ब्रह्म की अनुभूति का वर्णन किया है। यही साधनात्मक रहस्यवाद आगे के कवियों के लिये आधार वना। इसके पीछे प्लेटो, अरस्तू का प्रतिविम्ववाद का दर्शन था जो उपनिषद के अद्वैत सिद्धान्त से मिलता जुलता है।

God is absolute reality with no admixture of matter, with no potentiality or possibility of change. There is something in human soul which is unsoun-

dered from the Absolute. This in tellectual, formulation involves, "He is not", "he is not"❀

आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद की इस परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा कि ईसाई संतों में अज्ञात की अनुभूति 'इलहाम' के द्वारा ही होती रही जैसा कि सूफियों में होता था। सूफियों के अनुकरण पर ही वहाँ के रहस्यदर्शी कवि स्वप्नों में Heavenly Brid groom का वर्णन करते रहे विशुद्ध तर्क-पद्धति पर 'अज्ञात' का निरूपण न हो सकने से पाषण्ड बढ़ता गया और निराली अनुभूतियों की, जो कि बेहोशी की अवस्था में अनुभूत थीं प्रतीक शैली में अभिव्यक्ति की जाती रहीं। इस दृष्टि से साम्प्रदायिक रहस्यवादियों में ब्लेक-अबरक्राम्बे, यीट्स आदि कवि हैं और स्वाभाविक रहस्यवादियों में वर्डसवर्थ और शेले। हमारे यहाँ का रहस्यवाद व छायावाद शैले के स्वाभाविक रहस्यवाद को लेकर नहीं चला अपितु ब्लेक, यीट्स की साम्प्रदायिक रहस्य भावना को लेकर चला, जिसमें फ्रांस का प्रतीकवाद मिल गया। यह पहले रवीन्द्र में आया और उनके अनुकरण पर हिन्दी में काव्य का आलम्बन बना। साम्प्रदायिक रहस्यवादी कवियों यथा ब्लैक ने जगत को कल्पना में स्थित जगत का प्रतिबिम्ब माना। अर्थात् जगत की सत्ता वस्तुतः है नहीं, यह तो केवल उन रूपों की छाया है जो हमारे कल्पना जगत में रहते हैं अतः कल्पना का जगत ही सच्चा है, वास्तविक जगत नहीं, इसीलिए कविता का विषय भी वही "सूक्ष्म जगत" बनाया गया, व्यक्त जगत नहीं। प्रतीकों द्वारा उस सूक्ष्म जगत की अनुभूतियों को वाणी मिली।

यह कहना कि शैले व वर्डसवर्थ में आध्यातिमक संकेत मिलते हैं अतः यह स्वाभाविक रहस्यवाद है और ब्लैक-आदि में मूर्च्छा की अवस्था में आये हुए आभासों का चित्रण रहता है, तथ्य को तोड़ मरोड़ कर रखने का प्रयत्न है। ब्लैक, यीट्स आदि कवियों

---

❀ चिंतामणि—आ॰ रामचन्द्र शुक्ल द्वितीय भाग।

ने इसमें संदेह नहीं कि intution अन्तर्चेतना पर वल अधिक दे दिया है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उनका काव्य 'खुमारी या वेहोशी' का काव्य है। योरोप में भी इसे साम्प्रदायिक नहीं माना गया, जनसाधारण के लिए अयोग्य भले ही कहा गया तथा यह भी कि यह रहस्यवाद कोई सिद्धान्त नहीं है, मानसिक स्थिति विशेष है अतः यदि मानसिक स्थिति विशेष ही है तो काव्य का विषय बनने में क्या आपत्ति हो सकती है।* ब्लैक व कीट्स की सारी कविताओं में स्वाभाविक रहस्यानुभूति न हो ऐसी भी बात नहीं। व्यक्तिगत रुचि की दृष्टि से 'शैली' की स्वाभाविक रहस्यवाद के अन्तर्गत रखी जाने वाली कविताओं में भी साम्प्रदायिकता की गन्ध आ सकती है। शुक्लजी द्वारा दी गई रहस्यवादियों की परम्परा में यीट्स के रहस्यवाद पर संतग्रेगरी व वर्नाड का प्रभाव चाहे न रहा हो परन्तु 'सर्ववाद' का प्रभाव अवश्य अधिक रहा। 'ब्लैक' के काव्य को भी हम दो भागों में बाँट सकते हैं। उसकी प्रथम भाग की कविताओं में कल्पना, प्रतीक तथा रहस्य का आधिक्य होने पर न अनुभूति की अस्पष्टता है न 'प्रसाद' गुण का अभाव। ब्लैक अपने काव्य में जितना मौलिक कवि था उतना न वर्डसवर्थ था न 'साउदे'। He felt some influences but in his mode of thinking in his imagination and his artististic tastes, all his main dicisions are solely his own‡ अतः स्पष्ट है कि ब्लैक का यह रहस्यवाद इलहामी रहस्यवाद न था (His poetry deals in the subtlest kind of symbolism with a skill that can not be matched अर्थात् उसकी कविता प्रतीक पद्धति पर चली जिसकी कला अनुपम है। ब्लैक की प्रारम्भिक

* mysticism is,' in trnth a temper rather than a doctrine an atmosphere rather a system of Philosophy

‡ A history of english literature by (in Franch translated by Emile Legouis पृष्ठ ६६०)

कविताओं के विषय में कहा गया है (It is a domain of purely spontaneous effort creative through its power of spritual realisations अर्थात् ब्लैक के इस काव्य में आत्म-गत तत्व है जिनमें विशुद्ध प्रवाह पाया जाता है। द्वितीय भाग में अस्पष्टता तथा कल्पना की गूढ़ता अवश्य बढ़ती गई है अतः यह कहना कि ब्लैक तो साम्प्रदायिक रहस्यवादी कवि है और वर्डसवर्थ, शैले स्वाभाविक कवि हैं, बहुत दूर तक समीचीन नहीं है। वर्डसवर्थ, शैले में अन्यतत्व प्रधान हो गये हैं, इन कवियों ने प्रकृति, प्रेम तथा राजनीति सम्बन्धी कविताओं के साथ 'सर्ववाद' का आधार लेकर रहस्यवादी काव्य भी लिखा, इनमें मुख्य स्वर रहस्यवाद का न रहने से ही वे शुद्ध रहस्यवादी न हो जाएँगे और न 'ब्लैक' साम्प्रदायिक।

ब्लैक का समय था १७५७-१८२७ ई०। १७७० ई० से १७६५ तक के युग को Pro Romantic पूर्व रोमांटिक युग कहा जाता है। क्लासीकल युग की प्रतिक्रिया में यह युग 'कल्पना' व भावुकता का युग माना जाता है अतः वर्डसवर्थ, शैले, ब्लैक आदि सबमें कल्पना व भावना का वैभव मिलता है। 'ब्लैक' में इसी कल्पना का अत्यन्त मौलिक रूप से प्रयोग हुआ है किन्तु वर्डसवर्थ के समान वह कोई स्कूल न बना सका, यह भी उसके साम्प्रदायिक न होने का प्रमाण है।

ब्लैक वैयाक्तिक अन्तर्चेतना का महान कवि था।

ब्लैक के पश्चात् वर्डसवर्थ तथा उसके पश्चात् बायरन् में हम रहस्यवाद की झलक पाते हैं। किन्तु बायरन का 'सर्ववाद' अपने सामयिक कवियों से थोड़ा भिन्न था। (In Byron we have a pantheism, very different from that of his contemprorasies; the universe for him is a mysterious power, and an accomplice, looking benignly upon rebellious spirits because it ignores human orthodoxies; a help

to souls in torment because it appeares them and fortifies in them the bittrly strong feeling they have of themselves. *

शैली में भी रहस्यवाद का एक निश्चित रूप मिलता है।

(१) Epipsychidian, that effusion of platoenic and passionate love, the fights and ardour of which are disected by a definite mysticism.

यंत्र युग के विरोध में जो विद्रोह उठा उसका आदर्शात्मक रूप हमें ब्रैडले की विचारधारा में मिलता है उसमें दार्शनिक दृष्टि से ही कला व सौन्दर्य शास्त्र की व्याख्या की गई जिसकी प्रेरणा व्यक्ति के अन्तर से मिलती है। यंत्र युग के इस विरोध की झलक हमें स्पष्ट रूप से मैरीडिथ Meredith की दार्शनिक कविताओं में मिलती है। हार्डी के निराशावादी दर्शन में भी वही प्रतिक्रिया है यह विद्रोह १८७५ ई० के वाद के साहित्यकारों में बराबर मिलता है जिसका प्रतिनिधित्व रहस्यवादी कवि 'यीट्स' ने किया। 'यीट्स' के महत्व को इसी दृष्टि से समझना होगा दूसरे आयर्लैंड में रहस्य-वादी—(आदर्शवादी) विचारधारा की एक उज्ज्वल परम्परा रही है अतः यीट्स को हम "खुमारी" या वेहोशी के स्कूल में डालकर उसके महत्व से नहीं बच सकते तभी रवीन्द्र जैसे कवि के लिए वह प्रेरक बना था। उसके युग को "सौन्दर्य शास्त्र व प्रतीकवादी" Aesthetic, and decadents का युग कहा जाता है जिसका प्रसिद्ध आलोचक 'पेटर' था अतः 'यीट्स' ने imaginative mysticism काल्पनिक रहस्यवाद की परम्परा में कार्य किया। 'यीट्स' पर भारत के औपनिषद सर्ववाद का अत्यधिक प्रभाव था अतः 'यीट्स' के रहस्यवाद में भारतीय तत्व थे इसीलिये 'रवीन्द्र' को इतना मान मिल पाया था और उसी विशुद्ध भारतीय सर्ववाद की भित्ति

*—वही

१—वही

पर 'प्रसाद', निराला व महादेवी का रहस्यवाद खड़ा हुआ। इन कवियों ने तो 'रवीन्द्र' का भी अनुकरण नहीं किया, 'पंत' की 'मछुआ' आदि कविताओं पर उनका प्रभाव अवश्य मिलता है परन्तु उक्त कवित्रयी ने प्रेरणा मात्र ही ग्रहण की अपना अलग सुलभ मार्ग बनाया। 'रवीन्द्र' व 'यीट्स' ने मार्ग दिखा दिया था।

'यीट्स' पर भारतीय प्रभाव का प्रमाण देखिये।

The deepest roots of his mysticism are in the old tradition of Irland, its insperation, not doubt, derives strong nourishment from the racy sap of the soil. But it draws as well on foreign and distant influences. India and her pantheism came in for a growing share in it and French symbalsm has been more and more responsible for the general manner of its expression. *

अर्थात् यद्यपि यीट्स के रहस्यवाद का मूल आयरलैंड की प्राचीन परम्परा में ही था परन्तु इस पर विदेशी प्रभाव भी था। भारत के 'सर्ववाद' का इसमें एक बड़ा भाग था तथा फ्रांस का प्रतीकवाद, उसकी अभिव्यक्ति के लिए उत्तरदायी था।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि रहस्यवादी कवि चाहे योरोप के हों या भारत के, सहसा सम्प्रदाय-वादी नहीं कहे जा सकते। घोर साम्प्रदायिक कवियों में भी तथा कथित स्वाभाविक रहस्यानुभूति के दर्शन मिलेंगे विशेष रूप से 'सर्ववादी उक्तियाँ" जिनमें प्रकृति की व्यक्त सत्ता के सहारे 'अव्यक्त' की ओर संकेत रहते हैं। साथ ही इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि रवीन्द्र के भारत का भी यीट्स पर प्रभाव था अतः यदि 'प्रतीक शैली' को रहस्यवादियों ने अपनाया तो यहाँ स्वाभाविक ही था। फिर उन प्रतीक

* A History of English literature by Emill Legouis.

मत है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद कुछ लेखकों ने अपने वर्ग स्वार्थ के कारण, साहित्य को जनता से दूर कर देने के लिये, भाषा को कृत्रिम रूप से अत्यन्त क्लिष्ट कर दिया और इस प्रकार जनता को काव्य से वंचित कर दिया। यह नितांत असत्य है। भाषा-विज्ञान के विरुद्ध तथ्य हैं। भाषा गढ़ी नहीं जा सकती। भाषा विकसित होती है और इतिहास की महागति में ही उसका सृजन होता है।

श्री उपाध्याय ने छायावाद को एक युग माना है। आज यह बात इतनी प्रचलित हो गई है कि इसे सहज ही मान लिया गया है। ऐसा बहुधा होता है। कबीरदास इसीलिये रोये थे कि भाषा में चलती को गाड़ी और माल को खोया कहा जाता था। छायावाद के विषय में श्री उपाध्याय ने जो कुछ लिखा है, वह मेरे मत में आंशिक सत्य है, और इसीलिये प्रत्येक आलोचक की भाँति उन्हें भी उसकी परिभाषा देने में काफी कष्ट हुआ है। वास्तव में यह एक युग विशेष का काव्य है, जो व्यंजना प्रधान है और बहुत ही मँजी हुई भाषा में लिखा गया है। तुलसीदास का मानस भी इसी प्रकार संस्कृत गर्भित है जैसे इन कवियों का। परन्तु तुलसी की शैली में इतनी व्यक्तिमूलक अभिव्यंजना नहीं और इसी से वह सरलता से समझ में आ जाता है। आधुनिक 'छायावादी' काव्य अनेक कवियों की रचनाओं का संग्रह है और प्रत्येक कवि भाषा और शैली के अतिरिक्त एक दूसरे से विभेद रखता है। उन सबको इकट्ठा रखने के कारण यह कष्ट उत्पन्न होता है।

मांसलवाद को फ्रायड का प्रभाव माना गया है और वह वहीं तक हो सकता है जहाँ तक वाह्यरूप से वासनाओं की अतृप्ति का प्रश्न है। किन्तु छायावाद और आज कल जिसे प्रगतिशील साहित्य कहा जाता है उसके बीच में भगवती चरण वर्मा आदि का युग रहा है और यह प्रगतिशील साहित्य का युगारंभ है जो व्यक्तिगत विद्रोह से प्रारंभ हुआ था। समाज शास्त्रीय दृष्टि से उनके विद्रोह के

पद्धति में हमारे कवि सफल ही हुये, भाषा की अभिव्यंजना शक्ति की वृद्धि के साथ साथ ये कवि अलौकिक अनुभूतियों को भी इतना मार्मिक बना सके। काल्पनिक रहस्यवाद का वह रूप जो यीट्स में मिला, महादेवी में आत्म निवेदन के रूप में व्यक्त हुआ। 'पंत' में वह अत्यन्त स्थूल रहा, निराला में दार्शनिक परिधान धारण किये रहा और 'प्रसाद' में 'आनन्दवाद' बन गया। भारत की मिट्टी में ही यहीं के तत्वों से विकसित होने के कारण हम इसे विदेशी नहीं कह सकते। रही 'अव्यक्त' के प्रति प्रेममूलक मिलन विरह की उक्तियों के सम्बन्ध का आक्षेप, उसका उत्तर 'प्रसाद' व 'महादेवी' ने भी दे दिया है कि किस प्रकार आत्मा को 'नारी' रूप में तथा ब्रह्म को पुरुष के रूप में वेदों में भी चित्रित किया गया है। रही काव्य में प्रयोग की बात, सो उसके भी उदाहरण मिलते ही हैं हाँ उसका विकास अवश्य आधुनिक युग में पाते हैं।

किन्तु शुक्लजी ने इस ओर ध्यान न देकर जायसी व विशेष कर कबीर को साम्प्रदायिक रहस्यवादी कवि माना है। 'जायसी' के उद्धार की धुन में शुक्लजी ने उनके रहस्यवाद की यत्किंचित प्रशंसा कर दी है वह भी आध्यात्मिक सत्ता की ओर किये जाने वाले स्वाभाविक संकेतों की। 'कबीर' के रहस्यवाद में केवल उन्हें 'अटपटी बानी' ही मिली, जिस प्रकार ब्लैक व यीट्स, इलियट आदि में शुक्लजी को मूर्च्छा, बेहोशी, अलौकिक अनुभूतियाँ, पाषण्ड, कृत्रिमता आदि तत्व ही मिले। साथ ही यह भी देखना होगा कि शुक्लजी ने यह विश्लेषण नहीं किया कि महादेवी, पंत निराला में पाया जाने वाला रहस्यवाद ब्लैक, यीट्स के रहस्यवाद से कितना साम्य रखता है। 'प्रसाद' के शराब, प्याला आदि पर अवश्य आक्षेप किया है परन्तु वह योरोप के साम्प्रदायिक रहस्य-वादियों के कितने निकट है, यह नहीं बताया गया।

वस्तुतः 'रवीन्द्र' के काव्य से खड़ी बोली के रहस्यवादियों ने प्रेरणा ही ग्रहण की। रहस्यवादी पद्धति का पथ-प्रदर्शन रवीन्द्र ने

भारत में सर्व प्रथम किया 'पंत' ने उन्हीं के स्वर में कई स्थानों पर स्वर भी मिलाया परन्तु महादेवी, निराला, प्रसाद ने भी अपने रहस्यवादी काव्य पथ को स्वयं प्रशस्त किया, न उनमें खुमार है न बेहोशी। अस्पष्टता व धूमिलता अवश्य मिलती है पर ऐसी कविताओं की संख्या कम है। कामायिनी का रहस्यवाद भी 'गूँगे का गुड़' नहीं बना, न 'दीपशिखा' की 'शिखा' से केवल अस्पष्टता का काजल निकला। अतः स्पष्ट है कि शुक्लजी के अनुसार हम यह नहीं कह सकते कि तथा कथित साम्प्रदायिक रहस्यवाद का अनुसरण निराला, प्रसाद, महादेवी ने किया। इन सब कवियों की कविता के आलम्बन 'तुलसी के राम' न थे यह ठीक है, ब्रह सूक्ष्म रहा, अव्यक्त रहा परन्तु न तो वह छायाभासों से पीड़ित है न कल्पना के आवर्त में पतित। शैली में अन्विति का अभाव दिखा देना सहज है, और वह है भी किसी सीमा तक, किन्तु न तो ब्लैक व यीट्स ही साम्प्रदायिक होकर लिखता था, न खड़ी बोली का रहस्य वादी ही। भौतिकवाद की दृष्टि से सारा रहस्यवादी काव्य दम्भ ही कहलायेगा। भक्त, योगी व ज्ञानी को बराबर फटकारता रहा, 'तुलसी' ने अलख, अलख पुकारने वाले को 'नीच' कहा था अतः उन्हीं के भक्त आचार्य शुक्ल यदि साम्प्रदायिक कह कर रहस्यवादी काव्य को टालना चाहें तो इसमें आश्चर्य न होना चाहिये।

## भक्त और रहस्यवादी

रहस्यवादी का आधार है 'अव्यक्त', अज्ञात। भक्त का आधार है 'ज्ञात' और 'व्यक्त' अर्थात अव्यक्त को अव्यक्त ही रखकर भक्त आराधना नहीं कर सकता। अव्यक्त ब्रह्म को अवतार लेना पड़ता है, और तब भक्त उस मानवीय अभिनय करने वाले पर तत्वतः ब्रह्म से अपना सम्बन्ध जोड़ कर उससे भक्ति की याचना करता है, उसके गुण कीर्तन, पदसेवा, पूजा, अर्चन और जप आदि में मग्न रहता है। तुलसी व सूर आदि ऐसे ही भक्त थे। एक व्यापक दृष्टि

कोण से इन्हें भी रहस्यवादी कह दिया जाता है परन्तु 'रहस्यवादी' वही है जो 'अव्यक्त' से सीधा सम्बन्ध जोड़कर 'आत्मा' की विरह-मिलन की स्थिति का चित्रण करे। अतः भक्ति-काल के कवियों को कबीर जायसी आदि से अलग श्रेणी में रखा जाता है। उपासना के क्षेत्र में ब्रह्म निराकार रह ही नहीं सकता उसमें गुणों का आरोप करना ही पड़ता है अतः निर्गुण से जब ब्रह्म सगुण हो जाता है तभी रहस्यवादी से साधक 'भक्त' बन जाता है।

रहस्यवाद की विभिन्न श्रेणियाँ—

साधना की दृष्टि से रहस्यवाद की विभिन्न स्थितियाँ बताई गई हैं।

(१) जिज्ञासा मूलक रहस्यवाद—इस स्थिति में सृष्टि प्रसार को देखकर उसके कारण पर कवि प्रश्न करता है, पुष्प, लता, तृण, वीरुध, गिरि, निर्झर का निर्मायक कौन है? हरियाली में रस कौन भरता है, नक्षत्रों में प्रकाश कौन उड़ेलता है?

कौन तम के पार रे कह?

—निराला

विश्व के पलकों पर सुकुमार, विचरते हैं जब स्वप्न अजान
न जाने नक्षत्रों से कौन—सँदेशा मुझे भेजता मौन?

'पंत'

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में,
तोल मोती सा जलधि जब काँपता।
तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज में—
ज्योत्सना के रजत पारावार में,
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
नींद के उच्छ्वास सा, वह कौन है?

—महादेवी

केशव कहि न जाय का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिये॥
तुलसी

जिज्ञासात्मक रहस्यवाद प्रायः भक्त कवियों तथा सामान्य कवियों में भी मिलता है क्योंकि जगत रचना को देखकर रचियता के सम्बन्ध में पूछ बैठना स्वाभाविक ही है। 'प्रसाद' ने भी पूछा था—

विश्वदेव सविता या पूषा, सोम मरुत चंचल पवमान।
ग्रह, नक्षत्र आदि सब करते, रहते हैं किसका संधान ?
शीश नवाकर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ ?
कामायिनी

परन्तु इस स्थिति के आगे 'रहस्यवादी' ही बढ़ता है। यहाँ तक तो सामान्य जिज्ञासामात्र है, कवि या साधक को अभी उस सत्ता की खोज की चाह है जब उसके आभास के प्रति उसे विश्वास होता है तब कवि पुकार उठता है—

हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम कुछ हो, ऐसा होता भान।
मंद गंभीर धीर स्वर संयुत, यही कर रहा सागर गान॥

अब कवि प्रकृति में उसका प्रतिबिम्ब देखने लगता है।

हर शाख से अयाँ है, हर सू जलाल तेरा,

शंकाएँ, जिज्ञासाएँ शांत होने लगती हैं आत्मा एक दिव्य वातावरण में अपने को पाकर शांति का अनुभव करने लगती है। जिधर दृष्टि पड़ती है उसी प्रियतम का रूप दर्शन होने लगता है। इसी में आत्मा, परमात्मा के विरह में तड़पती है सारी सृष्टि उसी के विरह में रोती दिखाई पड़ती है सब उसी को पाना चाहते हैं।

खूब परदा है कि चिलमन से लगे बैठे हो।
साफ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं॥

वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास—
काव्य में रस कुसुमों में वास।

अचल तारक पलकों में हास—
लोल लहरों में लास—'पन्त'

× × × ×

किसी की व्यथासिक्त चितवन।
जगाती कण कण में स्पन्दन—'महादेवी'

× × × ×

अविरत इच्छा ही में नर्तन—
करते अबाध रवि शशि उडुगुन।
दुस्तर आकांक्षा का बंधन—पन्त

'तृतीय अवस्था' में आत्मा उस परम तत्व के प्रति पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेती है अब उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं रहता पूर्ण ऊब डूब की भावना रहती है। इस आत्यंतिक स्थिति का वर्णन करना कठिन हो जाता है। 'अज्ञात' स्पर्श की सिहरन का 'आत्मा' इस असमर्थ वाणी से, उस अनुभव को कैसे बताये? इस अंतिम अवस्था की ओर केवल संकेत हो सकते हैं। कबीर कहते हैं—

पानी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय।
मैं जो था सोई भया, अब कछु कहा न जाय॥

'अब कछु कहा न जाय" से इसी अवस्था की ओर संकेत है। इस अवस्था में विरह का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी एकात्म्य की ओर संकेत करते हुए महादेवी कहती हैं—

बीन हूँ मैं, मैं तुम्हारी रागिनी हूँ मैं।

और 'प्रसाद' जी कहते हैं—

वल्लरियाँ नृत्य निरत थीं—बिखरीं सुगंध की लहरें।
फिर वेणु रंध्र से उठ कर—मूर्च्छना कहाँ अब ठहरे?
क्षण भर में सब परिवर्तित, अणु अणु थे विश्वकमल के।
पिंगल पराग से मचले—आनंद सुधारस छलके॥
समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था॥

इस अवस्था में इदम्, अहम् बन जाता है और द्वैत भाव का पूर्ण लोप हो जाता है। 'तत्वमसि' की यही अवस्था है—"एकै तुही" रह जाता है। 'मैं' मिट जाती है। ब्रह्म व जीव की इस एकाकारिता, रहस्यवाद की अंतिम स्थिति है इस अवस्था में अलौकिक आनन्द की सृष्टि होती है एक रहस्यवादी कहता है—

"मैंने उन फूलों से सुना जो शब्द करते थे और उन ध्वनियों को देखा जो जाजुल्यमान थीं।'

किन्हीं २ विद्वानों ने इन तीन सोपानों को चार भागों में बांटा है। (१) जिज्ञासात्मक (२) विश्वास की पूर्णता (३) विरहानुभूति (४) आत्मा व परमात्मा का ऐक्य।

रहस्यवाद के स्वरूप विकास तथा उसके सोपानों को स्पष्ट करने के वाद, हम रहस्यवाद के आधुनिक रूप को स्पष्ट करेंगे।

सर्व प्रथम हमें छायावाद व रहस्यवाद के अन्तर को समझना होगा क्योंकि आज के रहस्यवादी कवि छयावादी भी हैं और रहस्यवादी भी। यद्यपि हम 'छायावाद' शीर्षक निबन्ध में इसे विस्तार से स्पष्ट कर आये हैं तथापि संक्षेप में अन्तर समझ लेना प्रासंगिक न होगा। छायावादी कवि प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य करता है, रहस्यवादी पर ब्रह्म के साथ। छायावादी प्रकृति के पीछे आध्यात्मिक शक्ति की झलक मात्र का वर्णन करता है। किन्तु रहस्यवादी इसके आगे बढ़ता है और उस सत्ता में पूर्ण विश्वास प्रकट करता हुआ उससे तादात्म्य करता है, आत्मा व परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रहता। प्रकृति तो माध्यम मात्र रह जाती है। किन्तु छायावाद में भाव का एक छोर मानव हृदय में रहता है और दूसरा प्रकृति के अंतस् में। प्रकृति व मानवीय हृदय का संबंध छायावादी काव्य की विशेपता है।

छायावादी कवि प्रकृति में अपनी चेतना का आरोप करता है। मेघ, जल, वायु, तृण, लता उसके सहचर हो जाते हैं, उनमें वह अपने प्राणों एक चेतना-धारा का प्रतिविम्ब देखता है। अतः छायावाद में

प्रेम काव्य मानकर स्पष्टता लाने का प्रयत्न किया * किन्तु किंचित ध्यान से देखने पर छायावाद व रहस्यवाद का अन्तर स्पष्ट है।

## रहस्यवादी कवि

रहस्यवादी कवियों की कई श्रेणियां हैं परन्तु एक ही रहस्यवादी में विभिन्न प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। उनको—निम्न विभागों में बाँट सकते हैं—

(१) ज्ञान और दार्शनिकता प्रधान रहस्यवादी—

कबीर, दादू, निराला आदि।

(२) साधनात्मक रहस्यवाद—तांत्रिकों, सिद्धों, शाक्तों तथा कबीर व गोरख को इसमें रख सकते हैं।

(१) प्रणय मूलक रहस्यवादी—मीरा, कबीर, प्रसाद, महादेवी निराला।

(२) वे कवि जो मुख्यतः रहस्यवादी नहीं है तथापि उनमें एक विशेष प्रकार का रहस्यवाद मिलता है यथा—

क- भक्ति प्रधान—तुलसी, गुप्तजी आदि।

ख- प्रकृति मूलक—सुमित्रानन्दन पंत

इनमें निराला में प्रणय मूलक रहस्यवाद के साथ चिंतन-प्रधान रहस्यवाद अधिक मिलता है। गीतिका के गीत इसके प्रमाण हैं। जिनमें दोनों प्रकार की कवितायें हैं— चिंतन प्रधान—"जग का एक देखा तार" —'गीतिका'

सोचती अपलक आप खड़ी'
खुली हुई वह विरह वृन्त की, कोमल कुन्द कली।—'गीतिका'

प्रणय प्रधानः—मौन रही हार

प्रिय पथ पर चलती सब कहते श्रृङ्गार
शब्द सुना हो तो अब लौट कहाँ जाऊँ ?

---

* केशरी नारायण सिंह शुक्ल

उन चरणों को छोड़, और शरण कहाँ पाऊँ ?
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार
——गीतिक

स्पर्श से लाज लगी
अलक पलक में छिपी छलक, उर से नव राग जगी
—गीतिका।

'महादेवी' आधुनिक युग की मीरा कहलाती हैं। इनकी कविताओं में द्वैत की स्थिति प्रायः रहती है किन्तु निराला में विशुद्ध अद्वैत स्थिति का वर्णन रहता है। महादेवी का रहस्यवाद आत्म-निवेदन के रूप में समझना चाहिये, आत्मा परमात्मा की ऊब, डूब व एकाकारिता के रूप में नहीं। अपने व्यक्तित्व को वे अपने चिर सुन्दर से अलग रखना चाहती हैं। पीड़ा को तीव्र करने के लिये। यह पीड़ा चूंकि प्रिय की दी हुई है अतः यह प्रिय से भी अधिक प्रिय है। व्यक्तित्व के समाहित न होने के कारण ही पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने महादेवी में शुद्ध रहस्यवाद नहीं माना। इस दृष्टि से न पंत में रहस्यवाद मिलेगा न गुप्तजी की 'झंकार' में। क्योंकि पूर्णतः शास्त्रीय अर्थ में रहस्यवाद वहीं होगा जहाँ आत्मा न परमात्मा के तादात्म्य की अवस्था रहती है। महादेवी स्वयं उस पूर्ण (प्रिय) के प्रति आत्म-निवेदन को ही अपने काव्य की मुख्य विशेषता मानती हैं। अतः इस आत्म-निवेदन का स्वरूप 'रहस्यवादी' ही रहेगा। और यदि यह कोई अन्य 'वाद' है तो उसका अभी तक नामकरण संस्कार नहीं हुआ है, कुछ पद देखिए——

विरहमूलक—

अलि कैसे उनको पाउँ ?
वे आँसू बनकर मेरे, इस कारण ढुल ढुल जाते।
इन पलकों के बन्धन में—मैं बाँध बाँध पछताऊँ।

तादात्म्य—

तुम मुझमें, प्रिय फिर परिचय क्या ?
रोम रोम में नन्दन पुलकित।
साँस साँस में जीवन शत-शत।
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित।
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय-स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या

व्यक्तित्व अवशेषता--

शून्य मेरा जन्म था - अवसान है मुझको सवेरा।
प्राण आकुल के लिये, संगी मिला केवल अंधेरा
मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ।
शलभ मैं शापमय वर हूँ, किसी का दीप निष्ठुर हूँ।

सौन्दर्य मूलक रहस्यवाद—

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर
चपला विभ्रम, स्मित इन्द्र धनुष।
हिमकण बन झरते स्वेद निकर॥
रवि शशि तेरे अवतंस लोल
सीमंत जटित तारक अमोल॥
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर

भक्तिमूलक रहस्यवाद:—अवतारवादी कवियों ने भी युग के प्रभाव से प्रभावित होकर रहस्यवादी शैली में लिखा है इन कवियों में मुख्य हैं 'मैथलीशरण गुप्त। अवतारवादी एक स्थूल धरातल चुनता है, उसका आलम्बन मूर्त और साकार होता है और उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट और भक्ति-परक, उसमें प्रणयमूलकता के स्थान पर श्रद्धात्मक उक्तियाँ रहती हैं, वह अपने हृदय के 'राग' को नहीं, भक्ति और श्रद्धा को अभिव्यक्त करता है। किन्तु जिज्ञासात्मकता जो रहस्यवाद की प्रथम सीढ़ी है, इन कवियों में भी स्पष्ट रहती है, हाँ, असीम के प्रति तादात्म्य, भक्त कर ही नहीं सकता क्योंकि भक्ति में 'द्वैत'

साथ, उन्होंने जो विषमता का चित्रण किया है, वह भी मूल्यवान है, और निस्संदेह वर्मा जी की भैंसागाड़ी ने अपना ऐतिहासिक मूल्य निभाया है। निराला की 'भिक्षुक' से कहीं अधिक प्रेरणा साहित्य को उस कविता ने दी है। निराला का प्रभाव बादल, जूही की कली और तुलसीदास में अपना प्रभुत्व और अखण्ड गौरव लेकर स्थापित हुआ है। उनकी 'राम की शक्ति पूजा' बलिदान की अमर गाथा का लेखन है।

फ्रायड का श्री उपाध्याय ने जितना अधिक विश्लेषण किया है, उतना वास्तव में हिन्दी साहित्य में उसका प्रभाव ही नहीं पड़ा। हमारा समाज ही इतना विषम है कि लेखक में स्वयं ऐसी प्रवृत्तियों का उदय हो जाना आश्चर्य जनक नहीं है, और विशेष करके तब तब हमारी सामंतीय संस्कृति की परम्परा में हमें रीति काव्य की धरोहर को प्राप्त हुई है।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि श्री उपाध्याय ने आलोचना की यह पहली पुस्तक लिखी है और इसी को देख कर संतोष होता है कि उन्होंने घुन बन कर काठ खाया नहीं, वरन् उसे औजारों से छील कर सुन्दर बनाया है। भाषा में सुगठित तत्व है और मेरी राय में वे बधाई के पात्र हैं। आशा करता हूँ कि भविष्य में इसी प्रकार अच्छे उद्देश्य से साहित्य की सेवा करते रहेंगे, न कि बड़े इतिहास का सरल और सुबोध इतिहास बना कर, अपने नये जीवन की इति श्री करके, अधम कल्याण को पथ प्रदर्शक बना कर, अपने आपको भूल जायेंगे।

—डा० रांगेयराघव,
एम० ए०, पी० एच० डी०

की स्थिति अपरिहार्य रहती है। अपने अज्ञान की अभिव्यंजना, उसके दूरीकरण के लिए विनम्र प्रार्थना, जगत के दुःख द्वन्द्वों का आकुल चित्रण, भगवान की कृपा करुणा, भक्तवत्सलता आदि का वर्णन रहता है।

यशोधरा में वही जिज्ञासा इस प्रकार व्यक्त की गई है—

घूम रहा है कैसा चक्र ?
जो तेरा अनुशासन पाया मैंने शीश नवाया।
क्या क्या कहा स्वयं भी उसका, आशय समझ न पाया॥
मैं इतना ही कह सकता हूँ, जो कुछ जी में आया।
और समझ जाऊँ फिर मैं भी यह मैंने है गाया॥
रमा है सब में राम।
वही सलोना श्याम॥
नट नागर आज कहाँ अटके ?
फिर याद पड़े टटके टटके
व्रज गोप वधू दधि के मटके
उनका कहना, हटके हटके
नट नागर आज कहाँ अटके ?
× × × ×
तू है हम अन्धों का हाथी।
हाय हमारे नयन मुँदे हैं, मन है महा प्रमाथी॥
× × × ×
चोर चोर
घर के पीछे हो उठा शोर
मैं जाग पड़ी, हो गई खड़ी,
फिर चौंकी ज्यों चौंके चकोर
चोर चोर[1]

गुप्तजी के भक्तिमूलक रहस्यवाद की विशेपता है अभिव्यक्ति की स्पष्टता और 'ध्वनि' ( Suggetiueness ) का अभाव।

---

1 झंकार से गुप्तजी

# रहस्यवाद का भविष्य

आदर्शवादी विचारधारा के परिणाम स्वरूप उक्त दोनों काव्य-धाराएँ साहित्य को सिक्त करती रहीं किन्तु उनका ऐतिहासिक मूल्य समाप्त हुआ। 'महादेवी' को छोड़कर अन्य रहस्यवादी कवि 'प्रकृतिवाद' की ओर झुक गये। इधर 'पंत' जी ने 'नूतन रहस्यवाद' कहलाई जाने वाली कविताएँ लिखी हैं किन्तु तथ्य यह है कि आदर्शवादी विचार-धारा होते हुए भी 'पंत' जी पूर्णरूप से न अध्यात्मवादी हैं न भौतिकवादी हैं 'टैकनीक' की दृष्टि से 'पंत' जी पर पुनः छायावादी प्रभाव आया है किन्तु निराला पूर्ण रूप से प्रगतिवादी साहित्य दे रहे हैं। महादेवी का साधना पथ काव्य में रहस्य की धूमिल पगडण्डी पकड़ता है और 'गद्य' में सामाजाकिता की। किन्तु हमें 'रहस्यवाद' का मौलिक रूप लेकर उसकी चिरन्त-नता तथा देन की मूल्याँकन करना है।

जब युग ने रहस्यवादी से उसका व्यक्तित्व माँगा तब वह उसे न दे सका, उसने अपने 'अहम्' को ब्रह्म के लिये समर्पित कर दिया, वह युग को न देखकर युगाधार को जगत के भिन्न २ पदार्थों में देखने लगा उसने 'इदम्' को सुधारने, उसमें अपने को मिलाने का प्रयत्न नहीं किया अपितु 'इदम्' को माध्यम बनाया केवल अपनी अभिव्यक्तिमा उसके द्वारा उसने उस असीम से अपनी बात कही क्योंकि ससीम न उसकी बात सुनता था न उसकी यह प्रवृत्ति थी कि वह 'तूती' न बन कर संगठित होकर इतना चिल्लाता कि युग को उसका स्वर सुनने के लिये विवश होना पड़ता, रहस्यवादी इसीलिये युग की ओर न बढ़कर युगों युगों तक बढ़ने की महत्वाकांक्षा लेकर बढ़ा जिस व्यक्ति की बात कोई नहीं सुनता वह अपनी बात को शाश्वत बताता है, व्यक्ति तप्त धरातल पर दृढ़ स्कन्ध कर खड़ा नहीं हो पाता, वह विराम के लिये उपवन खोजता है, न मिलने पर कल्पना के बल पर वह चिर-विराम-शाला ढूँढ़ लेता है। जीवन

के मनोविज्ञान में इन उपवनों का मूल्य है वे श्रांत क्लाँत क्षणों में हमारा मनोरंजन कर सकते हैं किन्तु हैं वे Rest houses विश्रामालय ही, स्थायी भवन नहीं।

दूसरी ओर इस साहित्य ने हमें मानव-मूल्यों की दृष्टि से कई तत्व प्रदान किये। प्रथम, रूढ़ियों के ऊपर उठकर रहस्यदर्शी कवियों ने विश्व बंधुत्व तथा अन्तर्राष्ट्रीय एकता का सांस्कृतिक पक्ष पुष्ट किया, आलोचक को इधर देखना होगा नारों से विश्व बंधुत्व जग जायगा पर स्थायित्व तब आयगा जब हृदय की सच्ची प्रेरणा मिलेगी। तो रहस्यवादी ने जो जड़ चेतन में एक ज्योति के दर्शन करता है, हमें विश्व-करुणा देता है। 'प्रसाद' ने जिस 'आनन्दशिखिर' की ओर संकेत किया, महादेवी ने जिस 'चिरसुन्दर' की मोहकता को सामने रक्खा, 'पंत' ने जिस 'सांस्कृतिक-स्वप्न' के काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी वह 'स्वप्न' मानवता की पूर्णता के रूप में हमें ग्रहण करना चाहिये। प्राय: कहा जाता है कि प्रतिक्रियावादी कवि वह है जिसकी कविता जीवन को आगे नहीं बढ़ाती, जो मानवीय गुणों की अवहेलना करती है, हमें पीछे की ओर ले जाती है, किन्तु साथ ही कहना यह होगा कि हम इन से ग्रहण क्या करते हैं? 'टालस्टाय' को कुत्सित समाज-शास्त्रियों ने 'बुर्जुवा' कहा था पर 'लेनिन' ने उसे क्या ठहराया? हम ग्रहण करने की इसी सद्-प्रवृत्ति के बल पर 'तुलसी' व 'सूर' को प्रगतिशील ठहराते हैं तो यही सहृदयता हमें 'पंत' के नूतन रहस्यवाद, महादेवी की 'करुणा' तथा वेदना-प्रियता, 'बच्चन' व भगवतीचरण वर्मा के नियतिवाद (नकारवाद) के सम्बन्ध में भी दिखानी होगी। यह निश्चित है कि इन रहस्यवादी कवियों के सम्मुख क्रान्ति का रूप स्पष्ट न था, अपने संस्कारों का भी इन पर कम प्रभाव न था, उस 'स्व' के प्रति-वेप में हमें जो साहित्य मिला, जिन धारणाओं को अपनी कलात्मक साधना के बल पर उन्होंने इतना 'प्रेय' बनाया उस प्रेय में 'श्रेय' क्या है, और 'अश्रेय' क्या है यह बताना होगा और उसकी

सीमाओं को निर्धारित करना होगा, स्वर्ण-किरण व स्वर्णधूलि दीप-शिखा, साहित्य की कलंकित वस्तुएँ नहीं है उन्हें संकीर्णता के कोष में न रखकर 'मानवता' की व्यापक दृष्टि से देखना होगा। प्रश्न यह है कि जब हम वर्णाश्रमवादी, भक्त, प्रगतिशील संतों व गोरख जैसे योगियों के विरुद्ध बोलने वाले, पुरानी ब्राह्मण-परम्परा के पुनर्व्यवस्थापक 'तुलसी' को प्रगति-पन्थी मानते हैं तो मध्यका-लीन रूढ़ियों के विरुद्ध, शांकरमत द्वारा प्रस्तावित निष्क्रियता, गांधी-वादी मध्ययुगीन विचारधारा के विरुद्ध ललकारने वाले 'पंत' को जब हम प्रतिक्रियावादी कहते हैं तो अर्थ स्पष्ट करना होगा। अच्छा होता कि पंत 'स्वर्णकाव्य' न लिखकर 'मिट्टी काव्य' लिखते, सांस्कृतिक स्वप्नों की उलझन छोड़कर जनता की लड़ाई में सहयोग देते, भले ही कलात्मक सौन्दर्य कुछ कम रहता किन्तु जो संस्कृति हम बनाने जा रहे हैं उसमें जिस सौहार्द, प्रेम, सहानुभूति तथा एक शब्द में 'सांस्कृतिक' उत्थान हम चाहते हैं उसके लिये 'महादेवी' की 'करुणा' तथा पंत का 'सांस्कृतिक स्वप्न' सहायक न होगा। कहा जायगा कि आज इससे 'जनता' का ध्यान बँटता है, उसे तो वर्ग संघर्ष की जागृत करने वाला ही काव्य चाहिये किन्तु यह तो कलाकार के साथ बलात्कार ही होगा। समझौता व सुधार की ओर ले जाना काव्य हमारे लिये घातक है, किन्तु इस तुला पर सीधे रूप से हम साहित्य को नहीं कस सकते हमें मानवीय गुणों Numanism को ही देखना होगा यदि Humanitarian point of view मान-वतावादी दृष्टि से वह साहित्य हमें कुछ देता है तो उसे स्वीकार करना होगा। केवल कतिपय शृंगारिक-भावना-उद्दीपक पदों के कारण हम उसको उपेक्षित नहीं रखना चाहते। सुवर्ण को भी रेत से चुनना पड़ता है।

दूसरी दृष्टि है 'कलात्मकता' की। हमने पहले भी कहा है कि छायावाद के कलाकार इतिहास में कम से कम 'कला' के चरम विकास के लिए अवश्य आदर्श माने जायेंगे। उपयोगितावादी दृष्टि-

कोण को एक ओर रखकर सौन्दर्य की दिव्यता से किस प्रकार इन कवियों ने प्रत्येक वस्तु में संवेदन भर दिया कि वह बोल उठा। शब्दों में चित्र और चित्रों को शब्द इसी युग में मिले। वस्तु (Content) एक ही होने पर कबीर, दादू के साधनात्मक रहस्यवाद तथा तांत्रिकों, सिद्धों आदि के रहस्यमय काव्य तथा आधुनिक युग के रहस्य-गीतों में कितना अन्तर है, यह देखा जा सकता है। मंजरित साहित्य आम्र की इन कोकिलाओं को आगे की पीढ़ी घृणा की दृष्टि से न देखेगी जैसा कि हमारे कुछ आलोचक बंधु संकीर्णता वश देख रहे हैं हम आगे दिखायेंगे कि इसके कारण क्या हैं विशुद्ध मार्क्सवाद की दृष्टि से भी इन कवियों का साहित्य में उच्चकोटि का स्थान होगा क्योंकि जिस सामाजिक दबाव के कारण इन कवियों ने प्रत्यक्ष से नाता तोड़कर अप्रत्यक्ष से नाता जोड़ा वह हमारे लिए 'करुण' तथा उनके लिए आनन्दमय परिस्थिति थी, जिस दुःख से हम छुटकारा चाहते हैं उसीसे हमारी कवियित्री इतना प्रेम करती है; इसका कारण क्या है क्यों 'बच्चन' 'प्यार और हाय हाय' के गीत गाते हैं, कारण यह है कि जिस परिस्थिति में यह साहित्य लिखा गया वह परिस्थिति उसके अनुकूल थी, राजनैतिक आंन्दोलनों में, वारवार हार कर भी, सभी कवि सोहनलाल द्विवेदी की तरह प्रत्यक्षतः 'गांधी जी की जय' नहीं बोल सकते थे। प्रत्यक्ष से विमुख होकर कवि क्या करे? एकांत आराधन और क्या? जो आग आज जल रही है उसकी 'तप्तता' का ही अनुभव इन कवियों को हुआ था किन्तु उनमें कूद पड़ने का भाव बहुत बाद में आया। अतः हृदय की 'आग' के ही गीत गाये जाने लगे इसके साथ ही एक और दृष्टि है, और वह है दार्शनिक प्रभाव। 'महादेवी' ने बुद्ध की करुणा के माध्यम से अपना नीड़ बनाया और वे उसी में रम रहीं, उन्होंने जहाँगीर की तरह बाहर 'घंटी' लगवाने की आवश्यकता नहीं पड़ी जिसे बजाने पर ही वे बाहर निकलतीं। समाज व जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित होने पर 'हृदय से दाह'

को वह क्यों न भूल सकीं उसका कारण है भारत की नारी की विषम तथा दयनीय दशा जो महादेवी के शब्द शब्द में क्रन्दन कर रही है। हमने गुप्त जी की यशोधरा व उर्मिला को पढ़ा किन्तु इस 'सजीव मीरा' को हम पढ़ न सके क्या हम यह नहीं देखते कि महादेवी के दुःखवाद में समाज के एक नितांत अपमानित अंग का रोदन बद्ध है ?

अतः यदि वह नीर भरी दुःख की बदली है तो इससे तो हमें वर्ग की स्थिति का ही पता चलता है, महादेवी प्रहार कैसे करें ? क्योंकि उसका निदान वे खोजती हैं, ममता में, त्याग में, मानव के शाश्वत विराग में और दार्शनिक सुलझाव में। किन्तु यह उनकी विवशता है। रोते हुए युग की नारी, यदि उपल में नहीं बरसती तो आँसू तो बरसाती हैं उन्हीं में कोटि कोटि नारियों की आह कराह व दंशन छिपा हुआ है। अतः रहस्यवादी व छायावादी काव्य में 'कला' है, प्राण हैं, उनमें आवेग है, संवेदन हैं उसमें वर्ग विशेष की असंगतियों का मधुर व्यक्तीकरण सहसा होगया है, उसमें अध्यात्मवादी दर्शन—जन्य आत्म विस्तार है। 'रवीन्द्र' में सौन्दर्य व मंगल का अद्भुत सामञ्जस्य हुआ था। छायावादी व रहस्यवादी कवियों में भी वह सामञ्जस्य दुर्लभ नहीं है। उपनिषद की प्रज्ञा का सत्य स्वरूप ही निराला, प्रसाद और महादेवी में 'हृदय का अपार प्रणय' बन गया है जो आँसू बनकर टपक पड़ा है।

पूर्वयुग जलते रहे हैं, उनकी भाप ने बादल बनाये हैं, अब गरजने व बरसने की हमारी बारी है, केवल बिजलियाँ गिराने से ही कार्य न होगा।

# हालावाद

'हाला' का अर्थ 'मदिरा' है ( हालाहल नहीं )। आधुनिक युग इस 'मदिरावाद' के एकमात्र प्रवर्तक श्री हरिवंश राय बच्चन और विशेषता यह कि उक्तवाद की आयु रही 'केवल तीन वर्ष' न तीन वर्षों को 'बच्चन' की रचनाओं की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं।

(१) १६३३–३४–मधुशाला।
(२) १६३४–३५--मधुबाला।
(३) १६३५--३६–मधु कलश।

१६३६ के पश्चात् कवि का 'निशा-निमन्त्रण' प्रकाशित हुआ जिसमें यह 'हालावाद' अन्तर्ध्यान हो चुका था। 'मधुशाला' के पूर्व लिखी गई कविताओं के दो संग्रह और प्रकाशित हुये हैं। प्रारम्भिक रचनायें प्रथम भाग तथा प्रारम्भिक रचनायें दूसरा भाग। इनमें 'हालावाद' तक पहुँचने के सोपान दृष्टि गोचर हो सकते हैं।

हालावादी दर्शन:—सूफियों ने, जैसा कि हम रहस्यवाद का फारस में विकास दिखाते हुये लिख आये हैं कि वे इस्लाम के वाह्य आचारवाद ( कठमुल्लावाद* ) के विरुद्ध क्रांति की थी। सूफियों ने शराब, सुराही, प्याला, साकी, मीना ( बोतल ) को प्रतीक बना कर इनके सहारे अपनी 'मौज' व स्वतन्त्र प्रकृति का परिचय दिया था, वाह्य आचारों तथा नमाज-रोजा आदि को चुनौती थी, जिसका

* शेख कहाँ तुलना हो सकती, मस्जिद की मदिरालय से।
चिर विधवा है मस्जिद तेरी, सदा सुहागिन मधुशाला॥

को वह क्यों न भूल सकीं उसका कारण है भारत की
विषम तथा दयनीय दशा जो महादेवी के शब्द शब्द में क
रही है। हमने गुप्त जी की यशोधरा व उर्मिला को पढ़ा
'सजीव मीरा' को हम पढ़ न सके क्या हम यह नहीं
महादेवी के दुःखवाद में समाज के एक नितांत अपमानि
रोदन बद्ध है ?

अतः यदि वह नीर भरी दुःख की बदली है तो इससे
की स्थिति का ही पता चलता है, महादेवी प्रहार कैसे
उसका निदान वे खोजती हैं, ममता में, त्याग में, मा
विराग में और दार्शनिक सुलझाव में। किन्तु यह
है। रोते हुए युग की नारी, यदि उपल में नहीं बरस
बरसाती हैं उन्हीं में कोटि कोटि नारियों की आह
छिपा हुआ है। अतः रहस्यवादी व छायावादी का
प्राण हैं, उनमें आवेग है, संवेदन हैं उसमें वर्ग
तियों का मधुर व्यक्तीकरण सहसा होगया है, उस
दर्शन—जन्य आत्म विस्तार है। 'रवीन्द्र' में
अद्भुत सामञ्जस्य हुआ था। छायावादी व र
भी वह सामञ्जस्य दुर्लभ नहीं है। उपनिषद
स्वरूप ही निराला, प्रसाद और महादेवी में 'हृद
बन गया है जो आँसू बनकर टपक पड़ा है।

पूर्वयुग जलते रहे हैं, उनकी भाप ने व
गरजने व बरसने की हमारी बारी है, केवल
ही कार्य न होगा।

एक ओर देश पराधीनता के पाश में सिसक रहा था और उधर गोलमेज सभाओं में ब्रिटेन के व्यापारी भारत के अश्रु पोंछ रहे थे। क्षितिज पर असंतोष व जागरूक चेतना-जन्य विद्रोह के बादल छा रहे थे। सन २० से जो आन्दोलन चला वह गरम व नरमदलों में मिलता, बँटता रहा किन्तु परिणाम कुछ न निकला। देश का युवक हृदय इसे व्यर्थ ही नहीं, पलायन भी मानता था। अतः क्रांतिकारी पार्टी का संगठन दिन पर दिन दृढ़ होता जा रहा था जिसके सजग-विस्फोट सन् १९१२ से ही होते आ रहे थे। क्रांति का यह प्रभाव साहित्य को भी अछूता न छोड़ सकता था। *सामाजिक दृष्टि से भी देश की जनता अंध-विश्वासों, सामंत युग के नैतिक बन्धनों से छिन्न भिन्न हो रही थी और आज भी हो रही है, इसी स्थूल आचारिकता के विरुद्ध जिसके निर्माण में आर्य-समाजी आन्दोलनों का हाथ रहा, छायावादी कवियों ने अपनी रोमाँटिक कवितायें लिखी थीं जिनमें प्रेम-भावनाओं का स्वच्छन्द प्रकाशन होता था। 'बच्चन' को नैतिकता अधिक खटकती थी अतः युवक कवि ने सारे नीति बंधन को भस्मीभूत करने के लिये वही सूफियों की परम्परा पकड़ी जिसमें 'दर्शन' पक्ष का तो अभाव सा रहा किन्तु उच्छृङ्खलता का चित्रण ही ध्येय रहा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस 'उच्छृङ्खलता' का मूल उसी असंतोष पर था जो सामान्य रूप से सारे देश में गरज रहा था, क्रांति का रूप अस्पष्ट तथा दुर्बल होने से 'मधुशाला' की यह क्रांति मात्र उच्छृङ्खलता ही बन पाई।

एक और तत्व था जिसका संयोग हम 'हालावाद' में देखते हैं वह है कवि की घोर वैयक्तिकता का। सम्पूर्ण सामाजिक-चेतना के विरुद्ध बच्चन के स्वर में यह हालावादी ललकार मानो एक उच्छृङ्खल युवक का आक्रोश था जो ठीक राह न पाने पर वांछनीय और अवांछनीय सारे बंधनों को तोड़ देने के लिये तत्पर हो

* वेद विहित यह रस्म न छोड़ो, वेदों के ठेकेदारो।
किसी तपोवन से क्या कम है मेरी पावन मधुशाला।

तात्पर्य यह था कि खुदा, जड़वत इन आचारों के अंधानुगमन से प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि प्रेम का वह पात्र न बनाया जाय, इस्लाम में खुदा से प्रेम करना 'कुफ्र' है किन्तु सूफियों ने उस नियन्ता के 'जलवे' को संसार के प्रत्येक पदार्थ में देखा उन्होंने आत्मा व परमात्मा की एकता की घोषणा की किन्तु जगत को मायावादियों के अनुसार मिथ्या न मानकर उसे परब्रह्म का प्रतिबिम्ब माना अतः इस प्रतिबिम्ब--जगत× में उस बिम्ब—( ब्रह्म ) की अनुभूति करना स्वाभाविक था। बंदे व खुदा की एकता इस्लाम में सह्य न हुई। सूफियों ने प्राण देकर भी अपने प्रेम के सिद्धान्त को न छोड़ा जिस शराब, प्रेम आदि का इस्लाम में घोर निषेध था, सूफियों ने उसी को आधार मानकर अपनी साधना की भित्ति खड़ी की, लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम का आधार बन गया, 'बुतों' से दिल लगाना 'बुरा न समझा गया क्योंकि "प्रेम की पीर" का विकास इसी से होगा जो उस खुदा की ओर ले जायगा। तात्पर्य यह कि प्रेम-मादकता, शराब, प्याले की यह चर्चा सूफियों के एक आन्दोलन के रूप में चल पड़ी। उसका एक अपना दर्शन बन गया। उमर ख़ैयाम की प्रसिद्ध रुबाइयों में इसी स्वच्छन्द वृत्ति का चित्रण इतना मनोरम और मादक हुआ है कि वह संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में गिना जाता है। ये कवितायें आपाततः मात्र उत्तेजक, वासनामय उद्गारों व चित्रणों से भरी रहती हैं परन्तु उनके अन्तर में वही सूफी-दार्शनिकता रहती है जिसमें आत्मा ( आशिक ) परमात्मा ( माशूक ) के विरह में तड़फता है, विश्व के कण-कण में उसी का 'हुस्न' देखता है, और अनेक विघ्न बाधाओं को पार करता हुआ पानी की बूँद के समान उसी चेतना के समुद्र में लय हो जाना चाहता है।

सन् १९०५ का समय ऐतिहासिक दृष्टि से क्रांति का युग था।

---

× पथिक बना मैं घूम रहा हूँ, सभी जगह मिलती हाला।
सभी जगह मिलता है साकी, सभी जगह मिलती हाला॥

# —: अपनी बात :—

'हिन्दी साहित्य के प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक' यह विषय अत्यन्त गम्भीर और उलझा हुआ है। अँगरेजी भाषा का समालोचना शास्त्र इतना पूर्ण और परिपक्व हो चुका है कि उसके अध्येता को युग विशेष में, वाद विशेष की प्रमुख प्रवृत्तियों के अध्ययन व आकलन में विशेष वाधा नहीं आती, किन्तु हिन्दी साहित्य में अभी तक छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि का प्रश्न विवाद ग्रस्त है। एक आलोचक के लिए जिस असाधारण प्रतिभा अनवरत अध्यवसाय, धैर्य तथा मर्मभेदिनी प्रज्ञा की आवश्यकता है वह कतिपय मनीषियों को ही प्राप्त होती है। ऐसे विद्वानों के पक्षपातों का भी साहित्यक मूल्य हो जाता है क्योंकि उनकी विवेचना में गाम्भीर्य रहता है फिर भी महीधर जहाँ अद्भुत विराटता एवं नभ स्पर्शी उच्चता लेकर 'शून्य' को भी सन्देश देते हैं वहाँ 'लघु लघु, उत्स' भी उन्हीं का प्रेरणा-जल पाकर गतिवान् वनते हैं और वसुन्धरा के अंचल को सलिलस्नात कर अपना 'जीवन' सफल वनाते है। और 'जीवन' के लिए 'गति की आवश्यकता है, लक्ष्य तो सहम कर स्वयं सिमट आता है, इसी धारणा के वल पर अत्यन्त सीमित साधनों और समयाभाव में इस 'वादग्रस्त' युग को समझने की महात्वाकांक्षा मैंने कर ही डाली,

श्रद्धेय डा० सत्येन्द्र ने अपने अमूल्य परामर्श द्वारा मुझे सँम्हाला है, डा० राँगेयराघव ने भूमिका लिखने की कृपा की है मैं मूक कृतज्ञता-ज्ञापन के अतिरिक्त धन्यवाद देकर उक्त आचार्यों की 'देन' के महत्व को कम नहीं करना चाहता आगरा कालेज के

एक ओर देश पराधीनता के पाश में सिसक रहा था और उधर गोलमेज सभाओं में ब्रिटेन के व्यापारी भारत के अश्रु पौंछ रहे थे। क्षितिज पर असंतोष व जागरूक चेतना-जन्य विद्रोह के बादल छा रहे थे। सन २० से जो आन्दोलन चला वह गरम व नरमदलों में मिलता, बँटता रहा किन्तु परिणाम कुछ न निकला। देश का युवक हृदय इसे व्यर्थ ही नहीं, पलायन भी मानता था। अतः क्रांतिकारी पार्टी का संगठन दिन पर दिन दृढ़ होता जा रहा था जिसके सजग-विस्फोट सन् १६१२ से ही होते आ रहे थे। क्रांति का यह प्रभाव साहित्य को भी अछूता न छोड़ सकता था। *सामाजिक दृष्टि से भी देश की जनता अंध-विश्वासों, सामंत युग के नैतिक बन्धनों से छिन्न भिन्न हो रही थी और आज भी हो रही है, इसी स्थूल आचारिकता के विरुद्ध जिसके निर्माण में आर्य-समाजी आन्दोलनों का हाथ रहा, छायावादी कवियों ने अपनी रोमाँटिक कवितायें लिखी थीं जिनमें प्रेम-भावनाओं का स्वच्छन्द प्रकाशन होता था। 'बच्चन' को नैतिकता अधिक खटकती थी अतः युवक कवि ने सारे नीति बंधन को भस्मीभूत करने के लिये वही सूफियों की परम्परा पकड़ी जिसमें 'दर्शन' पक्ष का तो अभाव सा रहा किन्तु उच्छृङ्खलता का चित्रण ही ध्येय रहा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस 'उच्छृङ्खलता' का मूल उसी असंतोष पर था जो सामान्य रूप से सारे देश में गरज रहा था, क्रांति का रूप अस्पष्ट तथा दुर्बल होने से 'मधुशाला' की यह क्रांति मात्र उच्छृङ्खलता ही बन पाई।

एक और तत्व था जिसका संयोग हम 'हालावाद' में देखते हैं वह है कवि की घोर वैयक्तिकता का। सम्पूर्ण सामाजिक-चेतना के विरुद्ध बच्चन के स्वर में यह हालावादी ललकार मानो एक उच्छृङ्खल युवक का आक्रोश था जो ठीक राह न पाने पर वांछनीय और अवांछनीय सारे बंधनों को तोड़ देने के लिये तत्पर हो

* वेद विहित यह रस्म न छोड़ो, वेदों के ठेकेदारो।
किसी तपोवन से क्या कम है मेरी पावन मधुशाला।

जाता है। इस दृष्टि से 'हालावाद' वह व्यक्तिगत उच्छृङ्खल काव्य को लेकर चला जो सामाजिकता को अभिशाप मान कर केवल व्यक्तिगत प्रेम-वासना का स्वतन्त्र तथा निरपेक्ष राज्य चाहता है। अतः नरेन्द्र के क्षयी रोमांस के समानान्तर इसे 'सन्निपात-रोमांस' कहा जा सकता है जिसमें व्यक्ति अचेतनावस्था में 'प्रलाप' पर तुल जाता है। 'वच्चन' के सारे काव्य में व्यक्तिगत तत्व सबसे अधिक रहा है, उन्होंने वह लिखा है जो उन पर बीता है। और जो अनुभव किया गया है। 'हालावाद' जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है 'झंझावात' के समान आया और निकल गया कवि सम्मेलनों में 'वच्चन, को इस 'हाला' ने जो सर्व-प्रियता दी, वह प्रशंसनीय है परन्तु जैसा हमने देखा न तो इसमें जीवन के प्रति स्वस्थ व संतुलित दृष्टिकोण है न अभिव्यक्ति में गहराई। कविता की शराब पीकर झूमने वाले असामाजिक* बरसाती कवि—सूफियों की बाढ़ न आ पाई यह अच्छा ही रहा।

व्यक्ति के साथ ही एक युग का भी मनोविज्ञान होता है। युग की स्वाभाविक चेतना अवरुद्ध होकर कभी-कभी सामंजस्य के धरातल को तोड़कर बेमेल स्वरों में गा उठती है। सामाजिक विधि-निषेध के नीति विधान के विरुद्ध छायावादी प्रतिक्रिया सन् २० के पूर्व से ही चल पड़ी थी परन्तु प्रेम की भाषा इतनी धूमिल हो उठी कि उसमें मानव-मन एक विचित्र घुमड़न में पड़कर रह गया। सौन्दर्य की प्रतिमा नारी का अशरीरी सौन्दर्य ही कविता का विषय रहा, प्रणयोद्गारों ने दार्शनिक परिधान पहन लिया था। 'वच्चन' का 'हालावाद' इन्हीं प्रणय मूलक भावनाओं का उद्गार पात्र था जो एक विप्लव के रूप में फूट पड़ा। तीव्रतम वासना सामाजिकता की शिला के नीचे तड़प उठी संयम सहन न हो सका।

---

* ध्यान किये जा मन में सुमधुर-सुखकर सुन्दर साकी का।
मुख से तू अविरत कहता जा, मधु मदिरा-मादक हाला॥

कवि ने अनुभव कर लिया था—

वासना जब तीव्रतम थी, बन गया था संयमी मैं।
है रही मेरी क्षुधा ही, सर्वदा आहार मेरा॥

और तब कवि पुकार उठा—

कह रहा जग वासना मय, हो रहा उद्गार मेरा।
मैं छिपाना जानता तो, जग मुझे साधू समझता।
शत्रु मेरा बन गया है, छल रहित व्यवहार मेरा॥

और इस 'छल रहित व्यवहार' करने पर भी, कवि पर जब वृद्ध जग हँसा तो वह चीख उठा—

वृद्ध जग को क्यों अखरती, है क्षणिक मेरी जवानी ?

'मधुकलश' की यह कविता वस्तुतः 'मधुशाला' में लिखी गयी कविताओं पर किये गये प्रहारों का उत्तर थी। किन्तु कवि के दृष्टि-कोण को स्पष्ट करने के लिये हमने उसे पहले उद्धृत करना उचित समझा। 'हालावाद' कवि के अरमान पूरे न होने से ही मचल कर निकल पड़ा—

विश्व पूरा कर सका है-कौन सा अरमान मेरा ?

'हाला' वाला, मधुशाला के गीतों में युग को ललकार कर कवि ने कोई प्रतिध्वनि न सुनी, समाज चलता था, चलता रहा अतः कवि का निराश होना स्वाभाविक था इसीलिये जैसे सुरा-पान के पश्चात् गला सूख जाता है, प्यास बढ़ती है उसी प्रकार 'मधुकलश' को समाप्त कर कवि निशा को निमंत्रण देने लगा था।

'हालावादी' का विद्रोह देखिये—

रक्त से सींची गई है-राह मंदिर मसजिदों की।
किन्तु रखना चाहता मैं, पाँव मधु सिंचित डगर में॥
हैं कुपथ पर पाँव मेरे-आज दुनियाँ की नजर में।

समता, विस्मृति ( पलायन ) की प्रतीक तथा संघर्षों को सुलाने वाली हाला को कवि पुकारता है—

जाता है। इस दृष्टि से 'हालावाद' वह व्यक्तिगत उच्छृङ्खल काव्य को लेकर चला जो सामाजिकता को अभिशाप मान कर केवल व्यक्तिगत प्रेम-वासना का स्वतन्त्र तथा निरपेक्ष राज्य चाहता है। अतः नरेन्द्र के क्षयी रोमांस के समानान्तर इसे 'सन्निपात-रोमांस' कहा जा सकता है जिसमें व्यक्ति अचेतनावस्था में 'प्रलाप' पर तुल जाता है। 'बच्चन' के सारे काव्य में व्यक्तिगत तत्व सबसे अधिक रहा है, उन्होंने वह लिखा है जो उन पर बीता है। और जो अनुभव किया गया है। 'हालावाद' जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है 'झंझावात' के समान आया और निकल गया कवि सम्मेलनों में 'बच्चन, को इस 'हाला' ने जो सर्व-प्रियता दी, वह प्रशंसनीय है परन्तु जैसा हमने देखा न तो इसमें जीवन के प्रति स्वस्थ व संतुलित दृष्टिकोण है न अभिव्यक्ति में गहराई। कविता की शराब पीकर झूमने वाले असामाजिक* बरसाती कवि—सूफियों की बाढ़ न आ पाई यह अच्छा ही रहा।

व्यक्ति के साथ ही एक युग का भी मनोविज्ञान होता है। युग की स्वाभाविक चेतना अवरुद्ध होकर कभी-कभी सामंजस्य के धरातल को तोड़कर बेमेल स्वरों में गा उठती है। सामाजिक विधि-निषेध के नीति विधान के विरुद्ध छायावादी प्रतिक्रिया सन् २० पूर्व से ही चल पड़ी थी परन्तु प्रेम की भाषा इतनी धूमिल हो कि उसमें मानव-मन एक विचित्र घुमड़न में पड़कर रह ग सौन्दर्य की प्रतिमा नारी का अशरीरी सौन्दर्य ही कविता का वि रहा, प्रणयोद्गारों ने दार्शनिक परिधान पहन लिया था। 'ब का 'हालावाद' इन्हीं प्रणय मूलक भावनाओं का उद्गार प जो एक विप्लव के रूप में फूट पड़ा। तीव्रतम वासना सामा की शिला के नीचे तड़प उठी संयम सहन न हो सका।

---

* ध्यान किये जा मन में सुमधुर-सुखकर सुन्दर
मुख से तू अविरत कहता जा, मधु मदिरा-माद

मैं कहाँ हूँ और वह आदर्श मधुशाला कहाँ है ?
विस्मरण दे जागरण के साथ मधुबाला कहाँ है ?
है कहाँ प्याला कि जो दे, चिर तृषा चिर तृप्ति में भी ?
जो डुबा तो ले, मगर दे, पार कर हाला कहाँ है ॥

कवि की 'सफाई' यह है कि कवि ने यह गीत जीवन-समर में लिखे हैं अतः यह पलायन नहीं है, चीत्कार, पलायन नहीं, आवारापन नहीं, उच्छृङ्खलता नहीं, अभावों से भरे जीवन की फूत्कार है।

राग के पीछे छिपा, चीत्कार कह देगा किसी दिन ।
हैं लिखे मधु गीत मैंने, हो खड़े जीवन-समर में ॥

कवि चला, रुका नहीं 'दूपित मस्तिष्क' से ही सही, दुनियाँ क्या समझे, वह समझने की योग्यता भी नहीं रखती अतः कवि के लिये अब "लौटना कठिन है।" विश्व को देखना हो तो वह बच्चन के 'नेत्र द्वारा सौन्दर्य' देख ले, यहाँ शंख की ध्वनि के साथ, झाँझ की झनकार, काठ की माला के साथ कुसुम का हार, शुष्क ज्ञानी के साथ, रस-सिद्ध कवि, और सत्य के साथ स्वप्न की भी दरकार है तो यह 'हालावाद' स्वप्न है, संघर्ष की छलना है, वासनाओं का सीधा विस्फोट है, अरमानों का उद्दाम ताँडव है, अभाव की कातर चीत्कार है।

"विश्व के कारागृहों की भित्तियों से निडर कवि" मानस हिल्लोति होकर जैसे शराब के छींटों से सुप्त शव को जगा रहा हो। और इस व्यक्तिगत-व्यर्थ चेष्टा पर जग हँसा, पर कवि तो जान चुका था—

मैं हँसा जितना कि खुद पर—
कौन हँस मुझ पर सकेगा
और जितना रो चुका हूँ—रो नहीं निर्झर सकेगा ।

यदि कोई हालावादी से पूछ उठे कि महाशय ! आप चाहते क्या हैं तो वह उमर खैयाम के शब्दों में कह उठेगा—एक नदी

का किनारा हो, बादल छाये हों, सुरा और सुराही हों, प्याला हो और 'वह' हों और बस" बस इसी में सब समाप्त।

रूढ़ियों के विरुद्ध लड़ना ठीक है परन्तु लड़ाई का ढग एक और 'रूढ़ि' को जन्म दे, यह हानिकार होगा परन्तु कवि को तो एक बात ही दिखाई पड़ी—

विश्व तो चलता रहा है, थाम राह बनी बनाई।
किंतु इन पर किस तरह मैं—कवि चरण अपने बढ़ाऊँ।

शराब के प्याले में कवि का व्यक्ति डूबता उतराता रहा। और इसीलिये कवि को गम्भीर आवश्यता नहीं—

जब खोज किसी की हों करते, दृग दूर क्षितिज पर और सभी।
किस विधि से मैं गम्भीर बनूँ, अपने नयनों को नीचे कर।

'कवि' सुरा-सागर को सिर पर रक्खे भागता रहा, कहीं दूर, जहाँ 'पीने' में बाधा न हो और 'पिलाने वाला' हो। 'भार उतारने' के लिये सुरा-वितरण आवश्यक है ही।

मलयानिल को निज सौरभ दे—मधुवन कुछ हल्का हो जाता।
मैं करदेती मदिरा वितरित, जाता उर से कुछ भार उतर

'कवि यही करने को बाध्य है—

हम जिस क्षण में जो करते हैं-
हम बाध्य वहीं हैं करने को।

जागृति की चेष्टायें व्यर्थ हैं क्योंकि यह क्षण तो विस्मति का है (सन् ३५ का समय, जब टैम्स में भारत का रक्त निचोड़ा जा रहा था, आश्चर्य ?)

विस्मृति की आई है वेला, कर पाँथ न इसकी अवहेला।
आ भूले हास रुदन दोनों—मधुमय होकर दो चार पहर॥

गांधी जी ने 'मधुमय" होने का आविष्कार किया होता तो सन् ४२ में quit India 'भारत छोड़ो' का आँदोलन न चलाना पड़ता।

'अंधी क्रान्ति, के दो ही रूप मिलते हैं (१) हालावाद (२)

माँसलवाद। क्रोध में व्यक्ति क्रोधी ही रहना चाहता है वह पत्थर पर सिर पटकता है और सामने के संघर्ष से दूर रह कर व्यक्ति भाग्यवादी बनकर मधुशाला में आ डटता है।

निष्क्रियता* दो पैरों पर चलती है (१) दार्शनिक ऊहापोह पर (२) उच्छृंखल विलासिता पर। हालावाद में दूसरा तत्व रहा जिसके नीचे रहकर कवि ने दार्शनिक होने का भी दावा किया किंतु वह 'हेत्वाभास' ही रहा। दार्शनिक कहना चाहें तो हम इसे 'उन्माद का दर्शन' या 'दर्शन का उन्माद' कह सकते हैं। बच्चन में पहला था और उमर खैयाम में दूसरा। किंतु 'कवि' अपने को ही भुलावे में ही रख सका जग को नहीं, जग ने उसके उद्गारों को वासना मय ही कहा, वह थे भी। यह अस्वस्थ चिंता-धारा, यह भावुकता-मय-उच्छृखंलता इतिहास के एक ही पृष्ठ में सिमट कर रह गयी। युग-चेतना हालावादियों की गणना करते समय बच्चन के नाम पर अँगुली रख कर मौन रह गई।

और बच्चन को भी 'हालावाद' के पश्चात् क्या मिला, निराशा, नियति, और अतृप्ति। मधुपान के पश्चात् यही मिलता है। कवि ने पीने के पहले ही लिखा था।

छुड़ा मत भुजपाशों से प्राण!
नये मक्खन सा कोमल तन!
दूध से धोया सा है मन!
क्यों कि
ईश्वर को मैं नहीं जानता
उसकी सत्ता नहीं मानता
जिसे न देखा जाना कैसे उसको लेता मान?

ऋषि ने ईश्वर का आविष्कार किया था और 'बच्चन' ने

---

* लाख पटक तू हाथ पाँव पर, इससे कब कुछ होने का
लिखा भाग्य में तेरे जो बस—वही मिलेगी मधुशाला।

हाला का। धन्य है, जिसे देखकर यह कवि सौन्दर्य की हाला का मान कर पाया, वह मधुबाला इस प्रकार आई।

"मनुष्य ने अपने जीवन को अपूर्ण समझा 'पर उसने उस अपूर्णता के सामने सिर न झुकाया, मन में यौवन था, रोम रोम में यौवन था...........उसने मधुवितरण करने वाली मधुबाला के पग-पायलों की रुन, झुन, रुन झुन सुनी.........उसने अपने चारों ओर कल्पना का संसार बना डाला...........वह जानता था कि उसके स्वप्न संसार की वास्तविकता के साथ सहयोग न कर सकेंगे इसलिये पाने के अरमान को ही उसने प्राप्ति-सुख समझ रक्खा था, कहता था·"पा जाता तल, हाय न इतनी प्यारी लगती मधुशाला".........

पाने के अरमान को ही 'प्राप्ति समझने वाले हालावादी ने स्वप्नों के संसार को ही सत्य समझा राष्ट्रीय, संघर्ष से आँखें फेरकर कवि 'उषा के गाल चूमने लगा और उस पर भी कवि को अभिमान है।

"समझ सकेगा उसे कोई? आज तक संसार ने एक भी कवि को नहीं समझा"

'वाल्मीक' तुलसी, सूर, शेक्सपियर, दाँते, मिल्टन, रूमी, फिरदौसी, गोर्की को समझने का गौरव रखने वाला संसार 'हालावादी' को न समझ पाया और 'कवि का गर्व देखिये—

यद्यपि 'कवित्व दैव का सबसे बड़ा दण्ड है' फिर भी इस अपराधी ( बच्चन ) की इतनी पूँछ क्यों है' ? पूँछ हुई तो, किन्तु रही नहीं, न रह सकती थी उसका कारण यह नहीं था कि कवि को संसार समझ ही न पाया अपितु इसलिए क्योंकि यह 'हालावाद' उसके योग्य न था निस्संदेह संसार व्यर्थ और हानिकर 'उन्माद को अधिक दिनों नहीं अपना सकता। किन्तु कवि कहता रहा—

बस हम दीवानों की टोली चल देने को तैयार हुई। और इन "दीवानों' को कुछ समझना बाकी न रहा—

'कल्पना, सुरा औ साकी है—पीने वाला एकाकी है।'

यह भेद हमें जब ज्ञात हुआ, क्या और समझना बाकी है? हालावादी 'कर में एक सुराही बाकी' लेकर झूमता चला। उसका 'तन मिट्टी का था, मस्ती का मन था' और 'मतवाले' जाम जाम जपते थे ( राम, राम नहीं )। पराजयवादी कवि ने देखा—

'इस पार नियति ने भेजा है—असमर्थ बना कितना हमको।'

और तब उसका 'ध्येय विस्मृति' बन गया। अतः हालावाद के निम्न तत्व स्पष्ट लक्षित हुये—

(१) सामाजिक रूढ़ियों के विपरीत असामाजिक, असंतुलित उच्छृङ्खल विद्रोह।

(२) नियतिवाद का समर्थन

(३) निराशा, विस्मृति का आवाहन

(४) विवशता की कसक पर उसके लिए प्रयत्न शील न बनकर अरण्य-रोदन।

(५) हाला, बाला, मधुशाला, सुराही, प्याला का राज्य स्थापित करने की महत्वाकांक्षा।

(६) पथ भ्रष्ट, लक्ष्य हीन अराजकता।

(७) अभिव्यक्ति सरल, सीधी-उन्मादक भाषा में।

आवारापन का प्रचार देखिये—

मैं दुनियाँ का हूँ एक नया दीवाना।
मैं दीवानों का वंश लिये फिरता हूँ॥
मैं मादकता निःशेष लिये फिरता हूँ।
जिसको सुनकर जग झूम झुके लहर
मैं मस्ती का सन्देश लिए फि—

क्षण में आकर्ण निमग्न, आवाहन गी-

हिन्दी विभाग के आचार्य वर्ग के सतत प्रोत्साहन तथा आशीर्वाद का ही फल है कि मैं 'लेखनी पकड़ सकने में समर्थ हो सका हूँ। वस्तुतः इस लघु पुस्तिका में जो ग्रहणीय है वह गुरुजनों का और विगर्हणीय मेरा है।

'विप्लव' के इस युग में 'धन्यवाद' के विरुद्ध भी विद्रोह उठ खड़ा हुआ है किन्तु फिर भी मैं अपने प्रियमित्र कैलाशचन्द्र गुप्त का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने सामग्री संचय के कठिन संघर्ष में मेरी आशातीत सहायता की है, यदि उनका सहयोग मुझे प्राप्त न होता तो पुस्तक लिखना असम्भव ही हो जाता।

श्री रामबाबू शर्मा एम० ए०, श्री स्वामीदत्त त्रिपाठी एम० ए० तथा श्री रामबाबू शर्मा एम० ए० (द्वितीय) ने अँगरेजी साहित्य सम्बन्धित सामग्री जुटाने में बड़ी सहायता की है एतदर्थ मैं उक्त मित्रों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

चित दृष्टि से देखकर जैसे कोई व्यक्ति अफीम-सेवन से उस कष्ट का मानसिक स्थिति से अपना दामन छुड़ा लेता है, अपनी निराशा अक्षमता को नियति का परिणाम समझता है, असफल छात्र की तरह आत्म हत्या न कर सुरा-पान करता है, अपने व्रण को सहलाता है, रोग का ठीक निदान न सोच कर आत्म प्रवंचना को आत्म समाधान समझ लेता है, उसी प्रकार 'हालावादी' दर्शन सामने की भीषण परिस्थितियों को चुनौती न देकर झुठलाता है। विस्मृत के उधेड़-बुन में ही सारा जीवन बिता देना चाहता है।

मैं मदिरालय के अन्दर हूँ—
मेरे हाथों में प्याला।
प्याले में मदिरालय बिम्बित—
करने वाली है हाला।
इस उधेड़बुन में ही मेरा—
सारा जीवन बीत गया।
मैं मधुशाला के अन्दर था—
मेरे अन्दर मधुशाला।

कवि का आग्रह है कि यह मधुशाला' एक रूपक काव्य है। किन्तु रूपक काव्य तो 'कामायिनी' भी है। उसका 'रहस्यवाद' भी आदर्शवाद पर खड़ा है। आत्मा व परमात्मा की उलझन वहाँ भी है। जायसी में भी 'पद्मावती' मधुबाला के समान ही आकर्षक है किन्तु ये कवि निराशा, पलायन, पराजय, विस्मृति की देन नहीं देते। जीवन के कठिन सोपानों पर चढ़कर आशा विश्वास व साधना का सन्देश देते हैं, जीवन की सारी भव्यता वहाँ केन्द्रित है। कवि का ध्यान 'विषयम' जीवन पर गया अवश्य है परन्तु वह उस विष के प्याले को न पीकर 'साकी' से मधु का सागर' माँगने लगता है, कुछ क्षणों को सुखद बनाने के लिए—

विश्व तुम्हारे विषमय जीवन, में लापायेगी हाला।
यदि थोड़ी सी भी वह मेरी, मादकता साकी वाला।
शून्य तुम्हारी घड़ियाँ कुछ भी, यदि वह गुंजितकरपाई।
जन्म सफल समझेगी जग में, अपनी मेरी मधुशाला॥

'पराधीन विषमता से पीड़ित भारत को बच्चन ने मधुशाला में बैठा दिया।'

प्रस्ताव तो अच्छा था।

# माँसलवाद

प्रीति तराने गाने वाले - सांध्य विहग से हम चंचल।
खोल चला अंतस्तल अम्बर, नग्न माधुरी उच्छृङ्खल
यह मुहूर्त शुभ पर्व पड़ा है - इसे मनालें आज सखी।
सागर सीमा तोड़ चला तब, सरि की कैसी लाज सखी ?
आज पीते ही चलो, पी पी जलो उन्माद वाले
जग के इस पुण्य विचारों में, हम आग लगादें झंझा-सी।

'माँसलवाद,, वस्तुतः 'हालावाद' का ही प्राण सखा है किन्तु अभिव्यक्ति में अंतर है। वस्तु की दृष्टि से दोनों कवि प्रेम के विप्लवी तराने गाते हैं—वही वासना के-और विलास के। 'हालावाद' प्रतीक-पद्धति पर चला है उसके पीछे फारसी के सूफी कवियों की परम्परा है अतः उसके कवि की अभिव्यक्ति आपाततः स्थूल लगने पर भी उसके 'उन्माद' के नीचे अपेक्षाकृत कुछ गहराई अवश्य है।'हालावाद' का कवि वासना की प्रशस्ति करता है, किन्तु वह उषा के ही गाल चूमकर उद्‌गार प्रकट करता है, ऐंद्रिकता की वहाँ सिफारिश अधिक है, चित्रण कम है। कवि अपनी 'फिलासफी' को सम्मुख रखना चाहता है। हाला-वाला की पुनरावृत्ति में कवि स्वयं डूबता है, कुछ भुलाने के लिये, स्वप्नों की नगरी बसाने के लिये किन्तु 'माँसलवाद' में कवि अपनी यौन-तृष्णा को प्रतीकों में नहीं बाँधना चाहता वह केवल यह उलाहना नहीं देता चाहता कि 'वृद्ध जग को मेरी जवानी क्यों अखरती है' वह तो जैसे 'सलौनी' के शरीर पर आक्रमण कर अपनी तृष्णा मिटाना चाहता है क्योंकि अनुशासन वह सह नहीं सकता, 'पापी' बनना उसे स्वयं स्वीकार

है पर वह तो "क्रीड़ातुर पंछी" है जो अपनी 'जलन टटोल' टटोल कर उस पर अंकुश नहीं रख पाता। अतः माँसलवाद का कवि 'अंचल' अपनी 'मधूलिका' में ऐंद्रिक चित्र देकर, उन्हें देखकर पागलों की तरह उन्हें पाशवद्ध करने को दौड़ता है। अट्टहास करती हुई यौन-पिपासा उसमें 'फूत्कार' बनकर निकलती है। उसमें एक ओर यौवन का प्रचण्ड निर्वन्ध प्रवाह है तो दूसरी ओर अनुभूति (तृष्णा मात्र) की विचारोत्तेजक आँधी। † माँसलवाद "मनुष्य के पाशविक विकारों का उन्मत्त उभार" मात्र है।

'मधुशाला' में बैठा कवि (हालावादी) अंचल से अधिक समझदार है, वह जानता है कि वह 'प्याला' को समझ बूझकर उठा रहा है, 'मधुबाला' को वासनामयी दृष्टि से देखता है परन्तु वह गिद्ध की तरह टूट नहीं पड़ता, वह वासना की 'घुमड़न' को प्याले में घोलकर बहाता, है जबकि माँसलवादी कवि में सनसनाहट अधिक है। मूलतः दोनों अतृप्ति की 'उमड़' को व्यक्त करते हैं, यौन-वृत्ति पर संयम स्वीकार दोनों नहीं करते, दोनों नकारात्मक-नैतिकता के समर्थक हैं परन्तु जैसा कि मैंने कहा कि माँसलवादी अंचल में ऐंद्रिकता, पाशविकता की सीमा तक पहुंच जाती है वह सौन्दर्य का कवि नहीं, गोरी-गदकारी-सलौनी के 'माँस' की प्यास का कवि है। उसे देखकर उसके शरीर में वेदना नहीं, वेग उत्पन्न होता है। "नोंच नोंचकर तृष्णा पूर्ति के लिये। उसमें अपरिमेय 'भीम-भैरव विस्फूर्जन' है। 'हालावादी' में खुमार अधिक है, अंचल में उद्‌गार, 'बच्चन' में निराशा व नियतिवाद बोलने लगता है, वह अलग दुनियाँ बसाने और मस्ती दिखाने का प्रदर्शन अधिक करते हैं, अंचल उन्माद को व्यक्त ही नहीं करते, उसे कार्य रूप में परिणत करने और 'अस्मत' लूटने के लिए भी प्रस्तुत हो जाते हैं। माँसलवाद के पीछे केवल एक दर्शन है—

† विनय मोहन शर्मा—भूमिका लेखक (मधूलिका)

"देखो, यदि सुन्दर हो, तो टूट पड़ो, न सोचो न रुको"

मधूलिका, माँसलवाद की प्रथम और अंतिम रचना मानी जाती है यद्यपि 'अंचल' की तृष्णा आज भी शाँत नहीं हुई है तथापि उनकी अभिव्यक्ति में अब वह भैरव-विस्फूर्जन नहीं रहा। संयम आ गया है, ऐंद्रिकता के स्थान पर भाव-तन्मयता आगई है। किन्तु 'मधूलिका' में अंचल की दृष्टि यहाँ है—

फूल उसास प्रदोलित, वक्षः स्थल जब उठ उठ जाता।
पावक सी इस रूप - घटा को, कौन विलोक अघाता?
गमक रही मद भरी मंजरी - सी - मधुमूर्ति नवेली।
गोरे अंग अंग में हाला, हालाहल सी अलिवेली॥
कहाँ मिलेगा फिर यह बाँका - प्यारा-प्यारा यौवन?

पंत ने भी 'उकसे थे अमियों से उरोज' कहा था किन्तु पूरी कविता में केवल एक पंक्ति माँसल थी यहाँ प्रत्येक पंक्ति में कवि "गन्ध अन्ध - पागल उच्छृङ्खल" दिखाई पड़ता है।

भूमिका लेखक महोदय ने 'भावों के ज्वार उठने, रूप को आँखों से पीने' की बड़ी प्रशंसा की है। कहना न होगा कि भावों का ज्वार कविता नहीं हमारे यहाँ काव्यात्मा 'रस' है, रस व्यंग्य होता है, अभिधेय नहीं, वासना का, भाव का कच्चापन 'रस' तक पहुँचते २ छूट जाता है यही कारण है कि शृंगार उन्मादक न रहकर प्रसादक हो जाता है।

'ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों २ खरी निकरै सी निकाई' में यही सौन्दर्य है। मूलभावना वही रूप-तृष्णा है परन्तु अभिव्यक्ति का स्वरूप कला-पूर्ण है, यह परिधान आवश्यक है, नग्न सौन्दर्य नारी शरीर की शव परीक्षा है, इसीलिये इसे 'अश्ललिता' समझा गया था (पर वह तो पुराने युग की चर्चा होगई है) भूमिका लेखक महोदय के (defencive criticism) दृष्टि-कोण को देखिये—'एक लेखक ने ठीक ही लिखा है—Beauty is perheps two naked and undomed for the modern

world' आधुनिक युग सौन्दर्य पर किसी किस्म का आवरण पसन्द नहीं करता' किन्तु यह माडर्न मैन की कुरुचि का प्रदर्शन होगा। पता नहीं लेखक के मार्डन मैन की परिभाषा क्या है? सौन्दर्य के अनावृत चित्रण का अर्थ यह नहीं है कि कवि ज्वार के ज्वर में स्वयं काँप उठे और पाठकों को भी पथ भ्रष्ट करने का प्रयत्न करे। श्रृंगार का वर्णन करना ठीक है, व्यभिचार का नहीं देखिये—

आज सुहाग हरूँ मैं किसका, लूटूँ किसका यौवन?
किस परदेशी को वंदी कर, सफल करूँ यह वेदन?

कवि प्रियतमा की वेणी को देखकर पूछता है—

कितने नयनों को मथ तुमने वेणी आज बनाई?

अतः

आज अमा पूरनिमा का यह मंगल मिलन दिखाओ।
हँस हँस कर वेणी लहराओ, हियरा मस्त बनाओ॥

'मधूलिका' की अधिक कविताओं की प्रथम पंक्ति में 'तृष्णा' शब्द आया है जो 'मदन जल' बहाती है।

छल छल मुक्त छलकती तृष्णा पुन्य मदन जल बहता।

इसीलिये वह स्वयं स्वीकार करता है।

इन सूनी घड़ियों में तुमको हेर रहा मैं पापी।

मस्ती का यह अतिरेक, विवेक को जला कर चलता है। कवि का यह विद्रोह भी विधवा की हाहाकार बन जाता है।

है रही लालसा मेरी सदा असम्भव।
विधवा सा हाहाकार किया करता हूँ।

मांसलवाद के कवि की उष्ण जवानी विध्वंस से भरी है, वह 'अनियंत्रित सत्ता से लथपथ ध्यानी' बनकर भी अनुभव करता है—

तुम क्या जानो इस कम्पन में कितनी मादकता है?
कितना है उन्माद अरे कितनी घातक कविता है?

उसके लिये 'जीवन एक पाप है, अभिशापों की छाया मात्र

जहाँ वासना सी लोलुप उर की माया फैली हुई है।' जीवन के प्रति कितना स्वस्थ दृष्टिकोण है।

माँसलवादी के लिये प्रकृति की वस्तुओं में भी वही उन्माद देखाई पड़ता है।

"अरी पगली मधुमत्त बयार, चली किससे करने अभिसार।"

कहीं कहीं 'प्रिय' 'सरकार' बन कर आगई है।

"सरकार तुम्हीं आये हो जीवन में कविता बन कर।"

हाला-मांसलवादियों को उच्च लक्ष्य की आवश्यकता नहीं—

मंजिल का क्या सोच स्वयं वह आकर मिल लेगी हमसे।
सागर स्वयं चले आवेंगे लख हमको व्याकुल प्यासे॥

और 'मलूकदास' की वाणी को मिलाइये।

दास मलूका कह गये सब के दाताराम।

× × × ×

कौन देखता है भविष्य को वर्तमान ही सार यहाँ।
प्रेमी के मानस से सुन्दर, सपनों का संसार कहाँ?

कवि के सम्मुख अन्धकार ही अन्धकार है, वासना की विद्युत-धाराएँ केवल चकाचौंध ही उत्पन्न करती हैं किन्तु वह प्रेम कह कर अमर बनाने लगता है, व्यक्तिगत कराह को सहने के लिये वह आत्म बल को जगाता है और इस प्रकार Flash and blood को ही सब कुछ समझ कर अतृप्ति की आग में अग्निकीट के समान जलता है।

प्रीति तराने गाने वाले, सांध्य विहग से हम चंचल।
खोल चला अन्तस्तल अम्बर, नग्न माधुरी उच्छ्रंखल॥

इस नग्नता के लिये तर्क देखिये—

सभी यहाँ से कफन लपेटे जाते किन्तु नग्न आते।
वहाँ सुना सब यौवन अनुभव रंग रूप सुख छिन जाते॥

कवि चाहता है—

जग के इन पुण्य विचारों में हम आग लगादें झंझासी।

हिन्दी के शृंगार क्षितिज पर धूमकेतु के समान उदय होकर हाला-बालावादी पाठकों का ध्यान अवश्य खींच सके किन्तु न तो यहाँ जीवन की गहरी अनुभूति है न सफल अभिव्यक्ति। उत्तरदायित्व हीनता के पुण्य-प्रसार में उक्तवादों ने सक्रिय सहयोग किया और उससे जिस 'फक्कड़पन' की बाढ़ आई वह कभी कभी तो बड़े कवियों में भी ध्वनित हुई थी—

हम दीवानों की क्या हस्ती, आज यहाँ, कल वहाँ चले।
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जिधर चले।
—'भगवतीचरण वर्मा'

संक्षेप में हम माँसलवाद के तत्वों को इस प्रकार रख सकते हैं।

(१) माँसलवाद नग्न नारी-सौन्दर्य का वर्णन करता है।

(२) कामुकता का भीषण प्रदर्शन सबसे अधिक यहीं देखने को मिलता है।

(३) यौन-सम्बन्धों पर किसी प्रकार का कोई अनुशासन कवि को सह्य नहीं है।

(४) कवि उमड़ते हुए वासना के प्रवाह को उत्तेजक चित्रों तथा उत्तरदायित्व हीन उक्तियों में बाँध कर रखता है।

(५) यह 'माँसलवाद' अंचल की 'मधूलिका' नामक काव्य संग्रह तक ही सीमित है जैसे बच्चन का हालावाद मधुशाला, मधुबाला व मधुकलश में। उग्र आचारवादी ( Puritan ) प्रवृत्तियों के विरुद्ध मानवीय भावनाओं की यह अभिव्यक्ति सफल होगई होती यदि कवि उत्तरदायित्व को एक ओर न रख देते, कोई समाज का आदर्श रूप सम्मुख रखते, शैले, कीटस, पन्त, प्रसाद ने भी रौद्रि चित्रण दिये हैं, स्वप्न बसाये हैं वेदनाँ व्यथा को व्यंजित किया परन्तु जो असामाजिक अंधविप्लव इन कवियों में मिला है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह विप्लव वर्तमान समाज से उत्पन्न असंगतियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।

———

# प्रगतिवाद—यथार्थवाद

परिस्थितियाँ:—

मुगल राज्य की अन्तिम छत सन् १८५७ में गिर कर ध्वस्त हो गई। जनता का स्वतन्त्रता संग्राम कुछ समय के लिये रुक गया। और देश गौरव से अभिमंडित सामंतों ने या तो 'अंग्रेज' से सौदा कर लिया या हत तेज होकर मध्यवर्ग में अपने को खो बैठा। शताब्दियों से प्रपीड़ित जनता एक आह छोड़कर पुनः अपने कार्य साधन में रत होगई। विदेशी ने देश को रियासतों और ब्रिटिश इंडिया में बाँटकर एकता के तारों को छिन्न भिन्न कर दिया। विक्टोरिया की घोषणा में पुजारी व मुल्लाओं के लिए बड़ा आकर्षण था, देश के लिए कुछ नहीं। आगे विधान सभाओं का अभिनय प्रारम्भ हुआ, भारतीयों को शासन सिखाने और योग्य हो जाने पर सत्ता हस्तांतरित कर देने का पुनीत विचार चलता रहा। सन् १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना हुई। जिसमें अवकाश-प्राप्त उच्च-मध्यवर्ग वालों ने भाग लिया। जनता सो रही थी क्योंकि १८५७ में वह अधिक थक कर निराश हो गई थी।

१९०९ में हिन्दू मुस्लिम-पृथक चुनाव सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया, राजनीति गोखले, गोविन्द रानाडे तथा आगे 'तिलक' के हाथों में खेलती रही। जनता ने अपना तीव्र असंतोष व्यक्त किया और इसी हलचल में सन् १९१४ का प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। देश से सहायता माँगी गई। परम श्रद्धालु महात्मा गांधी प्रस्तुत थे, लक्ष लक्ष युवक, लक्ष लक्ष मुद्राओं के साथ युद्ध में झौंक दिये गए। परिणाम हुआ १९१९ का माँटेग्यू-चैम्स फोर्ड एक्ट जिसने विधान सभाओं में थोड़ा परिवर्तन कर दिया। स्थानीय स्वराज्य तथा प्रांत

में मुख्य विषय 'रक्षित' कर अमुख्य विषयों को हस्तातंरित करने का प्रस्ताव किया गया।

समझौता वादी कांग्रेसियों ने देश के असंतोष के साथ विश्वासघात करना उचित न समझा और १६२० का खिलाफत आन्दोलन पुनः नमक कानून, तथा प्रथम गोलमेज सभा के वहिष्कार आदि में अपनी दृढ़ता को व्यक्त किया। जनता सुलभ पथ तथा खतरा कम देखकर 'महात्मागांधी की जय' बोलकर काँग्रेस के साथ हो चुकी थी। 'तिलक' की क्रांति पीछे पड़ चुकी थी। सन् ३०, ३१ में जब देश के नेता गोलमेज के सभाओं में देश का भाग्य निश्चय कर रहे थे, तब योरोप 'यंत्रयुग' के पूर्ण वैभव से जगमगा रहा था। १६ वीं सदी में जो वहाँ व्यावसायिक क्रान्ति (१७५०-१८५०) हुई, उसमें जर्मनी फ्रांस, इंग्लैंड आदि देशों की साम्राज्यवादी सरकारों ने बाजार खोजने का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। अफ्रीका, भारत, पूर्वी द्वीप, फारस आदि सभी पिछड़े देशों में आधुनिक यंत्रों से उत्पन्न नवीन वस्तुओं का विक्रय कार्य बढ़ता गया। व्यक्तिगत जोखिम individual interpriso की प्रधानता हुई, स्वतन्त्र शिल्पी कुछ व्यक्तियों द्वारा संचालित कारखानों में नौकरी करने को वाध्य हुए जिनका श्रम के लाभ में उनका भाग न था पिछड़े देशों में सरकारें योरोपीय देशों की थीं और योरोप से ही पक्का माल मँगाना था अतः ढाके की मलमल बुनने वालों के अँगूठे काट कर कपास को इंग्लैण्ड में ले जाया गया और लिवरपूल व मैन चेष्टर से नग्न भारत व अन्य देशों के लिए वस्त्रों की देन आने लगी। योरोप का अजिर जर्जर पराधीन देशों के रजत और रक्त से चमक उठा। उधर रूस में वहाँ की प्रबुद्ध जनता ने जारशाही के विरुद्ध क्रांति की और समाजवादी शासन स्वीकार किया। योरोप के मशीनरी वाद की प्रतिक्रिया इस समाजवाद में हुई। एकत्र पूँजी का वितरण होना आवश्यक था। पूँजीपति व श्रमिक ये दो वर्ग अधिक समय तक एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी न रह सकते थे, संतुलन का एक ही मार्ग,

# विषय सूची

अलग नीड़ बनाकर पुनः छायावादी भृंगीकीट के समान गूँज भरना व्यर्थ है। आड़ी सीधी रेखाओं के प्रयोगों, विचित्र तथा कौतूहल पूर्ण उपमाओं तथा भद्दे प्रदर्शनों से चकाचौंध उत्पन्न अब नहीं की जा सकती, यह ठीक है कि प्रयोग अच्छी वस्तु है तथापि कविता का मुख्य गुण ( Inspiration ) संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है जिसका प्रयोगवादी कविताओं में एक अच्छी संख्या में अभाव है। चित्रों की दृष्टि से प्रकृति-वर्णनों में कुछ अच्छे चित्र मिलते हैं कुछ मर्मस्पर्शी भी हैं जैसा हमने ऊपर देखा परन्तु अभी वे नगण्य हैं, तात्पर्य यह कि 'कोरे प्रयोग सफल नहीं हो सकते जबकि उनके पीछे कोई "सुगठित अर्थ योजना" न हो जिस अन्विति के अभाव तथा धूमिल अस्पष्टता से छायाकाव्य उठ गया वही पथ यदि प्रयोगवाद अपनाता है तो उसका भी भविष्य निश्चित है, जो कविता 'भाव' की अवहेलना करती है वह जीवित नहीं रह सकती। यही कारण है कि 'प्रयोगवाद' का इतना अधिक विरोध हो रहा है और वह दोनों दृष्टियों से है 'वस्तु' की दृष्टि से भी और अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी। जो कवि रहस्य की गुफा से निकल कर मुक्त साँस ले रहा था, जिसने सामान्य, सरल भाषा में प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति को सम्बल बनाया था उसमें प्रौढ़ता लाने का प्रयत्न करना उचित था। जो कवि मानव मूल्यों की नूतन स्थापना करना चाहते थे, जो नूतन व्यवस्था की अवतारणा के लिये पूँजी-वाद पर आक्रमण कर रहे थे उनका ध्यान बँटाकर उन्हें 'प्रयोगों की कारा' में बंद करना घोर प्रतिक्रिया है, किन्तु हिन्दी साहित्य में नवीन वाद खड़ा करना सहज है और प्रवर्तक महोदय प्रत्येक बात के लिये पहले से ही प्रस्तुत है ( बदनाम न होंगे तो क्या नाम न होगा ? ) कम से कम 'योनवादी' अज्ञेय 'प्रयोगवाद' तक आ गये यह प्रगति कम नहीं है।

विरोध का प्रथम कारण यह है कि जो कुछ कहिये वह जीवन से विमुख न हो, कोरा रोमांस न हो, दूसरे जो कुछ कहा जाय

'रूप' की दृष्टि से भी विकास होगा किन्तु जिन कवियों को चुना गया है उनमें 'मिसिज' गिरजाकुमार माथुर (शकुन्तला माथुर) तक सम्मिलित हैं। भवानी मिश्र की वे कवितायें ली गई हैं जो उनकी प्रतिनिधि कवितायें नहीं हैं। अब रहे पाँच कवि उनमें रघुवीरसहाय तथा नरेशकुमार मेहता व्यक्तिवाद व रोमांसवाद के ध्वंसावशेष से लगते हैं। अब शेष ३ कवियों में हरिनारायण व्यास में सिद्धान्तों की घोषणा अधिक । शमशेर बहादुर में सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने की तीव्रता है पर वह गद्य में भी 'अदा' हो सकती थी, 'धर्मवीर भारती' में प्रभाव की प्रेषणीयता सबसे अधिक है, परन्तु उनमें 'हालावादी' संस्कार अवशेष हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेगी झोंपड़ी
मिट जायेंगे नीलम निलय भी ॥

—भवानीप्रसाद मिश्र

नये मनुज के हाथों में श्रम की रेखायें
आल्प्स रचेगा नए रूप में
राइन वोल्गा गंगा के वह इस धरती पर आज
लिखेगा नये जल छन्द

—नरेशकुमार

युक्ति के सारे नियन्त्रण तोड़ डाले
मुक्ति के कारण नियम सब छोड़ डाले
अब तुम्हारे बन्धनों की कामना है
खोल दो अब द्वार प्रेयसि प्रात का
मुक्त हो बन्दी अभागिन राह का

—रघुवीर सहाय

मुझे तो वासना का विष हमेशा बन गया अमृत।
बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद।

गुनाहों से कभी मैली हुई बेदाग तरुनाई।
सितारों की जलन से बादलों पर आँच कब कब आई ?
—'भारती'*

अज्ञेय जी के प्रथम 'सप्तक' के कवियों में अधिकांश ( यद्यपि सब कवि नहीं हैं, राहों के अन्वेषक भी नहीं ) कम से कम सिद्धांत की दृष्टि से प्रगतिशील 'लेखक' विचारक अवश्य थे किन्तु दूसरे सप्तक में 'मनमौजी' 'रोमांटिक' या विशुद्ध रूपवादी formalists अधिक हैं, 'सप्तक' में नाम आ जाने से कवि की उपाधि मिल गई यही बहुत है किन्तु किसी भी दृष्टिकोण से 'प्रयोगवाद' की ये रचनायें प्रतिनिधि रचनायें नहीं मानी जा सकतीं। डा० रघुवंश ने 'प्रयोगवादी' कवियों की कड़ी आलोचना होते देखकर माता जैसी ममता दिखाते हुए कहा है—"इन प्रयोगशील कवियों से हमें पूरी आशा रखनी चाहिए क्योंकि जैसा कहा गया है कि इन सभी कवियों में सामाजिक चेतना के प्रति जागरूकता है, इनमें कोई भी उस कोटि का असामाजिक व्यक्तिवादी नहीं है जिस कोटि के कवि और कलाकार योरोप के पिछले युग से ही भिन्न वादों के अन्तर्गत हुए हैं।" डा० साहब यह तो मान ही लेते हैं कि इन कवियों में असामाजिक व्यक्तिवादी हैं तो अवश्य पर उस वे 'कोटि' का प्रश्न उठाकर 'सत्य की कटुता' को कम कर देते हैं, ठीक है, हमें प्रत्येक सामाजिक, असामाजिक कवि से आशा है, किन्तु क्या दूसरे तार-सप्तक के "अद्वैतवादी, गांधीवादी", रोमांसवादी, वासना के गायक कवि सजग साहित्यक कहे जा सकते हैं ? 'कोटि' का प्रश्न सापेक्ष्य है। अतः उस सम्बन्ध में यही कहना होगा कि इन कवियों में न सामाजिक उत्तरदायित्व को समझने की चाह है न अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने की। 'भारती' व 'शमशेर' में शक्ति है पर उन पर हाला, प्याला का प्रभाव अधिक है। यदि 'प्रयोगवाद की सूची में नामों की वृद्धि ही करनी थी तो अभी इनसे बाहर बहुत से कवि

---

* quoted by गोपाल कृष्ण कौल।

मिल सकते थे। गिरजाकुमार माथुर ने इधर संकेत भी किया है यथा डा० रांगेय राघव केदारनाथ, चन्द्रभूषण, त्रिलोचन शास्त्री आदि। इनमें केदार, रांगेय राघव तथा शास्त्री जी तो प्रयोगवाद के दूसरे सप्तक में आने ही चाहिये थे, क्योंकि इनमें सामाजिक चेतना अधिक मुखर है किन्तु इनके स्थान पर ऐसे कवियों को चुना गया है जिन्हें कवि कहना भी कठिन है। स्वयं गिरजाकुमार माथुर द्वितीय सप्तक की अधिकांश सामग्री को 'कैशोर' (एडोलेसेण्ट) तथा 'अपरिपक्व' मानते हैं उनके अनुसार "किसी की रचना में ऐसा प्रमाण नहीं कि प्रयोगशील परम्परा आगे ही बढ़ी है।" इससे स्पष्ट है कि प्रयोग का ह्रास दूसरे सप्तक से ही मिलने लगा।

'दूसरे सप्तक' में एक विशेषता अवश्य देखने में आती है कि इसके कवि अज्ञेय की तरह उलझी हुई अभिव्यक्ति को लेकर नहीं चलते, शमशेर, भारती आदि सांकेतिक पदावली में नहीं बोलते, गिरजाकुमार माथुर को 'अभिधा' से घोर घृणा जान पड़ती है, परन्तु उनका काव्य स्वयं ध्वनि काव्य का उत्तम उदाहरण उपस्थित नहीं कर पाता।'A bold error is less shameless की दृष्टि से दूसरे सप्तक के कवि अज्ञेय आदि कवियों से कुछ आगे अवश्य हैं। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र ने एक विनोद की बात कही है वे कहते हैं कि अज्ञेय का यह कहना कि आज का कवि स्पष्टता से नहीं कह पाता, संवेदना के उलझाव से वह पीड़ित है, गलत है, क्योंकि उसी अनुपात में पाठक का मन भी तो उन्हीं गुत्थियों में पड़ा हुआ है, वस्तुतः पाठक का मन उतना सन्देह ग्रस्त नहीं है जितना संवेदना की उलझन का बहाना लेकर इन कवियों का। दूसरे सप्तक में स्पष्टतः भावनाओं के साधारणीकरण में उतनी बाधा नहीं पड़ती जितनी अज्ञेय की कविताओं में, कारण यह है कि जब लेखक अपनी दुर्बलता छिपाना चाहता है तो वह उसे प्रयोगों के परिधान में लपेटता है, प्रतीकों में सजाता है, सत्य में स्वयं एक बल होता है, कबीर को देखिए, अटपटापन कबीर में सारे प्रयोगवादियों से

अधिक था किन्तु वह "कुछ कहना चाहता था" जिन्हें परिस्थितियों को झुठलाना है उनके लिए पाठक का मन चाहे उलझा हुआ हो या निर्भ्रान्त हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता, अब हम सम्पादक 'अज्ञेय' के मौलिक तर्कों को लेकर उनकी परीक्षा करेंगे।

अज्ञेय के अनुसार प्रयोगवादी कवि के तीन उत्तरदायित्व हैं—काव्य विषय, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा संवेदना का पुनः संस्कार। काव्य विषयों के चयन में जैसा हमने देखा वैचित्र्य अधिक है, अति सामान्यीकरण की प्रवृत्ति श्रेष्ठ है परन्तु प्रतीक वही मार्मिक होते हैं जो चिर-परिचित होने के साथ साथ सादृश्य या साधर्म्य या प्रभाव को लेकर चलते हैं, प्रतीकों, उपमाओं, रूपकों आदि के माध्यम से कवि अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करता है किन्तु प्रयोगवादी इस क्षेत्र में जिन प्रतीकों को लेकर चलता है वे उसकी अस्पष्ट चिंतन-पद्धति में से न रंग का कार्य करते हैं न सौरभ का, न भाव-उद्योदन का अपितु मनोविज्ञान की गुदड़ी में 'पिनों' से लगाये चमकदार छींट के टुकड़े से जान पड़ते हैं।

सामाजिक उत्तरदायित्व की दृष्टि तो प्रयोगवादी के पास है, जैसा कि हम कह आये हैं, प्रयोगवादी तो 'आस्कर वाइल्ड' के पंथ की ओर उन्मुख होता हुआ जान पड़ता है केवल 'प्रयोगों को लेकर न सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा होगा न कलात्मका। भाव के सहयोग से ही 'प्रयोग सफल हो सकता है। संवेदना का पुनः सँस्कार तब स्वयमेव हो जायगा, साधारणी कारण की पद्धति प्राचीन चाहे भले ही हो गई हो परन्तु यह प्रयोग वादी भाषा व चिंतन का असाधारणी करण सफल नहीं हो सकता, कम से कम आशा तो यही है।

काव्य के लिये जिन 'स्वर क्षेत्रों को लेकर प्रयोग वादी चलता है उनमें निराला के मुक्त छन्दों (यथा जुही की कली आदि में) जैसी न गठन है न प्रवाह, निराला के छन्दो में प्रत्येक शब्द दृढ़ दुर्ग में ईंट के समान चुना गया है, संगीतात्मकता तथा भावाक्षिप्त

को लेप से उसे जमाया गया है तथा यथावसर ओज, माधुर्य आदि गुणों द्वारा उसे पुष्ट किया गया है जहाँ इसका अभाव है वहाँ निराला भी 'कठिन काव्य का प्रेत बन जाता है, अतः काव्य के साधारणी कारण के लिये गति, शक्ति, सहजता तथा नैसर्गिक मुखर-प्रवाह अत्यन्त आवश्यक है, उक्ति की वक्रता या विदग्धता तो पाठक सहन कर लेता है किंतु आड़ी सीधी लकीरों की बाढ़ पर बैठ कर बनाया हुआ शब्दों का 'पिरामिड' जिसके भीतर काव्य को 'चम्मच, चाय चप्पल' आदि सुला दिये जाते हैं, काव्य नहीं हो सकता अतः 'मुक्त छन्दों का मनमाना प्रयोग घातक है, कवित्त, सवैया, दोहा में प्रयोग करने के लिये कोई बाध्य नहीं करता किंतु केवल मुक्त छन्दों में ही प्रयोगवादी सफल हो सकते अन्य गीतों छन्दों आदि में सफल नहीं, यह कहना संकीर्णता तथा दुर्बलता है, काव्य के लिये चाहे तुक अनावश्यक को पर निश्चित पदयोजना, गति तथा शक्ति की बड़ी आवश्यकता है यदि यदि यह नहीं है तो प्रयोगवादी को कविता न लिखकर निबन्ध लिखना चाहिये।

डा० नगेन्द्र बौद्धिकता से असंतुष्ट हैं, बौद्धिकता वस्तुतः हार्दिकता का ही पर्याय होती है। प्रयोगवादी पद्धति ही अबौद्धिक हैं, संवेदन हमें डूबना सिखाता है, अपने 'स्व में, 'स्व में बाह्य वस्तुओं के प्रतिबिम्ब रहते हैं, बौद्धिकता के सूत्र से हम उनको चतुर मालाकार के समान एक सूत्रता देते हैं तब न अन्विति का अभाव रहता है न भावना का आतिशय्य-युक्त उद्वमन। 'प्रयोगवादी' नूतन प्रयोगों की खोज में रहता है, 'सुवरन की खोज में नहीं क्योंकि उसकी खोज तो कवि, व्यभिचारी और 'चोर करते हैं। 'प्रयोगों की यह प्रदर्शिनी काव्य को अजायबघर बनाने में संलग्न है। इस सम्बन्ध में श्री शिवदानसिंह का विचार है—"प्रगतिवादी या प्रयोगवादी लेखक नये प्रयोगों-नवीनता, उक्ति वैचित्र्य, और मनोवैज्ञानिकता के नाम पर साहित्य में मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व

किंतु प्रयोगवादी की दृष्टि थीसिस के विद्यार्थी के समान किसी नूतन 'प्रतीक' के संग्रह पर होती है, वह सोचता है कि पाठक इस कविता को पढ़कर मेरे इन प्रयोगों को देखकर मेरे सूक्ष्म निरीक्षण, मौलिकता आदि पर अवश्य प्रसन्न व मुग्ध होगा, किंतु यह नहीं सोचता कि मेरी कविता पढ़कर पाठक क्या सोचेगा? उसके हृदय पर क्या प्रभाव पड़ेगा? वह तिलमिला उठेगा उसमें मंथन उत्पन्न होगा या करुणा क्रन्दन? रहस्यवादी ने solitary Reaper में भी सौन्दर्य के दर्शन किये थे, कहा जायगा कि अलौकिक सौन्दर्य सत्ता के दर्शन करना रोमाँस है परन्तु अपनी अस्पष्ट और उलझी धारणाओं को व्यक्त करना क्या है? डा० नगेन्द्र ने यह ठीक ही कहा है कि प्रयोगवादी राग को भी बौद्धिकता के आवरण में लपेट देता है यह क्रम विपर्यय है, होना तो यह चाहिये था कि बौद्धिक मंथन को भी कवि इस प्रकार व्यक्त करता, कि वह पाठक के राग को उद्-बुद्ध कर सकता वस्तुतः प्रयोगवाद काव्य का प्रयोग उतना नहीं है, जितना "कविता द्वारा सोचने का प्रयोग"। ऐसा लगता है कि कवि अपने ही 'स्व' में डूब रहा है और जिस सूत्र को पकड़ता है वह टूट टूट जाता है फलतः 'वस्तु' तो दृष्टि से ओझिल हो जाती है और कवि प्रयोगों की धुन में नवीन नवीन उपमाओं और 'प्रतीकों की राशि लगाने लगता है। प्रयोगवाद की देन है. "प्रकृति सम्बन्धी कुछ सुन्दर कवितायें" जैसा कि हमने पहले भी कहा है किंतु यहाँ फोटोग्राफिक चित्रण ही अधिक है यदि कवि इनमें विचित्र उपमायें आदि न लाये तो इससे कम से कम इस क्षेत्र में तो प्रयोगवाद सफल हो ही सकता है।

---

है इस बुनावट के साथ हम आज बिजली का पंखा, रैफ्रीजेटर, फाउन्टनपेन, अटैचीकेस, वाइसिकल इत्यादि के अपर्याप्त सहवास से यथेष्ट भावमयता के अभाव में उत्तम चित्र सामने नहीं रख सकते"। (सद्गुरुशरण अवस्थी)

किन्तु चित्रण-सामग्री को ही ध्येय बना लेने पर अनर्थ ही होगा। मैत्रिस ने इसी लिये कहा था—

A general tendency of the images to forget the status of the metaphor or simile that introduced them and assume an autonomy and a right to propagate.

अर्थात् रूपक, उपमा आदि का क्या स्थान है ? इसे कवि लोग प्रायः भूल जाते हैं, परिणाम यह होता है कि उनका रूप स्वतंत्र एवं निरपेक्ष्य हो जाता है। तो प्रयोगवाद 'वस्तुओं' के चयन में असफल नहीं होता वह 'माध्यम'के प्रयोग में असफल होता है,हम एक 'तृण' को भी देखकर 'वितान' की कल्पना मन में ला सकते हैं, तार और रेलगाड़ी' को देखकर हम 'गंतव्य' की मधुर कामना में डूब सकते हैं,मजदूर की मैली 'टोपी'को देखकर हम शोषक के उष्णीस या हैट को सामने रखकर दोनों की तुलना करते हुये भावना का प्रवाह बहा सकते हैं, सड़क पर गोवर समेटती हुई 'लड़की' तथा धैर्यधन गदहे की पीठ पर डंडे जमाते हुये तथा स्वयं भी भारी बोझ से आहत श्रमिक को देखकर श्रम का महत्व हमारे मन में जग सकता है,और उस प्रकाश में प्रासादों की ईंट ईंट सामने नाचने लग सकती है किन्तु प्रयोगवादी एक दृश्य देखकर उसका प्रतीक या उपमा खोजने के लिए रुक जाता है, भावना के मुख को नहीं खुलने देता और यही उसकी सबसे बड़ी असफलता है। काव्य की अपनी प्रक्रिया है उसके विरुद्ध चलने पर भाव क्रिया सफल नहीं हो सकती इस क्रिया की उपेक्षा करने पर जीवन के प्रति नवीनतम् दृष्टिकोण भी प्रतीकों के पिंजड़े में फड़फड़ाता ही रह जाता है। यदि हम 'प्रयोगवाद' मूल में देखें तो उसमें 'प्रतीकवाद' किलबिलाता हुआ दृष्टिगोचर होता है। अज्ञेय जी जब यह कहते हैं कि 'प्रयोग' होते आये हैं' तो जैसे 'प्रतीकवाद' जैसे उनके 'अवचेतन' से बोलने लगता है। श्री शमशेरबहादुर सिंह जी के शब्दों में सुनिये' "मैं अगर दो शब्दों का प्रयोग करूँ तो ज्यादा अच्छा होगा। प्रयोग

और 'प्रयोग' प्रयोग, जैसा कि अज्ञेय जी ने स्पष्ट किया है, निरन्तर होते आये हैं, 'प्रयोग' के अन्तर्गत मेरा निवेदन यह है कि वह रुझान है जो उपरोक्त दो कविता संग्रहों और आमतौर 'प्रतीक' की कविताओं में पाया जायगा और यह हिन्दी में नयी आज की चीज है, यह चीज योरोप की उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में पैदा हुई, पहले विश्व युद्ध के आस पास चढ़ी और अब अमरीका को छोड़कर अन्य जगहों में कमजोर पड़ गई है.........हिन्दी में इनका युग बाकी था सो आया, इसने शिल्प और प्रकार में अद्भुत सम्भावनाओं, ललित कलाओं के आपसी सम्बन्ध और कलाकार के दायित्व की एक निष्ठा पर जोर दिया। छन्दों में बोलचाल की बोलियों और नाटकीय तत्व का समावेश करके कला वस्तु को पहले से कहीं अधिक मार्मिक ढंग से उजागर करने की अद्भुत और अपार सम्भावनायें उपस्थित कीं.......इलियट और पाउंड और उनके अनुयायी याद आ जाते हैं, इन्होंने शिल्प में बड़ी मेहनत की, बड़ा श्रम किया' 'अद्भुत इनकी पकड़ है' छन्द, गति, लय और ताल का 'अक्षर का 'मर्म' ये जानते हैं मगर फिर भी जैसे कुछ नहीं जानते।'

इस उद्धरण से 'प्रयोगवाद बनाम प्रतीकवाद' की प्रवृत्ति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है। अज्ञेय का कृतित्व एक शिल्पी के नाते हिन्दी साहित्य में अक्षुण्ण है। (केवल शिल्पी के नाते।) किन्तु अज्ञेय तथा उन्हीं जैसे 'उलझी संवेदना वाले कवि 'किसी जीवन सत्य की किसी सीमा तक कलात्मक अनुभूति करके अधिक से अधिक लोगों के लिए प्रेषणीय नहीं बना सके।''

प्रयोगवाद की असफलता में एक और मोह है वह है प्रयोगों द्वारा परम्परा स्थापित करने का उनकी दृष्टि से आज का प्रयोग जिस युग में वह होता है, उस युग में उसका यथार्थ मूल्यांकन नहीं हो पाता (बच्चन ने भी यही कहा था कि दुनियाँ ने किसी कवि को आज तक नहीं समझा, देखिये इसी पुस्तक में 'हालावाद' शीर्षक

ख, यह 'दम्भ है, परिस्थिति विशेष में विद्रोही कवियों की अव-
मानना हो सकती है और हुई भी है, किन्तु वे युग के विरोध का
कारण यह था 'कि उसके विप्लवकारी विचार सर्व साधारण को
बोध गम्य और ग्राह्य होते थे और यह उन्हें प्रिय न हो सकता था।'
रूप विधान को अत्यधिक महत्व दे देने तथा घोर व्यक्ति निष्ठना
के कारण ही प्रयोगवादी ( अज्ञेय ) को 'त्रिशंकु ❀ कहा गया है।

प्रयोगवाद के सम्बन्ध में रचनात्मक समीक्षा के रूप में एक लेख
तार सप्तक के कवि श्री गिरजा कुमार माथुर का है, हम पहले कह
आये हैं कि 'तारसप्तक' में अपेक्षाकृत गिरजाकुमार को कुछ
अधिक सफलता मिली है किन्तु कविताओं में ही इस लेख में नहीं।
आपके अनुसार 'कालिदास द्वारा नये उपमानों का प्रयोग कालि-
दास के व्यक्तिगत शैली वैशिष्ट्य की सीमा में ही आता है' अवश्य
आता है आपकी कविता में किये गये उपमानों का प्रयोग शैली
विशिष्टय की सीमा में आता, परन्तु है वह कौन सा तत्व 'कालि-
दास' में अधिक है जिसका कारण उसकी कविता हमें मुग्ध कर
देती है और आपकी नहीं कर पाती, कारण स्पष्ट है 'अनुभूति की
प्रेषणीयता का अभाव।' 'कालिदास' तो बुजुर्वा कलाकार था प्रयोग-
वादी तो सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने के लिए शपथ उठाता है
किन्तु कविता तो जैसे कह उठती है—

उधर गान कहता है यदि रोना आवे तो आँऊँ

रोदन का अर्थ है यहाँ सहृदयता, द्रवण शीलता, तन्मयता,
तादात्म्य और यही 'प्रयोगवादी' में नहीं है, बौद्धिक चिन्तन और
हृदय स्पंदन दो अलग वस्तुयें हैं।

'माथुर' साहब ने प्रयोगवाद की परम्परा दिखाते हुये बताया
है कि छायावादी शैली के भीतर से 'निराला' ने सर्व प्रथम प्रयोग
किये आपके अनुसार दूसरी आवश्यक बात यह है कि यह सभी ने

---

❀ देखिये प्रतीकवाद या त्रिशंकुओं का साहित्य—
शिवदान सिंह चौहान

स्वीकार किया कि जीवन की नवीन परिस्थितियों के कारण नवीन विषय वस्तु और उसकी अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रयोगों की आवश्यकता हुई, इन नवीन परिस्थितियों का अर्थ है.........उनसे उत्पन्न नये अनुभव, सम्बन्ध, मानसिक प्रतिक्रियायें, सामाजिक समस्याय और समाधान तथा यत्न।' तीसरी बात आपने यह बताई कि प्रयोग, प्रयोगशील कविता के 'साध्य सत्य' को..........वास्तकविता के हजार पहलुओं को हजार प्रभावात्मक, रसमय ढंग से कहने के साधन हैं।'‡

अपने लेख में माथुर महोदय वस्तुतः यहाँ दो बातें कहना चाह रहे थे (१) अज्ञेय जी द्वारा स्थापित 'सत्य' की परिभाषा का खंडन करना तथा 'प्रयोग' को संवेदना के उलझाव में ही सीमित न कर उसको व्यापक भावभूमि पर प्रतिष्ठित करना तथा परम्परा से आते हुए शैली वैशिष्ट्य के संदर्भ में ही प्रयोगवाद को रखकर उसका मूल्यांकन करना। इस सम्बन्ध में यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि 'माथुर' का 'सत्य' सामाजिक यथार्थ के अधिक निकट है, वह अज्ञेय 'स्कूल' की व्यक्ति निष्ठता तथा यौन वर्जनाओं की अस्वस्थता से अलग है अतः प्रशंसा का पात्र है। प्रयोगवाद 'शैली वैशिष्ट्य' है यह ठीक है किन्तु 'निराला' ने कुकुरमुत्ता और 'नये पते' तथा अन्य गजलों तथा मुक्तकों आदि का प्रयोग किया था वह किस लिये ? 'प्रयोग' की सिद्धि के लिये नहीं, ऐसा माध्यम खोजने के लिए जिसमें उनकी बात जनता समझ ले, अनामिका, तुलसीदास तथा रामकी शक्तिपूजा के 'निराला' व 'कुकुरमुत्ता' के 'निराला' में यही अंतर है जैसे सारी ऋजुता तथा 'प्रसादता' को लेकर व्यग्यों के बाण सम्हाँल कर निराला नूतन प्रयोगों में आ डटा है किंतु' प्रयोग वादी' यह नहीं कर पाता क्योंकि निराला का पुरुषार्थ, उसकी शक्ति प्रयोग के भीतर छिपे हुए अर्थ में हैं प्रयोगवदी में उस शक्ति के उस 'संवेदन' के दर्शन नहीं होते दूसरे 'प्रयोगवदी' प्रतीकों को

‡ काव्य में प्रयोगशीलता—

साध्य बना कर चल पड़ता है, मैं यह नहीं कहता कि सब कवि असफल हुए हैं किन्तु समष्टि रूप से 'प्रयोगवाद' में शक्ति, तथा स्पन्दन का अभाव है। माथुर साहब के अनुसार यदि प्रयोगवादी कहीं 'रसमय' मार्ग को अपना पाता तो इतनी विडम्बना का कोई कारण नहीं था, खेद यही है कि प्रयोगवाद की असफलता का मुख्य कारण उसकी रस-हीनता है। असाधारणीकृत भावनाओं का पुंजीभूत प्रयोगवाद अधिकांश में कौतूहल का विस्फारक अवश्य बना हुआ है। यह ठीक है कि परिस्थितियों के बदलने पर भावनाएँ बदलती हैं और तब अभिव्यक्ति का माध्यम भी बदलना चाहिये हम 'सूर के पदों' को आज सफल माध्यम नहीं बना सकते किन्तु प्राचीन प्रतीकों या प्राचीन माध्यम की भित्ति पर ही यह हो सकता है, आकाश में चिन्तन का तार बाँधकर उस पर 'कलाबाजी' करना व्यर्थ और उपहासास्पद है। माथुर साहब ने जिस बोधगम्यता communication पर सबसे अधिक जोर दिया है उसी का प्रयोगवाद में सब से अधिक अभाव है। मुक्त छन्दों के विषय में हम कह आये हैं कि मुक्त छंद हों अवश्य पर उनमें प्रवाह होना चाहिये मुक्त छन्दों का लिखना मात्रिक या वार्णिक छन्दों के लिखने से कहीं अधिक कठिन होता है कारण यह है कि मार्मिक छन्दों में जहाँ मात्राओं, तुकों आदि का बंधन है वहाँ मुक्त छन्दों में नीरसता तथा भाव हीनता, अनगढ़पन तथा व्यर्थ शब्द व्यय का खतरा है, किस पंक्ति को कहाँ से तोड़ दिया जाय? किस पंक्ति को कहाँ तक विस्तार दिया जाय ताकि उसमें प्रभाव उत्पन्न हो सके इसका ध्यान रखना साधारण नहीं है। निराला जी की सफलता का रहस्य यही है अतः मुक्त छन्द हो या अमुक्त छन्द, कविता यदि कविता है और यदि वह गद्य से किंचित भिन्न है तो वह अपने संगीत व प्रवाह के कारण ही, यह पिष्ट पेष्टित सत्य सदा नवीन रहेगा।

प्रयोगवादी कवि के अनुसार प्रयोग को दो बातों से खतरा है (१) वादियों से, (२) साइन बोर्ड वाली मनोवृत्ति के आलोचकों से।

दोनों तत्वों से असहमत होने का कोई कारण नहीं परन्तु ये दोनों तत्व 'स्वयं' सतही हैं क्योंकि काव्य की कसौटी प्रभाव है न कि प्रयोग। प्रभाव के लिए ही प्रयोग की साधना करनी होगी, यह निश्चित है कि प्रयोगवाद में प्रभाव का अभाव है, अच्छा होता, यदि 'प्रयोगवाद' रक्खा जाता इसके कारण क्या हैं, यह मैं बता चुका हूँ, प्रकृति वर्णनों में कुछ सजीविता अवश्य है परन्तु वह तो अभी प्रयोग कालीन ही है, रही दूसरी बात—उसका उत्तर यह है कि आलोचकों से भय क्यों ? अज्ञेय ने सम्पादन करके कुछ "अज्ञात कुल शीलस्य, को कवि बना दिया और चाहे वे सतह पर झख (मछली) मारने वाले हों या गोताखोर हों, उनका बार बार नाम लेकर कम से कम प्रचार तो करते ही हैं और अज्ञेय भी स्वीकार कर ही चुके हैं कि "बदनाम गर होंगे तो क्या नाम न होगा ?" यह ठीक है कि ध्वंसात्मक आलोचना सृजनात्मक प्रतिभा की चमक को नष्ट करती है, प्रोत्साहन की आवश्यकता है परन्तु तभी जब "सुपथ" पर चलने का प्रयास हो, काव्य के मूल 'तत्व' की अवहेलना कर जो कवि साधन को ही साध्य स्वीकार करता है, केवल रूप की असफल और काव्य प्रवृत्ति के विरुद्ध साधना कर प्रशंसा चाहता है, वह आलोचक से 'न्याय' नहीं माँगता। छायावाद के समानान्तर प्रयोगवादी कला तभी खड़ी हो सकेगी जब वैचित्र्य कम होकर हृदय व मीत्तपू दोनों की साधना निखर हो उठेगी और सामाजिक उत्तरदायित्व तभी निभेगा जब स्पष्ट समझना होगा कि कवि का कर्त्तव्य क्या है ? प्रयोगों की कारा में 'सत्य' के प्रकाश को बन्द नहीं किया जा सकता। किन्तु हम निराश नहीं हैं, आलोचक का क्षोभ 'असत्य' के प्रति होता है, 'सत्य' के प्रति नहीं।

ने "लोकमंगलवाद" का केवल संकुचित दृष्टिकोण सामने रख कर चले और इन्होंने 'निवृत्ति' व 'प्रवृत्ति' पक्षों को दो विरोधी शिविरों में रखकर भ्रान्त धारणाओं को जन्म दिया 'सूरदास' तथा रहस्य-वादी कवियों के मुक्तक काव्य के साथ इसीलिये वे उचित न्याय न कर सके और "आलोचना के क्षेत्र में भी एक वर्ग को व्यर्थ नीचा देखना पड़ा।"

## फारस में रहस्यवाद का विकास

इस्लाम में आत्मा ( रूह ) व 'परमात्मा' का सम्बन्ध "बन्दा व मालिक" का सम्बन्ध रहा। उपासना प्रधान इस्लाम में रहस्य का स्थान ही कहाँ था, वहाँ तो पैगम्बर की आज्ञाओं पर चलना तथा उसके माध्यम से ही 'खुदा' को पाने की चर्चा रही। फारस में 'सूफियों' ने रहस्य परम्परा स्थापित की। ईरान पर भारतीय अद्वैत सिद्धान्त का प्रभाव प्रारम्भ से ही रहा। 'यूलुस' यूहन्ना पर बौद्धों का। यूनान के प्लोटोनिस तथा डायनोसिस पर अद्वैत वेदान्त का प्रभाव लक्षित होता है। प्लोटिनिस को सूफी 'शेख अकबर' कह कर आदर देते हैं।+ इस्लाम के आचारवाद के विरुद्ध सूफियों में गुह्य साधना, चमत्कार, सुरा-प्रेमोन्माद चला, इसी को धार्मिक रूप दे दिया गया और लौकिक मादन भाव ही रहस्यवाद का आधार बन गया। सेनानी याह्वेवा ने इन्हें तलवार की शक्ति से दबाना भी चाहा परन्तु इनका विकास न रुका, ये साधक आत्मा व परमात्मा के प्रेम के गीत गाते ही रहे। 'आत्मा' के प्रेम व विरह को अभिव्यक्ति मिलती रही, सूफी उस रहस्यमय प्रिय का आभास प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में पाकर हर्षोन्मत्त होता था, उस आभास को पाकर उसे 'इलहाम' × हो आता था और

---

+ तसव्वुफ और सूफ़ीमत—चंद्रावली पांडेय।

× मज़ा शराब ( प्रेम का नशा ) का कैसे कहूँ तुम से ज़ाहिद !
हाय कम्बख्त तूने पी ही नहीं ॥

उस तन्मयता की अवस्था में वह रूह व खुदा में कोई अन्तर न पाता था। सूली पर मंसूर पुकार उठा "अनहलक़" अर्थात् मैं ही खुदा हूँ, यह अहम् 'ब्रह्मास्मि' ही था। ईरान में इस्लाम का आतंक था ही, सूफियों ने तत्पश्चात् कुरान की अपने ढंग से व्याख्या की और इस प्रकार मुहम्मद, इब्राहीम आदि सब पैगम्बर भी 'सूफी' मान लिये गये।

परन्तु इस्लाम में 'प्रेम' का दौरा चलाने वाले जूलनून तथा 'रिज़ा' सम्प्रदाय वालों को इस्लाम-शासकों ने कड़ा दण्ड दिया था। इसी रिज़ा सम्प्रदाय में 'यजीद' ने अद्वैत दर्शन का प्रचार किया था, "उसी की ज्योति कण-कण में देखी जाने लगी।" प्रेम प्याला चल पड़ा, वाह्य कर्मों की उपेक्षा हुई, एकान्त-सेवन बढ़ा, 'यजीद' व 'ज़ूलनून' ने गुरु की महत्ता स्थापित की, मुल्लाओं के आचारों की पूर्ण निन्दा की गई 'हल्लाज' ( मंसूर ) ने अपने प्राण देकर भी 'सूफ़ी' मत का गौरव स्खलित न होने दिया था। आगे चलकर 'इमाम गज़ाली' ने सदा के लिये इस्लाम व सूफीमत का समन्वय कर दिया। रहस्यवादी कवियों में हाफ़िज, उमर खैयाम आदि प्रसिद्ध कवि हुये।

७ वीं शती के वाद से सूफियों का भारत में निश्चित रूप से प्रवेश होता रहा। सूफियों के चमत्कार हमारे यहाँ प्रसिद्ध हैं, तुर्क शासक इन्हें वहुत मानते थे। शेख सलीम चिश्ती भी सूफ़ी ही था। हमारे यहाँ सूफियों ने साहित्य में एक परम्परा ही बना दी, कुतुवन, जायसी, उस्मान, कासिमशाह, नूरमुहम्मद, उस्मान प्रसिद्ध प्रेममार्गी कवि हुये। लौकिक प्रेम कहानियों का आधार लेकर, इन सूफियों ने आध्यात्मिक प्रेम को स्पष्ट किया। इन्होंने फारसी 'मसनवी' शैली में हिन्दुओं की प्रेमगाथाओं को पद्य-वद्ध किया और इसी के सहारे अपने 'दर्शन' को वाणी दी। प्रेममार्गी सूफियों ने "प्रेम की पीर" को जगाया और 'आत्मा' किस प्रकार उस परम सत्ता ( प्रिय ) को प्राप्त कर सकती है, किस प्रकार उसमें कष्ट

उठाने पड़ते हैं, और अन्त में किस प्रकार आशिक ( प्रेमी-साधक ) उस माशूक ( प्रिय-ब्रह्म ) को पाकर शराब पानी की तरह एक हो जाता है, इसी का चित्रण किया गया है।

'कबीर' पर सिद्धों के भारतीय साधनात्मक रहस्यवाद का प्रभाव अधिक था उन्होंने भारतीय परम्परा के अनुसार 'आत्मा को पत्नी' माना है। सूफियों के समान साधक को 'पुरुष' नहीं। परन्तु उनकी उक्तियों पर विरहानुभूति पर सूफियों का प्रभाव अवश्य है। किन्तु कबीर भारतीय प्रतीकों, चरखा आदि द्वारा ही अपनी रहस्यानुभूति को व्यक्त करते हैं। भारतीय योग शाखा व सिद्धों के रहस्यवाद से वे अधिक प्रभावित रहे। 'कबीर' से रवीन्द्र बहुत प्रभावित थे।

सूफ़ी रहस्यवाद की विशेषतायें—

( १ ) वेदान्त में 'आत्मा' के ऊपर आवरण चढ़ाने वाली 'माया' नामक शक्ति है किन्तु सूफ़ियों में 'माया' की कल्पना नहीं है। 'शैतान' ही 'रूह' को भटकाता है।

( २ ) साधक परमात्मा की प्राप्ति तब कर सकता है जब चार साधनों को पार कर जाये, ( १ ) शरीयत, ( २ ) तरीकत, ( ३ ) हकीकत ( ४ ) मारफ़त। 'मारफत' में पहले की अवस्थायें विधि-विधान सम्बन्धित तथा उनके द्वारा आत्म शुद्धि करने वाली हैं इनमें बड़ा कष्ट सहन करना पड़ता है। मारफत में 'रूह' फना होकर खुदा' में मिल जाती है। आत्मा व परमात्मा का यह तादात्म्य ही 'अनलहक़' अर्थात् 'अहम् ब्रह्मास्मि' कह कर प्रकट किया जाता है।

पानी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय।  
जो मैं था सोई भया, अब कछु कहा न जाय॥ 'कबीर'

शराब और पानी की तरह बन्दे व खुदा की एकता हो जाती है।

( ४ ) इस मत में प्रेम का अंश अत्यन्त महत्वपूर्ण है, 'रूमी' व 'जामी' जैसे कवि प्रेम के ही गीत गाते हैं, इस्लाम के आचारवाद

के विरुद्ध यह कितनी बड़ी क्रांति थी ? इस अवस्था में एक 'खुमार' या 'नशा' (लौ) का अनुभव होने लगता है इसी में ईश्वर की अनुभूति होती है इसीलिये सूफी विरह जगाते हैं।

*हरि रस पीया जानिये, कबहुँ न जाय .खुमार।
मैमत्ता घूमत फिरै, वाही तन की सार॥

(४) सूफी ईश्वर को स्त्री मान कर चला है। साधक उसे प्रेम-पात्री मान कर उसके रूप का आभास प्रकृति के कण-कण में पाकर विरह में तड़प उठता है, उसके हाथ की शराब पीने को (आध्यात्मिक शराब) लालायित रहता है। वसंत में अपने विरह के घावों को वह कुरेद कर ताज़े रखता है और उसी माशूक के लिये आहें भरता है।

भारतीय मत में यह 'आह-कराह' उतनी नहीं है। उसमें घाव खौंटने, तेग से कटने, नाले भरने, दिल के दाग़ देखने आदि की वीभत्सता नहीं है, यद्यपि प्रेम की तीव्रता कम नहीं है। .खुमार, मूर्च्छा का वर्णन भी कम रहता है। सूफियों के इस रहस्यवाद ने योरोप पर प्रभाव डाला था।

## योरोप में रहस्यवाद का विकास

अरबों का शासन 'यूनान' से लेकर स्पेन तक रहा। अरबों से योरोप ने बहुत बहुत कुछ सीखा। रहस्यवादी सूफियों का प्रभाव भी योरोप के कवियों पर पड़ा। दार्शनिक दृष्टि से प्लेटो के प्रतिबिम्बवाद में रहस्यवाद के बीज थे क्योंकि वह शाश्वत सत्ता का विश्वासी था। डायोनिसस पर अद्वैतवाद का स्पष्ट प्रभाव पड़ा था। यूरोप में ईसाई धर्म के प्रसार के साथ सूफियों के प्रभाव से Bride groom तथा आध्यात्मिक विवाह का वर्णन होने लगा और 'साधक' तुरायावस्था ( trance ) में अज्ञात प्रियतम के विविध आभासों की अनुभूति का वर्णन प्रतीक पद्धति पर करते रहे। संत

* Quoted by रामकुमार वर्मा।

'वर्नाड' ऐसे ही संतों 'में' थे। रोमॉटिक कवियों में ब्लेक, रहस्य-वादी कवि था। 'वर्डसवर्थ' ने प्रकृति रहस्यवाद दिया। कालरिज व शैली में मधुर रहस्यानुभूति के दर्शन हुये। उसकी दार्शनिक कविताओं में 'सर्ववाद' का वर्णन बराबर मिलता है 'ब्लेक' और उसके बाद 'अवरक्राम्बे' तथा इलियल 'यीट्स' 'हाउस मैन' आदि रहस्यवादी कवि कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त 'वायरन' तथा 'ब्राडनिंग' में भी हमें रहस्यानुभूति के स्पर्श मिलते हैं, किन्तु विशुद्ध रहस्यवाद की परिधि में शैली, ब्लेक, अबर क्राम्बे व यीट्स की ही गणना होती है।

ब्लैक कहता था—

The world of imagination is the world of eternity infinate and eternal. There exist in that eternal world realities of everything which we see reflected in the vegetable glass of nature. ब्लेक के बाद इसी धारा में, यीट्स ने लिखा। मिस मैकाले की भी रहस्यवादी श्रेणी में गणना होती है ये कवि कल्पना के जगत में उस परम सत्ता की 'झलक' को देखते और उन्हें वाणी देते थे।

ईसा की छटी शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक का योरोपीय रहस्यवाद साधनात्मक रहा। संत ग्रेगरी तथा वर्नाड (१८ वीं सदी) ने तुरीयावस्था में ही ब्रह्म की अनुभूति का वर्णन किया है। यही साधनात्मक रहस्यवाद आगे के कवियों के लिये आधार बना। इसके पीछे प्लेटो, अरस्तू का प्रतिबिम्बवाद का दर्शन था जो उपनिषद के अद्वैत सिद्धान्त से मिलता जुलता है।

God is absolute reality with no admixture of matter, with no potentiality or possibility of change. There is something in human soul which is unsoun-

dered from the Absolute. This in tellectual, formulation involves, "He is not", "he is not"❀

आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद की इस परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा कि ईसाई संतों में अज्ञात की अनुभूति 'इलहाम' के द्वारा ही होती रही जैसा कि सूफियों में होता था। सूफियों के अनुकरण पर ही वहाँ के रहस्यदर्शी कवि स्वप्नों में Heavenly Brid groom का वर्णन करते रहे विशुद्ध तर्क-पद्धति पर 'अज्ञात' का निरूपण न हो सकने से पापण्ड वढ़ता गया और निराली अनुभूतियों की, जो कि वेहोशी की अवस्था में अनुभूत थीं प्रतीक शैली में अभिव्यक्ति की जाती रहीं। इस दृष्टि से साम्प्रदायिक रहस्य-वादियों में ब्लेक-अवरक्राम्वे, यीट्स आदि कवि हैं और स्वाभाविक रहस्यवादियों में वर्डसवर्थ और शेले। हमारे यहाँ का रहस्यवाद व छायावाद शैले के स्वाभाविक रहस्यवाद को लेकर नहीं चला अपितु ब्लेक, यीट्स की साम्प्रदायिक रहस्य भावना को लेकर चला, जिसमें फ्रांस का प्रतीकवाद मिल गया। यह पहले रवीन्द्र में आया और उनके अनुकरण पर हिन्दी में काव्य का आलम्वन वना। साम्प्रदायिक रहस्यवादी कवियों यथा ब्लैक ने जगत को कल्पना में स्थित जगत का प्रतिविम्व माना। अर्थात् जगत की सत्ता वस्तुतः है नहीं, यह तो केवल उन रूपों की छाया है जो हमारे कल्पना जगत में रहते हैं अतः कल्पना का जगत ही सच्चा है, वास्तविक जगत नहीं, इसीलिए कविता का विषय भी वही "सूक्ष्म जगत" वनाया गया, व्यक्त जगत नहीं। प्रतीकों द्वारा उस सूक्ष्म जगत की अनुभूतियों को वाणी मिली।

यह कहना कि शैले व वर्डसवर्थ में आध्यातिमक संकेत मिलते हैं अतः यह स्वाभाविक रहस्यवाद है और ब्लैक-आदि में मूर्च्छा की अवस्था में आये हुए आभासों का चित्रण रहता है, तथ्य को तोड़ मरोड़ कर रखने का प्रयत्न है। ब्लैक, यीट्स आदि कवियों

---

❀ चिंतामणि—आ॰ रामचन्द्र शुक्ल द्वितीय भाग।

ने इसमें संदेह नहीं कि intution अन्तर्चेतना पर बल अधिक दिया है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उनका काव्य 'खुमारी या बेहोशी' का काव्य है। योरोप में भी इसे साम्प्रदायिक नहीं माना गया, जनसाधारण के लिए अयोग्य भले ही कहा गया तथा यह भी कि यह रहस्यवाद कोई सिद्धान्त नहीं है, मानसिक स्थिति विशेष है अतः यदि मानसिक स्थिति विशेष ही है तो काव्य का विषय बनने में क्या आपत्ति हो सकती है।⊛ ब्लैक व कीट्स की सारी कविताओं में स्वाभाविक रहस्यानुभूति न हो ऐसी भी बात नहीं। व्यक्तिगत रुचि की दृष्टि से 'शैली' की स्वाभाविक रहस्यवाद के अन्तर्गत रखी जाने वाली कविताओं में भी साम्प्रदायिकता की गन्ध आ सकती है। शुक्लजी द्वारा दी गई रहस्यवादियों की परम्परा में यीट्स के रहस्यवाद पर संतअेगरी व बर्नाड का प्रभाव चाहे न रहा हो परन्तु 'सर्ववाद' का प्रभाव अवश्य अधिक रहा। 'ब्लैक' के काव्य को भी हम दो भागों में बाँट सकते हैं। उसकी प्रथम भाग की कविताओं में कल्पना, प्रतीक तथा रहस्य का आधिक्य होने पर न अनुभूति की अस्पष्टता है न 'प्रसाद' गुण का अभाव। ब्लैक अपने काव्य में जितना मौलिक कवि था उतना न वर्डसवर्थ था न 'साउदे'। He felt some influences but in his mode of thinking in his imagination and his artististic tastes, all his main dicisions are solely his own‡ अतः स्पष्ट है कि ब्लैक का यह रहस्यवाद इलहामी रहस्यवाद न था (His poetry deals in the subtlest kind of symbolism with a skill that can not be matched अर्थात् उसकी कविता प्रतीक पद्धति पर चली जिसकी कला अनुपम है। ब्लैक की प्रारम्भिक

---

⊛ mysticism is,' in trnth a temper rather than a doctrine an atmosphere rather a system of Philosophy

‡ A history of english literature by (in Franch translated by Emile Legouis पृष्ठ ९९०)

कविताओं के विषय में कहा गया है (It is a domain of purely spontaneous effort creative through its power of spritual realisations अर्थात् ब्लैक के इस काव्य में आत्म-गत तत्व है जिनमें विशुद्ध प्रवाह पाया जाता है। द्वितीय भाग में अस्पष्टता तथा कल्पना की गूढ़ता अवश्य बढ़ती गई है अतः यह कहना कि ब्लैक तो साम्प्रदायिक रहस्यवादी कवि है और वर्डसवर्थ, शैले स्वाभाविक कवि हैं, बहुत दूर तक समीचीन नहीं है। वर्डसवर्थ, शैले में अन्यतत्व प्रधान हो गये हैं, इन कवियों ने प्रकृति, प्रेम तथा राजनीति सम्बन्धी कविताओं के साथ 'सर्ववाद' का आधार लेकर रहस्यवादी काव्य भी लिखा, इनमें मुख्य स्वर रहस्यवाद का न रहने से ही वे शुद्ध रहस्यवादी न हो जाएँगे और न 'ब्लैक' साम्प्रदायिक।

ब्लैक का समय था १७५७-१८२७ ई०। १७७० ई० से १७९५ तक के युग को Pre Romantic पूर्व रोमांटिक युग कहा जाता है। क्लासीकल युग की प्रतिक्रिया में यह युग 'कल्पना' व भावुकता का युग माना जाता है अतः वर्डसवर्थ, शैले, ब्लैक आदि सबमें कल्पना व भावना का वैभव मिलता है। 'ब्लैक' में इसी कल्पना का अत्यन्त मौलिक रूप से प्रयोग हुआ है किन्तु वर्डसवर्थ के समान वह कोई स्कूल न बना सका, यह भी उसके साम्प्रदायिक न होने का प्रमाण है।

ब्लैक वैयक्तिक अन्तर्चेतना का महान कवि था।

ब्लैक के पश्चात् वर्डसवर्थ तथा उसके पश्चात् बायरन् में हम रहस्यवाद की झलक पाते हैं। किन्तु बायरन का 'सर्ववाद' अपने सामयिक कवियों से थोड़ा भिन्न था। (In Byron we have a pantheism, very different from that of his contemprorasies; the universe for him is a mysterious power, and an accomplice, looking benignly upon rebellious spirits because it ignores human orthodoxies; a help

to souls in torment because it appeares them and fortifies in them the bittrly strong feeling they have of themselves. *

शैली में भी रहस्यवाद का एक निश्चित रूप मिलता है।

(१) Epipsychidian, that effusion of platoonic and passionate love, the fights and ardour of which are disected by a definite mysticism.

यंत्र युग के विरोध में जो विद्रोह उठा उसका आदर्शात्मक रूप हमें ब्रैडले की विचारधारा में मिलता है उसमें दार्शनिक दृष्टि से ही कला व सौन्दर्य शास्त्र की व्याख्या की गई जिसकी प्रेरणा व्यक्ति के अन्तर से मिलती है। यंत्र युग के इस विरोध की झलक हमें स्पष्ट रूप से मैरीडेथ Meredith की दार्शनिक कविताओं में मिलती है। हार्डी के निराशावादी दर्शन में भी वही प्रतिक्रिया है यह विद्रोह १८७५ ई० के बाद के साहित्यकारों में बराबर मिलता है जिसका प्रतिनिधित्व रहस्यवादी कवि 'यीट्स' ने किया। 'यीट्स' के महत्व को इसी दृष्टि से समझना होगा दूसरे आयर्लैंड में रहस्यवादी—(आदर्शवादी) विचारधारा की एक उज्ज्वल परम्परा रही है अतः यीट्स को हम "खुमारी" या बेहोशी के स्कूल में डालकर उसके महत्व से नहीं बच सकते तभी रवीन्द्र जैसे कवि के लिए वह प्रेरक बना था। उसके युग को "सौन्दर्य शास्त्र व प्रतीकवादी" Aesthetic, and decadents का युग कहा जाता है जिसका प्रसिद्ध आलोचक 'पेटर' था अतः 'यीट्स' ने imaginative mysticism काल्पनिक रहस्यवाद की परम्परा में कार्य किया। 'यीट्स' पर भारत के औपनिषद सर्ववाद का अत्यधिक प्रभाव था अतः 'यीट्स' के रहस्यवाद में भारतीय तत्व थे इसीलिये 'रवीन्द्र' को इतना मान मिल पाया था और उसी विशुद्ध भारतीय सर्ववाद की भित्ति

*—वही

१—वही

पर 'प्रसाद',-निराला व महादेवी का रहस्यवाद खड़ा हुआ। इन कवियों ने तो 'रवीन्द्र' का भी अनुकरण नहीं किया, 'पंत' की 'मछुआ' आदि कविताओं पर उनका प्रभाव अवश्य मिलता है परन्तु उक्त कवित्रयी ने प्रेरणा मात्र ही ग्रहण की अपना अलग सुलभ मार्ग बनाया। 'रवीन्द्र' व 'यीट्स' ने मार्ग दिखा दिया था।

'यीट् स' पर भारतीय प्रभाव का प्रमाण देखिये।

The deepest roots of his mysticism are in the old tradition of Irland, its insperation, not doubt, derives strong nourishment from the racy sap of the soil. But it draws as well on foreign and distant influences. India and her pantheism came in for a growing share in it and French symbalsm has been more and more responsible for the general mannor of its expression. *

अर्थात् यद्यपि यीट् स के रहस्यवाद का मूल आयरलैंड की प्राचीन परम्परा में ही था परन्तु इस पर विदेशी प्रभाव भी था। भारत के 'सर्ववाद' का इसमें एक बड़ा भाग था तथा फ्रांस का प्रतीकवाद, उसकी अभिव्यक्ति के लिए उत्तरदायी था।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि रहस्यवादी कवि चाहे योरोप के हों या भारत के, सहसा सम्प्रदाय-वादी नहीं कहे जा सकते। घोर साम्प्रदायिक कवियों में भी तथा कथित स्वाभाविक रहस्यानुभूति के दर्शन मिलेंगे विशेष रूप से 'सर्ववादी उक्तियाँ" जिनमें प्रकृति की व्यक्त सत्ता के सहारे 'अव्यक्त' की ओर संकेत रहते हैं। साथ ही इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि रवीन्द्र के भारत का भी यीट्स पर प्रभाव था अतः यदि 'प्रतीक शैली' को रहस्यवादियों ने अपनाया तो यहाँ स्वाभाविक ही था। फिर उस प्रतीक

* A History of English literature by Emill Legouis.

पद्धति में हमारे कवि सफल ही हुये, भाषा की अभिव्यंजना शक्ति की वृद्धि के साथ साथ ये कवि अलौकिक अनुभूतियों को भी इतना मार्मिक बना सके। काल्पनिक रहस्यवाद का वह रूप जो यीट्स में मिला, महादेवी में आत्म निवेदन के रूप में व्यक्त हुआ। 'पंत' में वह अत्यन्त स्थूल रहा, निराला में दार्शनिक परिधान धारण किये रहा और 'प्रसाद' में 'आनन्दवाद' बन गया। भारत की मिट्टी में ही यहीं के तत्वों से विकसित होने के कारण हम इसे विदेशी नहीं कह सकते। रही 'अव्यक्त' के प्रति प्रेममूलक मिलन विरह की उक्तियों के सम्बन्ध का आक्षेप, उसका उत्तर 'प्रसाद' व 'महादेवी' ने भी दे दिया है कि किस प्रकार आत्मा को 'नारी' रूप में तथा ब्रह्म को पुरुष के रूप में वेदों में भी चित्रित किया गया है। रही काव्य में प्रयोग की बात, सो उसके भी उदाहरण मिलते ही हैं हाँ उसका विकास अवश्य आधुनिक युग में पाते हैं।

किन्तु शुक्लजी ने इस ओर ध्यान न देकर जायसी व विशेष कर कबीर को साम्प्रदायिक रहस्यवादी कवि माना है। 'जायसी' के उद्धार की धुन में शुक्लजी ने उनके रहस्यवाद की यत्किंचित प्रशंसा कर दी है वह भी आध्यात्मिक सत्ता की ओर किये जाने वाले स्वाभाविक संकेतों की। 'कबीर' के रहस्यवाद में केवल उन्हें 'अटपटी बानी' ही मिली, जिस प्रकार ब्लैक व यीट्स, इलियट आदि में शुक्लजी को मूर्च्छा, बेहोशी, अलौकिक अनुभूतियाँ, पाषण्ड, कृत्रिमता आदि तत्व ही मिले। साथ ही यह भी देखना होगा कि शुक्लजी ने यह विश्लेषण नहीं किया कि महादेवी, पंत निराला में पाया जाने वाला रहस्यवाद ब्लैक, यीट्स के रहस्यवाद से कितना साम्य रखता है। 'प्रसाद' के शराब, प्याला आदि पर अवश्य आक्षेप किया है परन्तु वह योरोप के साम्प्रदायिक रहस्यवादियों के कितने निकट है, यह नहीं बताया गया।

वस्तुतः 'रवीन्द्र' के काव्य से खड़ी बोली के रहस्यवादियों ने प्रेरणा ही ग्रहण की। रहस्यवादी पद्धति का पथ-प्रदर्शन रवीन्द्र ने

भारत में सर्व प्रथम किया 'पंत' ने उन्हीं के स्वर में कई स्थानों पर स्वर भी मिलाया परन्तु महादेवी, निराला, प्रसाद ने भी अपने रहस्यवादी काव्य पथ को स्वयं प्रशस्त किया, न उनमें खुमार है न वेहोशी। अस्पष्टता व धूमिलता अवश्य मिलती है पर ऐसी कविताओं की संख्या कम है। कामायिनी का रहस्यवाद भी 'गूँगे का गुड़' नहीं बना, न 'दीपशिखा' की 'शिखा' से केवल अस्पष्टता का काजल निकला। अतः स्पष्ट है कि शुक्लजी के अनुसार हम यह नहीं कह सकते कि तथा कथित साम्प्रदायिक रहस्यवाद का अनुसरण निराला, प्रसाद, महादेवी ने किया। इन सब कवियों की कविता के आलम्बन 'तुलसी के राम' न थे यह ठीक है, वह सूक्ष्म रहा, अव्यक्त रहा परन्तु न तो वह छायाभासों से पीड़ित है न कल्पना के आवर्त में पतित। शैली में अन्विति का अभाव दिखा देना सहज है, और वह है भी किसी सीमा तक, किन्तु न तो ब्लैक व यीट्स ही साम्प्रदायिक होकर लिखता था, न खड़ी बोली का रहस्य वादी ही। भौतिकवाद की दृष्टि से सारा रहस्यवादी काव्य दम्भ ही कहलायेगा। भक्त, योगी व ज्ञानी को बरावर फटकारता रहा, 'तुलसी' ने अलख, अलख पुकारने वाले को 'नीच' कहा था अतः उन्हीं के भक्त आचार्य शुक्ल यदि साम्प्रदायिक कह कर रहस्यवादी काव्य को टालना चाहें तो इसमें आश्चर्य न होना चाहिये।

## भक्त और रहस्यवादी

रहस्यवादी का आधार है 'अव्यक्त', अज्ञात। भक्त का आधार है 'ज्ञात' और 'व्यक्त' अर्थात अव्यक्त को अव्यक्त ही रखकर भक्त आराधना नहीं कर सकता। अव्यक्त ब्रह्म को अवतार लेना पड़ता है, और तब भक्त उस मानवीय अभिनय करने वाले पर तत्वतः ब्रह्म से अपना सम्बन्ध जोड़ कर उससे भक्ति की याचना करता है, उसके गुण कीर्तन, पदसेवा, पूजा, अर्चन और जप आदि में मग्न रहता है। तुलसी व सूर आदि ऐसे ही भक्त थे। एक व्यापक दृष्टि

केशव कहि न जाय का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिये ॥
तुलसी

जिज्ञासात्मक रहस्यवाद प्रायः भक्त कवियों तथा सामान्य कवियों में भी मिलता है क्योंकि जगत रचना को देखकर रचियता के सम्बन्ध में पूछ बैठना स्वाभाविक ही है। 'प्रसाद' ने भी पूछा था—

विश्वदेव सविता या पूषा, सोम मरुत चंचल पवमान।
ग्रह, नक्षत्र आदि सब करते, रहते हैं किसका संधान ?
शीश नवाकर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ ?
कामायिनी

परन्तु इस स्थिति के आगे 'रहस्यवादी' ही बढ़ता है। यहाँ तक तो सामान्य जिज्ञासामात्र है, कवि या साधक को अभी उस सत्ता की खोज की चाह है जब उसके आभास के प्रति उसे विश्वास होता है तब कवि पुकार उठता है—

हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम कुछ हो, ऐसा होता भान।
मंद गंभीर धीर स्वर संयुत, यही कर रहा सागर गान ॥

अब कवि प्रकृति में उसका प्रतिबिम्ब देखने लगता है।

हर शाख से अयाँ है, हर सू जलाल तेरा,

शंकाएँ, जिज्ञासाएँ शांत होने लगती हैं आत्मा एक दिव्य वातावरण में अपने को पाकर शांति का अनुभव करने लगती है। जिधर दृष्टि पड़ती है उसी प्रियतम का रूप दर्शन होने लगता है। इसी में आत्मा, परमात्मा के विरह में तड़पती है सारी सृष्टि उसी के विरह में रोती दिखाई पड़ती है सब उसी को पाना चाहते हैं।

खूब परदा है कि चिलमन से लगे बैठे हो।
साफ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं ॥

वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास—
काव्य में रस कुसुमों में वास।

अचल तारक पलकों में हास—
लोल लहरों में लास—'पन्त'
× × × ×
किसी की व्यथासिक्त चितवन।
जगाती कण कण में स्पन्दन—'महादेवी'
× × × ×
अविरत इच्छा ही में नर्तन—
करते अबाध रवि शशि उड्डुगन।
दुस्तर आकांक्षा का बंधन—पन्त

'तृतीय अवस्था' में आत्मा उस परम तत्व के प्रति पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेती है अब उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं रहता पूर्ण ऊब डूब की भावना रहती है। इस आत्यंतिक स्थिति का वर्णन करना कठिन हो जाता है। 'अज्ञात' स्पर्श की सिहरन का 'आत्मा' इस असमर्थ वाणी से, उस अनुभव को कैसे बताये ? इस अंतिम अवस्था की ओर केवल संकेत हो सकते हैं। कबीर कहते हैं—

पानी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया विलाय।
मैं जो था सोई भया, अब कछु कहा न जाय॥

'अब कछु कहा न जाय" से उसी अवस्था की ओर संकेत है। इस अवस्था में विरह का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी एकात्म्य की ओर संकेत करते हुए महादेवी कहती हैं—

बीन हूँ मैं, मैं तुम्हारी रागिनी हूँ मैं।

और 'प्रसाद' जी कहते हैं—

वल्लरियाँ नृत्य निरत थीं—बिखरीं सुगंध की लहरें।
फिर वेणु रंध्र से उठ कर—मूर्च्छना कहाँ अब ठहरे ?
क्षण भर में सब परिवर्तित, अणु अणु थे विश्वकमल के।
पिंगल पराग से मचले—आनंद सुधारस छलके॥
समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था॥

इस अवस्था में इद्म, अहम् बन जाता है और द्वैत भाव का पूर्ण लोप हो जाता है। 'तत्वमसि' की यही अवस्था है—"एकै तुही" रह जाता है। 'मैं' मिट जाती है। ब्रह्म व जीव की इस एकाकारिता, रहस्यवाद की अंतिम स्थिति है इस अवस्था में अलौकिक आनन्द की सृष्टि होती है एक रहस्यवादी कहता है—

"मैंने उन फूलों से सुना जो शब्द करते थे और उन ध्वनियों को देखा जो जाजुल्यमान थीं।'

किन्हीं २ विद्वानों ने इन तीन सोपानों को चार भागों में बांटा है। (१) जिज्ञासात्मक (२) विश्वास की पूर्णता (३) विरहानुभूति (४) आत्मा व परमात्मा का ऐक्य।

रहस्यवाद के स्वरूप विकास तथा उसके सोपानों को स्पष्ट करने के वाद, हम रहस्यवाद के आधुनिक रूप को स्पष्ट करेंगे।

सर्व प्रथम हमें छायावाद व रहस्यवाद के अन्तर को समझना होगा क्योंकि आज के रहस्यवादी कवि छयावादी भी हैं और रहस्यवादी भी। यद्यपि हम 'छायावाद' शीर्षक निवन्ध में इसे विस्तार से स्पष्ट कर आये हैं तथापि संक्षेप में अन्तर समझ लेना प्रासंगिक न होगा। छायावादी कवि प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य करता है, रहस्यवादी पर ब्रह्म के साथ। छायावादी प्रकृति के पीछे आध्यात्मिक शक्ति की झलक मात्र का वर्णन करता है। किन्तु रहस्यवादी इसके आगे बढ़ता है और उस सत्ता में पूर्ण विश्वास प्रकट करता हुआ उससे तादात्म्य करता है, आत्मा व परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रहता। प्रकृति तो माध्यम मात्र रह जाती है। किन्तु छायावाद में भाव का एक छोर मानव हृदय में रहता है और दूसरा प्रकृति के अंतस् में। प्रकृति व मानवीय हृदय का संबंध छायावादी काव्य की विशेषता है।

छायावादी कवि प्रकृति में अपनी चेतना का आरोप करता है। मेघ, जल, वायु, तृण, लता उसके सहचर हो जाते हैं, उनमें वह अपने प्राणों एक चेतना-धारा का प्रतिविम्व देखता है। अतः छायावाद में

कवि प्रकृति में एक अपने हृदय की धड़कन सुनता है, जड़ प्रकृति व चेतन मानव-हृदय के इस भावात्मक सम्बन्ध को छायावाद में अभिव्यक्ति मिलती है। कवि 'निशा' में सुन्दरी के दर्शन करता है, सन्ध्या में अप्सरा का । चन्द्रमा रजत तारों पर पग रखकर उससे मिलने आता है। बालविहंगिनी से वह गाना सीखता है। प्रकृति प्रिया के साथ मिलकर वह अपने प्राण जुड़ाता है, 'छाया उसके लिए दमयन्ती' बन जाती है, और बादल 'उछलते हुए शशक'। जड़ता का लोप हो जाता है। कवि अपनी संवेदना से प्रकृति को प्राणवत्ता से रंग देता है अतः "अश्रु, मेघ के जलकण, ओस बिन्दुओं में तब कोई अन्तर नहीं रहता" रहस्यवाद के लिए इतना पर्याप्त नहीं, उसे प्रकृति के साथ नहीं 'पुरुष' के साथ तादात्म्य करना है। उसे उस 'अमर सत्ता' के केवल भान या आभास' से ही संतोष नहीं होता, उसे उसके विरह में रोता है, और अन्त में उसी में मिलकर शाश्वत आनन्द को प्राप्त करता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद वस्तुतः रहस्यवाद का सोपान हो सकता है छायावाद सौन्दर्यानुभूति को लेकर चलता है, प्रकृति में शाश्वत चेतना की अनुभूति मात्र को लेकर चलता है, रहस्यवाद सौन्दर्य व चेतना की अनुभूति या आभास से ही संतुष्ट न होकर उसमें अपने को मिला देना चाहता है, अपने अस्तित्व को मिटा देना चाहता है, इसके लिए उसका निवेदन विरह के रूप में चलता है और 'प्रिय की प्राप्ति' पर वह पुकार उठता है।

मिल गये प्रियतम हमारे मिलगये।

—प्रसाद

पाठक देखेंगे कि रहस्यवाद की प्रथम श्रेणी अर्थात् जिज्ञासा मूलक रहस्यवाद व छायावाद में कोई अन्तर नहीं रह जाता, इससे घबड़ाकर कुछ आलोचकों ने उसे केवल प्रकृति काव्य तथा

प्रेम काव्य मानकर स्पष्टता लाने का प्रयत्न किया ↗ किन्तु किंचित ध्यान से देखने पर छायावाद व रहस्यवाद का अन्तर स्पष्ट है।

## रहस्यवादी कवि

रहस्यवादी कवियों की कई श्रेणियां हैं परन्तु एक ही रहस्यवादी में विभिन्न प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। उनको—निम्न विभागों में बाँट सकते हैं—

(१) ज्ञान और दार्शनिकता प्रधान रहस्यवादी—

कबीर, दादू, निराला आदि।

(२) साधनात्मक रहस्यवाद—तांत्रिकों, सिद्धों, शाक्तों तथा कबीर व गोरख को इसमें रख सकते हैं।

(१) प्रणय मूलक रहस्यवादी—मीरा, कबीर, प्रसाद, महादेवी निराला।

(२) वे कवि जो मुख्यतः रहस्यवादी नहीं है तथापि उनमें एक विशेष प्रकार का रहस्यवाद मिलता है यथा—

क- भक्ति प्रधान—तुलसी, गुप्तजी आदि।

ख- प्रकृति मूलक—सुमित्रानन्दन पंत

इनमें निराला में प्रणय मूलक रहस्यवाद के साथ चिंतन-प्रधान रहस्यवाद अधिक मिलता है। गीतिका के गीत इसके प्रमाण हैं। जिनमें दोनों प्रकार की कवितायें हैं— चिंतन प्रधान—"जग का एक देखा तार" —'गीतिका'

सोचती अपलक आप खड़ी'

खुली हुई वह विरह वृन्त की, कोमल कुन्द कली।—'गीतिका'

प्रणय प्रधानः—मौन रही हार

प्रिय पथ पर चलती सब कहते श्रृङ्गार
शब्द सुना हो तो अब लौट कहाँ जाऊँ ?

---

* केशरी नारायण सिंह शुक्ल

उन चरणों को छोड़, और शरण कहाँ पाऊँ ?
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार
——गीतिक

स्पर्श से लाज लगी
अलक पलक में छिपी छलक, उर से नव राग जगी
—गीतिक।

'महादेवी' आधुनिक युग की मीरा कहलाती हैं। इनकी कवि-ाओं में द्वैत की स्थिति प्रायः रहती है किन्तु निराला में विशुद्ध द्वैत स्थिति का वर्णन रहता है। महादेवी का रहस्यवाद आत्म-नवेदन के रूप में समझना चाहिये, आत्मा परमात्मा की ऊब, डूब एकाकारिता के रूप में नहीं। अपने व्यक्तित्व को वे अपने चिर ुन्दर से अलग रखना चाहती हैं। पीड़ा को तीव्र करने के लिये। ाह पीड़ा चूंकि प्रिय की दी हुई है अतः यह प्रिय से भी अधिक प्रय है। व्यक्तित्व के समाहित न होने के कारण ही पं० नन्ददुलारे ाजपेयी ने महादेवी में शुद्ध रहस्यवाद नहीं माना। इस दृष्टि से पंत में रहस्यवाद मिलेगा न गुप्तजी की 'झंकार' में। क्योंकि ूर्णतः शास्त्रीय अर्थ में रहस्यवाद वहीं होगा जहाँ आत्मा न पर-ात्मा के तादात्म्य की अवस्था रहती है। महादेवी स्वयं उस पूर्ण प्रिय) के प्रति आत्म-निवेदन को ही अपने काव्य की मुख्य विशेषता ानती है। अतः इस आत्म-निवेदन का स्वरूप 'रहस्यवादी' ही होगा। और यदि यह कोई अन्य 'वाद' है तो उसका अभी तक ामकरण संस्कार नहीं हुआ है, कुछ पद देखिए——

वेरहमूलक—

अलि कैसे उनको पाउँ ?
वे आँसू बनकर मेरे, इस कारण ढुल ढुल जाते।
इन पलकों के बन्धन में—मैं बाँध बाँध पछताऊँ।

तादात्म्य—

तुम मुझमें, प्रिय फिर परिचय क्या ?
रोम रोम में नन्दन पुलकित।
साँस साँस में जीवन शत-शत।
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित।
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय-स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या

व्यक्तित्व अवशेषता—

शून्य मेरा जन्म था - अवसान है मुझको सवेरा।
प्राण आकुल के लिये, संगी मिला केवल अंधेरा
मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ।
शलभ मैं शापमय वर हूँ, किसी का दीप निष्ठुर हूँ।

सौन्दर्य मूलक रहस्यवाद—

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर
चपला विभ्रम, स्मित इन्द्र धनुष।
हिमकण बन झरते स्वेद निकर॥
रवि शशि तेरे अवतंस लोल
सीमंत जटित तारक अमोल॥
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर

भक्तिमूलक रहस्यवादः—अवतारवादी कवियों ने भी युग के प्रभाव से प्रभावित होकर रहस्यवादी शैली में लिखा है इन कवियों में मुख्य हैं 'मैथलीशरण गुप्त। अवतारवादी एक स्थूल धरातल चुनता है, उसका आलम्बन मूर्त और साकार होता है और उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट और भक्ति-परक, उसमें प्रणयमूलकता के स्थान पर श्रद्धात्मक उक्तियाँ रहती हैं, वह अपने हृदय के 'राग' को नहीं, भक्ति और श्रद्धा को अभिव्यक्त करता है। किन्तु जिज्ञासात्मकता जो रहस्यवाद की प्रथम सीढ़ी है, इन कवियों में भी स्पष्ट रहती है, हाँ, असीम के प्रति तादात्म्य, भक्त कर ही नहीं सकता क्योंकि भक्ति में 'द्वैत'

की स्थिति अपरिहार्य रहती है। अपने अज्ञान की अभिव्यंजना, उसके दूरीकरण के लिए विनम्र प्रार्थना, जगत के दुःख द्वन्द्वों का आकुल चित्रण, भगवान की कृपा करुणा, भक्तवत्सलता आदि का वर्णन रहता है।

यशोधरा में यही जिज्ञासा इस प्रकार व्यक्त की गई है—

घूम रहा है कैसा चक्र ?
जो तेरा अनुशासन पाया मैंने शीश नवाया।
क्या क्या कहा स्वयं भी उसका, आशय समझ न पाया॥
मैं इतना ही कह सकता हूँ, जो कुछ जी में आया।
और समझ जाऊँ फिर मैं भी यह मैंने है गाया॥
रमा है सब में राम।
वही सलोना श्याम॥
नट नागर आज कहाँ अटके ?
फिर याद पड़े टटके टटके
ब्रज गोप वधू दधि के मटके
उनका कहना, हटके हटके
नट नागर आज कहाँ अटके ?
× × × ×
तू है हम अन्धों का हाथी।
हाय हमारे नयन मुँदे हैं, मन है महा प्रमाथी॥
× × × ×
चोर चोर
घर के पीछे हो उठा शोर
मैं जाग पड़ी, हो गई खड़ी,
फिर चौंकी ज्यों चौंके चकोर
चोर चोर[१]

गुप्तजी के भक्तिमूलक रहस्यवाद की विशेषता है अभिव्यक्ति की स्पष्टता और 'ध्वनि' (Suggetiueness) का अभाव।

---

१ झंकार से गुप्तजी

# रहस्यवाद का भविष्य

आदर्शवादी विचारधारा के परिणाम स्वरूप उक्त दोनों काव्य-धाराएँ साहित्य को सिक्त करती रहीं किन्तु उनका ऐतिहासिक मूल्य समाप्त हुआ। 'महादेवी' को छोड़कर अन्य रहस्यवादी कवि 'प्रकृतिवाद' की ओर झुक गये। इधर 'पंत' जी ने 'नूतन रहस्यवाद' कहलाई जाने वाली कविताएँ लिखी हैं किन्तु तथ्य यह है कि आदर्शवादी विचार-धारा होते हुए भी 'पंत' जी पूर्णरूप से न अध्यात्मवादी हैं न भौतिकवादी हैं 'टैकनीक' की दृष्टि से 'पंत' जी पर पुनः छायावादी प्रभाव आया है किन्तु निराला पूर्ण रूप से प्रगतिवादी साहित्य दे रहे हैं। महादेवी का साधना पथ काव्य में रहस्य की धूमिल पगडण्डी पकड़ता है और 'गद्य' में सामाजिकता की। किन्तु हमें 'रहस्यवाद' का मौलिक रूप लेकर उसकी चिरन्तनता तथा देन की मूल्यांकन करना है।

जब युग ने रहस्यवादी से उसका व्यक्तित्व माँगा तब वह उसे न दे सका, उसने अपने 'अहम्' को ब्रह्म के लिये समर्पित कर दिया, वह युग को न देखकर युगाधार को जगत के भिन्न २ पदार्थों में देखने लगा उसने 'इदम्' को सुधारने, उसमें अपने को मिलाने का प्रयत्न नहीं किया अपितु 'इदम्' को माध्यम बनाया केवल अपनी अभिव्यक्तिमा उसके द्वारा उसने उस असीम से अपनी बात कही क्योंकि ससीम न उसकी बात सुनता था न उसकी यह प्रवृत्ति थी कि वह 'तूती' न बन कर संगठित होकर इतना चिल्लाता कि युग को उसका स्वर सुनने के लिये विवश होना पड़ता, रहस्यवादी इसीलिये युग की ओर न बढ़कर युगों युगों तक बढ़ने की महत्वाकांक्षा लेकर बढ़ा जिस व्यक्ति की बात कोई नहीं सुनता वह अपनी बात को शाश्वत बताता है, व्यक्ति तप्त धरातल पर दृढ़ स्कन्ध कर खड़ा नहीं हो पाता, वह विराम के लिये उपवन खोजता है, न मिलने पर कल्पना के बल पर वह चिर-विराम-शाला ढूँढ़ लेता है। जीवन

के मनोविज्ञान में इन उपवनों का मूल्य है वे श्रांत क्लाँत क्षणों में हमारा मनोरंजन कर सकते हैं किन्तु हैं वे Rest houses विश्रामालय ही, स्थायी भवन नहीं।

दूसरी ओर इस साहित्य ने हमें मानव-मूल्यों की दृष्टि से कई तत्व प्रदान किये। प्रथम, रूढ़ियों के ऊपर उठकर रहस्यदर्शी कवियों ने विश्व बंधुत्व तथा अन्तर्राष्ट्रीय एकता का सांस्कृतिक पक्ष पुष्ट किया, आलोचक को इधर देखना होगा नारों से विश्व बंधुत्व जग जायगा पर स्थायित्व तब आयगा जब हृदय की सच्ची प्रेरणा मिलेगी। तो रहस्यवादी ने जो जड़ चेतन में एक ज्योति के दर्शन करता है, हमें विश्व-करुणा देता है। 'प्रसाद' ने जिस 'आनन्दशिखिर' की ओर संकेत किया, महादेवी ने जिस 'चिरसुन्दर' की मोहकता को सामने रक्खा, 'पंत' ने जिस 'सांस्कृतिक-स्वप्न' के काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी वह 'स्वप्न' मानवता की पूर्णता के रूप में हमें ग्रहण करना चाहिये। प्रायः कहा जाता है कि प्रतिक्रियावादी कवि वह है जिसकी कविता जीवन को आगे नहीं बढ़ाती, जो मानवीय गुणों की अवहेलना करती है, हमें पीछे की ओर ले जाती है, किन्तु साथ ही कहना यह होगा कि हम इन से ग्रहण क्या करते हैं? 'टालस्टाय' को कुत्सित समाज-शास्त्रियों ने 'बुर्जुवा' कहा था पर 'लेनिन' ने उसे क्या ठहराया? हम ग्रहण करने की इसी सद्-प्रवृत्ति के बल पर 'तुलसी' व 'सूर' को प्रगतिशील ठहराते हैं तो यही सहृदयता हमें 'पंत' के नूतन रहस्यवाद, महादेवी की 'करुणा' तथा वेदना-प्रियता, 'बच्चन' व भगवतीचरण वर्मा के नियतिवाद (नकारवाद) के सम्बन्ध में भी दिखानी होगी। यह निश्चित है कि इन रहस्यवादी कवियों के सम्मुख क्रान्ति का रूप स्पष्ट न था, अपने संस्कारों का भी इन पर कम प्रभाव न था, उस 'स्व' के प्रति-वेप में हमें जो साहित्य मिला, जिन धारणाओं को अपनी कलात्मक साधना के बल पर उन्होंने इतना 'प्रेय' बनाया उस प्रेय में 'श्रेय' क्या है, और 'अश्रेय' क्या है यह बताना होगा और उसकी

सीमाओं को निर्धारित करना होगा, स्वर्ण-किरण व स्वर्णधूलि दीप-शिखा, साहित्य की कलंकित वस्तुएँ नहीं हैं उन्हें संकीर्णता के कोड़ में न रखकर 'मानवता' की व्यापक दृष्टि से देखना होगा। प्रश्न यह है कि जब हम वर्णाश्रमवादी, भक्त, प्रगतिशील संतों व गोरख जैसे योगियों के विरुद्ध बोलने वाले, पुरानी ब्राह्मण-परम्परा के पुनर्व्यवस्थापक 'तुलसी' को प्रगति-पन्थी मानते हैं तो मध्यकालीन रूढ़ियों के विरुद्ध, शांकरमत द्वारा प्रस्तावित निष्क्रियता, गांधीवादी मध्ययुगीन विचारधारा के विरुद्ध ललकारने वाले 'पंत' को जब हम प्रतिक्रियावादी कहते हैं तो अर्थ स्पष्ट करना होगा। अच्छा होता कि पंत 'स्वर्णकाव्य' न लिखकर 'मिट्टी काव्य' लिखते, सांस्कृतिक स्वप्नों की उलझन छोड़कर जनता की लड़ाई में सहयोग देते, भले ही कलात्मक सौन्दर्य कुछ कम रहता किन्तु जो संस्कृति हम बनाने जा रहे हैं उसमें जिस सौहार्द, प्रेम, सहानुभूति तथा एक शब्द में 'सांस्कृतिक' उत्थान हम चाहते हैं उसके लिये 'महादेवी' की 'करुणा' तथा पंत का 'सांस्कृतिक स्वप्न' सहायक न होगा। कहा जायगा कि आज इससे 'जनता' का ध्यान बँटता है, उसे तो वर्ग संघर्ष को जागृत करने वाला ही काव्य चाहिये किन्तु यह तो कलाकार के साथ बलात्कार ही होगा। समझौता व सुधार की ओर ले जाना काव्य हमारे लिये घातक है, किन्तु इस तुला पर सीधे रूप से हम साहित्य को नहीं कस सकते हमें मानवीय गुणों Numanism को ही देखना होगा यदि Humanitarian point of view मानवतावादी दृष्टि से वह साहित्य हमें कुछ देता है तो उसे स्वीकार करना होगा। केवल कतिपय शृंगारिक-भावना-उद्दीपक पदों के कारण हम उसको उपेक्षित नहीं रखना चाहते। सुवर्ण को भी रेत से चुनना पड़ता है।

दूसरी दृष्टि है 'कलात्मकता' की। हमने पहले भी कहा है कि छायावाद के कलाकार इतिहास में कम से कम 'कला' के चरम विकास के लिए अवश्य आदर्श माने जायेंगे। उपयोगितावादी दृष्टि-

कोण को एक ओर रखकर सौन्दर्य की दिव्यता से किस प्रकार इन कवियों ने प्रत्येक वस्तु में संवेदन भर दिया कि वह बोल उठे। शब्दों में चित्र और चित्रों को शब्द इसी युग में मिले। वस्तु (Content) एक ही होने पर कबीर, दादू के साधनात्मक रहस्यवाद तथा तांत्रिकों, सिद्धों आदि के रहस्यमय काव्य तथा आधुनिक युग के रहस्य-गीतों में कितना अन्तर है, यह देखा जा सकता है। मंजरित साहित्य आम्र की इन कोकिलाओं को आगे की पीढ़ी घृणा की दृष्टि से न देखेगी जैसा कि हमारे कुछ आलोचक बंधु संकीर्णता वश देख रहे हैं हम आगे दिखायेंगे कि इसके कारण क्या हैं विशुद्ध मार्क्सवाद की दृष्टि से भी इन कवियों का साहित्य में उच्चकोटि का स्थान होगा क्योंकि जिस सामाजिक दवाव के कारण इन कवियों ने प्रत्यक्ष से नाता तोड़कर अप्रत्यक्ष से नाता जोड़ा वह हमारे लिए 'करुण' तथा उनके लिए आनन्दमय परिस्थिति थी, जिस दुःख से हम छुटकारा चाहते हैं उसीसे हमारी कवियित्री इतना प्रेम करती है; इसका कारण क्या है क्यों 'बच्चन' 'प्यार और हाय हाय' के गीत गाते हैं, कारण यह है कि जिस परिस्थिति में यह साहित्य लिखा गया वह परिस्थिति उसके अनुकूल थी, राजनैतिक आन्दोलनों में, बारबार हार कर भी, सभी कवि सोहनलाल द्विवेदी की तरह प्रत्यक्षतः 'गांधी जी की जय' नहीं बोल सकते थे। प्रत्यक्ष से विमुख होकर कवि क्या करे? एकांत आराधन और क्या? जो आग आज जल रही है उसकी 'तप्तता' का ही अनुभव इन कवियों को हुआ था किन्तु उनमें कूद पड़ने का भाव बहुत बाद में आया। अतः हृदय की 'आग' के ही गीत गाये जाने लगे इसके साथ ही एक और दृष्टि है, और वह है दार्शनिक प्रभाव। 'महादेवी' ने बुद्ध की करुणा के माध्यम से अपना नीड़ बनाया और वे उसी में रम रहीं, उन्होंने जहाँगीर की तरह बाहर 'घंटी' लगवाने की आवश्यकता नहीं पड़ी जिसे बजाने पर ही वे बाहर निकलतीं। समाज व जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित होने पर 'हृदय से दाह'

को वह क्यों न भूल सकीं उसका कारण है भारत की नारी की विषम तथा दयनीय दशा जो महादेवी के शब्द शब्द में क्रन्दन कर रही है। हमने गुप्त जी की यशोधरा व उर्मिला को पढ़ा किन्तु इस 'सजीव मीरा' को हम पढ़ न सके क्या हम यह नहीं देखते कि महादेवी के दुःखवाद में समाज के एक नितांत अपमानित अंग का रोदन बद्ध है ?

अतः यदि वह नीर भरी दुःख की बदली है तो इससे तो हमें वर्ग की स्थिति का ही पता चलता है, महादेवी प्रहार कैसे करें ? क्योंकि उसका निदान वे खोजती हैं, ममता में, त्याग में, मानव के शाश्वत विराग में और दार्शनिक सुलझाव में। किन्तु यह उनकी विवशता है। रोते हुए युग की नारी, यदि उपल में नहीं बरसती तो आँसू तो बरसाती हैं उन्हीं में कोटि कोटि नारियों की आह कराह व दंशन छिपा हुआ है। अतः रहस्यवादी व छायावादी काव्य में 'कला' है, प्राण हैं, उनमें आवेग है, संवेदन हैं उसमें वर्ग विशेष की असंगतियों का मधुर व्यक्तीकरण सहसा होगया है, उसमें अध्यात्मवादी दर्शन—जन्य आत्म विस्तार है। 'रवीन्द्र' में सौन्दर्य व मंगल का अद्भुत सामञ्जस्य हुआ था। छायावादी व रहस्यवादी कवियों में भी वह सामञ्जस्य दुर्लभ नहीं है। उपनिषद की प्रज्ञा का सत्य स्वरूप ही निराला, प्रसाद और महादेवी में 'हृदय का अपार प्रणय' बन गया है जो आँसू बनकर टपक पड़ा है।

पूर्वयुग जलते रहे हैं, उनकी भाप ने बादल बनाये हैं, अब गरजने व बरसने की हमारी बारी है, केवल बिजलियाँ गिराने से ही कार्य न होगा।

# हालावाद

'हाला' का अर्थ 'मदिरा' है ( हालाहल नहीं )। आधुनिक युग में इस 'मदिरावाद' के एकमात्र प्रवर्तक श्री हरिवंश राय वचन हैं और विशेषता यह कि उक्तवाद की आयु रही 'केवल तीन वर्ष' इन तीन वर्षों को 'वच्चन' की रचनाओं की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं।

(१) १९३३-३४-मधुशाला।

(२) १९३४-३५-मधुबाला।

(३) १९३५-३६-मधु कलश।

१९३६ के पश्चात् कवि का 'निशा-निमन्त्रण' प्रकाशित हुआ जिसमें यह 'हालावाद' अन्तर्ध्यान हो चुका था। 'मधुशाला' के पूर्व लिखी गई कविताओं के दो संग्रह और प्रकाशित हुये हैं। प्रारम्भिक रचनायें प्रथम भाग तथा प्रारम्भिक रचनायें दूसरा भाग। इनमें 'हालावाद' तक पहुँचने के सोपान दृष्टि गोचर हो सकते हैं।

हालावादी दर्शनः—सूफियों ने, जैसा कि हम रहस्यवाद का फारस में विकास दिखाते हुये लिख आये हैं कि वे इस्लाम के वाह्य आचारवाद ( कठमुल्लावाद* ) के विरुद्ध क्रांति की थी। सूफियों ने शराव, सुराही, प्याला, साकी, मीना ( बोतल ) को प्रतीक बना कर इनके सहारे अपनी 'मौज' व स्वतन्त्र प्रकृति का परिचय दिया था, वाह्य आचारों तथा नमाज-रोजा आदि को चुनौती थी, जिसका

---

* शेख कहाँ तुलना हो सकती, मस्जिद की मदिरालय से।
चिर विधवा है मस्जिद तेरी, सदा सुहागिन मधुशाला॥

को वह क्यों न भूल सकीं उसका कारण है भारत
विषम तथा दयनीय दशा जो महादेवी के शब्द शब्द में
रही है। हमने गुप्त जी की यशोधरा व उर्मिला को पढ़
'सजीव मीरा' को हम पढ़ न सके क्या हम यह नहीं
महादेवी के दुःखवाद में समाज के एक नितांत अपमा
रोदन बद्ध है ?

अतः यदि वह नीर भरी दुःख की बदली है तो इससे
की स्थिति का ही पता चलता है, महादेवी प्रहार कैसे
उसका निदान वे खोजती हैं, ममता में, त्याग में, मा
विराग में और दार्शनिक सुलझाव में। किन्तु यह
है। रोते हुए युग की नारी, यदि उपल में नहीं बरस
बरसाती हैं उन्हीं में कोटि कोटि नारियों की आह
छिपा हुआ है। अतः रहस्यवादी व छायावादी का
प्राण हैं, उनमें आवेग है, संवेदन हैं उसमें वर्ग
तियों का मधुर व्यक्तीकरण सहसा होगया है, उस
दर्शन—जन्य आत्म विस्तार है। 'रवीन्द्र' में
अद्भुत सामञ्जस्य हुआ था। छायावादी व र
भी वह सामञ्जस्य दुर्लभ नहीं है। उपनिषद
स्वरूप ही निराला, प्रसाद और महादेवी में 'हृद
बन गया है जो आँसू बनकर टपक पड़ा है।

पूर्वयुग जलते रहे हैं, उनकी भाप ने व
गरजने व बरसने की हमारी बारी है, केवल
ही कार्य न होगा।

एक ओर देश पराधीनता के पाश में सिसक रहा था और उधर गोलमेज सभाओं में ब्रिटेन के व्यापारी भारत के अश्रु पोंछ रहे थे। क्षितिज पर असंतोष व जागरूक चेतना-जन्य विद्रोह के बादल छा रहे थे। सन २० से जो आन्दोलन चला वह गरम व नरमदलों में मिलता, बँटता रहा किन्तु परिणाम कुछ न निकला। देश का युवक हृदय इसे व्यर्थ ही नहीं, पलायन भी मानता था। अतः क्रांतिकारी पार्टी का सगठन दिन पर दिन दृढ़ होता जा रहा था जिसके सजग-विस्फोट सन् १६१२ से ही होते आ रहे थे। क्रांति का यह प्रभाव साहित्य को भी अछूता न छोड़ सकता था। *सामाजिक दृष्टि से भी देश की जनता अंध-विश्वासों, सामंत युग के नैतिक बन्धनों से छिन्न भिन्न हो रही थी और आज भी हो रही है, इसी स्थूल आचारिकता के विरुद्ध जिसके निर्माण में आर्य-समाजी आन्दोलनों का हाथ रहा, छायावादी कवियों ने अपनी रोमाँटिक कवितायें लिखी थीं जिनमें प्रेम-भावनाओं का स्वच्छन्द प्रकाशन होता था। 'बच्चन' को नैतिकता अधिक खटकती थी अतः युवक कवि ने सारे नीति बंधन को भस्मीभूत करने के लिये वही सूफियों की परम्परा पकड़ी जिसमें 'दर्शन' पक्ष का तो अभाव सा रहा किन्तु उच्छृङ्खलता का चित्रण ही ध्येय रहा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस 'उच्छृङ्खलता' का मूल उसी असंतोप पर था जो सामान्य रूप से सारे देश में गरज रहा था, क्रांति का रूप अस्पष्ट तथा दुर्बल होने से 'मधुशाला' की यह क्रांति मात्र उच्छृङ्खलता ही बन पाई।

एक और तत्व था जिसका संयोग हम 'हालावाद' में देखते हैं वह है कवि की घोर वैयक्तिकता का। सम्पूर्ण सामाजिक-चेतना के विरुद्ध बच्चन के स्वर में यह हालावादी ललकार मानो एक उच्छृङ्खल युवक का आक्रोश था जो ठीक राह न पाने पर वांछनीय और अवांछनीय सारे बंधनों को तोड़ देने के लिये तत्पर हो

---

* वेद विहित यह रस्म न छोड़ो, वेदों के ठेकेदारो।
किसी तपोवन से क्या कम है मेरी पावन मधुशाला।

तात्पर्य यह था कि खुदा, जड़वत इन आचारों के अंधानुगमन से प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि प्रेम का वह पात्र न बनाया जाय, इस्लाम में खुदा से प्रेम करना 'कुफ्र' है किन्तु सूफियों ने उस नियन्ता के 'जलवे' को संसार के प्रत्येक पदार्थ में देखा. उन्होंने आत्मा व परमात्मा की एकता की घोषणा की किन्तु जगत को मायावादियों के अनुसार मिथ्या न मानकर उसे परब्रह्म का प्रतिबिम्ब माना अतः इस प्रतिबिम्ब--जगत× में उस बिम्ब—(ब्रह्म) की अनुभूति करना स्वाभाविक था। बंदे व खुदा की एकता इस्लाम में सह्य न हुई। सूफियों ने प्राण देकर भी अपने प्रेम के सिद्धान्त को न छोड़ा जिस शराब, प्रेम आदि का इस्लाम में घोर निषेध था, सूफियों ने उसी को आधार मानकर अपनी साधना की भित्ति खड़ी की, लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम का आधार बन गया, 'बुतों' से दिल लगाना 'बुरा न समझा गया क्योंकि "प्रेम की पीर" का विकास इसी से होगा जो उस खुदा की ओर ले जायगा। तात्पर्य यह कि प्रेम-मादकता, शराब, प्याले की यह चर्चा सूफियों के एक आन्दोलन के रूप में चल पड़ी। उसका एक अपना दर्शन बन गया। उमर ख़ैयाम की प्रसिद्ध रुबाइयों में इसी स्वच्छन्द वृत्ति का चित्रण इतना मनोरम और मादक हुआ है कि वह संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में गिना जाता है। ये कवितायें आपाततः मात्र उत्तेजक, वासनामय उद्गारों व चित्रणों से भरी रहती हैं परन्तु उनके अन्तर में वही सूफी-दार्शनिकता रहती है जिसमें आत्मा (आशिक) परमात्मा (माशूक़) के विरह में तड़फता है, विश्व के कण-कण में उसी का 'हुस्न' देखता है, और अनेक विघ्न बाधाओं को पार करता हुआ पानी की बूँद के समान उसी चेतना के समुद्र में लय हो जाना चाहता है।

सन् १९०५ का समय ऐतिहासिक दृष्टि से क्रांति का युग था।

---

× पथिक बना मैं घूम रहा हूँ, सभी जगह मिलती हाला।
सभी जगह मिलता है साकी, सभी जगह मिलती हाला॥

एक ओर देश पराधीनता के पाश में सिसक रहा था और उधर गोलमेज़ सभाओं में ब्रिटेन के व्यापारी भारत के अश्रु पोंछ रहे थे। क्षितिज पर असंतोष व जागरूक चेतना-जन्य विद्रोह के बादल छा रहे थे। सन २० से जो आन्दोलन चला वह गरम व नरमदलों में मिलता, बँटता रहा किन्तु परिणाम कुछ न निकला। देश का युवक हृदय इसे व्यर्थ ही नहीं, पलायन भी मानता था। अतः क्रांतिकारी पार्टी का संगठन दिन पर दिन दृढ़ होता जा रहा था जिसके सजग-विस्फोट सन् १९१२ से ही होते आ रहे थे। क्रांति का यह प्रभाव साहित्य को भी अछूता न छोड़ सकता था। *सामाजिक दृष्टि से भी देश की जनता अंध-विश्वासों, सामंत युग के नैतिक बन्धनों से छिन्न भिन्न हो रही थी और आज भी हो रही है, इसी स्थूल आचारिकता के विरुद्ध जिसके निर्माण में आर्य-समाजी आन्दोलनों का हाथ रहा, छायावादी कवियों ने अपनी रोमाँटिक कवितायें लिखी थीं जिनमें प्रेम-भावनाओं का स्वच्छन्द प्रकाशन होता था। 'बच्चन' को नैतिकता अधिक खटकती थी अतः युवक कवि ने सारे नीति बंधन को भस्मीभूत करने के लिये वही सूफियों की परम्परा पकड़ी जिसमें 'दर्शन' पक्ष का तो अभाव सा रहा किन्तु उच्छृङ्खलता का चित्रण ही ध्येय रहा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस 'उच्छृङ्खलता' का मूल उसी असंतोष पर था जो सामान्य रूप से सारे देश में गरज रहा था, क्रांति का रूप अस्पष्ट तथा दुर्बल होने से 'मधुशाला' की यह क्रांति मात्र उच्छृङ्खलता ही बन पाई।

एक और तत्व था जिसका संयोग हम 'हालावाद' में देखते हैं वह है कवि की घोर वैयक्तिकता का। सम्पूर्ण सामाजिक-चेतना के विरुद्ध बच्चन के स्वर में यह हालावादी ललकार मानो एक उच्छृङ्खल युवक का आक्रोश था जो ठीक राह न पाने पर वांछनीय और अवांछनीय सारे बंधनों को तोड़ देने के लिये तत्पर हो

* वेद विहित यह रस्म न छोड़ो, वेदों के ठेकेदारो।
किसी तपोवन से क्या कम है मेरी पावन मधुशाला।

कवि ने अनुभव कर लिया था—

वासना जब तीव्रतम थी, बन गया था संयमी मैं।
है रही मेरी क्षुधा ही, सर्वदा आहार मेरा॥

और तब कवि पुकार उठा—

कह रहा जग वासना मय, हो रहा उद्गार मेरा।
मैं छिपाना जानता तो, जग मुझे साधू समझता।
शत्रु मेरा बन गया है, छल रहित व्यवहार मेरा॥

और इस 'छल रहित व्यवहार' करने पर भी, कवि पर जब वृद्ध जग हँसा तो वह चीख उठा—

वृद्ध जग को क्यों अखरती, है क्षणिक मेरी जवानी?

'मधुकलश' की यह कविता वस्तुतः 'मधुशाला' में लिखी गयी कविताओं पर किये गये प्रहारों का उत्तर थी। किन्तु कवि के दृष्टि-कोण को स्पष्ट करने के लिये हमने उसे पहले उद्धृत करना उचित समझा। 'हालावाद' कवि के अरमान पूरे न होने से ही मचल कर निकल पड़ा—

विश्व पूरा कर सका है-कौन सा अरमान मेरा?

'हाला' वाला, मधुशाला के गीतों में युग को ललकार कर कवि ने कोई प्रतिध्वनि न सुनी, समाज चलता था, चलता रहा अतः कवि का निराश होना स्वाभाविक था इसीलिये जैसे सुरा-पान के पश्चात् गला सूख जाता है, प्यास बढ़ती है उसी प्रकार 'मधुकलश' को समाप्त कर कवि निशा को निमंत्रण देने लगा था।

'हालावादी' का विद्रोह देखिये—

रक्त से सींची गई है-राह मंदिर मसजिदों की।
किन्तु रखना चाहता मैं, पाँव मधु सिंचित डगर में॥
हैं कुपथ पर पाँव मेरे-आज दुनियाँ की नजर में।

समता, विस्मृति ( पलायन ) की प्रतीक तथा संघर्षों को सुलाने वाली हाला को कवि पुकारता है—

जाता है। इस दृष्टि से 'हालावाद' वह व्यक्तिगत उच्छृङ्खल काव्य को लेकर चला जो सामाजिकता को अभिशाप मान कर केवल व्यक्तिगत प्रेम-वासना का स्वतन्त्र तथा निरपेक्ष राज्य चाहता है। अतः नरेन्द्र के क्षयी रोमांस के समानान्तर इसे 'सन्निपात-रोमांस' कहा जा सकता है जिसमें व्यक्ति अचेतनावस्था में 'प्रलाप' पर तुल जाता है। 'वच्चन' के सारे काव्य में व्यक्तिगत तत्व सबसे अधिक रहा है, उन्होंने वह लिखा है जो उन पर वीता है। और जो अनुभव किया गया है। 'हालावाद' जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है 'झंझावात' के समान आया और निकल गया कवि सम्मेलनों में 'वच्चन, को इस 'हाला' ने जो सर्व-प्रियता दी, वह प्रशंसनीय है परन्तु जैसा हमने देखा न तो इसमें जीवन के प्रति स्वस्थ व संतुलित दृष्टिकोण है न अभिव्यक्ति में गहराई। कविता की शराव पीकर झूमने वाले असामाजिक* वरसाती कवि—सूफियों की वाढ़ न आ पाई यह अच्छा ही रहा।

व्यक्ति के साथ ही एक युग का भी मनोविज्ञान होता है। युग की स्वाभाविक चेतना अवरुद्ध होकर कभी-कभी सामंजस्य के धरातल को तोड़कर वेमेल स्वरों में गा उठती है। सामाजिक विधि-निषेध के नीति विधान के विरुद्ध छायावादी प्रतिक्रिया सन् २० पूर्व से ही चल पड़ी थी परन्तु प्रेम की भाषा इतनी धूमिल हो कि उसमें मानव-मन एक विचित्र घुमड़न में पड़कर रह ग सौन्दर्य की प्रतिमा नारी का अशरीरी सौन्दर्य ही कविता रहा, प्रणयोद्गारों ने दार्शनिक परिधान पहन लिया था का 'हालावाद' इन्हीं प्रणय मूलक भावनाओं का उद्गा जो एक विप्लव के रूप में फूट पड़ा। तीव्रतम वासना स की शिला के नीचे तड़प उठी संयम सहन न हो सका।

---

* ध्यान किये जा मन में सुमधुर-सुखकर सुन्दर :
मुख से तू अविरत कहता जा, मधु मदिरा-माद

मैं कहाँ हूँ और वह आदर्श मधुशाला कहाँ है?
विस्मरण दे जागरण के साथ मधुबाला कहाँ है?
है कहाँ प्याला कि जो दे, चिर तृषा चिर तृप्ति में भी?
जो डुबा तो ले, मगर दे, पार कर हाला कहाँ है॥

कवि की 'सफाई' यह है कि कवि ने यह गीत जीवन-समर में लिखे हैं अतः यह पलायन नहीं हैं, चीत्कार, पलायन नहीं, आवारापन नहीं, उच्छृङ्खलता नहीं, अभावों से भरे जीवन की फूत्कार है।

राग के पीछे छिपा, चीत्कार कह देगा किसी दिन।
हैं लिखे मधु गीत मैंने, हो खड़े जीवन-समर में॥

कवि चला, रुका नहीं 'दूषित मस्तिष्क' से ही सही, दुनियाँ क्या समझे, वह समझने की योग्यता भी नहीं रखती अतः कवि के लिये अब "लौटना कठिन है।" विश्व को देखना हो तो वह बच्चन के 'नेत्र द्वारा सौन्दर्य' देख ले, यहाँ शंख की ध्वनि के साथ, झाँझ की झनकार, काठ की माला के साथ कुसुम का हार, शुष्क ज्ञानी के साथ, रस-सिद्ध कवि, और सत्य के साथ स्वप्न की भी दरकार है तो यह 'हालावाद' स्वप्न है, संघर्ष की छलना है, वासनाओं का सीधा विस्फोट है, अरमानों का उद्दाम ताँडव है, अभाव की कातर चीत्कार है।

"विश्व के कारागृहों की भित्तियों से निडर कवि" मानस हिल्लोलित होकर जैसे शराब के छींटों से सुप्त शव को जगा रहा हो। और इस व्यक्तिगत-व्यर्थ चेष्टा पर जग हँसा, पर कवि तो जान चुका था—

मैं हँसा जितना कि खुद पर—
कौन हँस मुझ पर सकेगा
और जितना रो चुका हूँ—रो नहीं निर्झर सकेगा।

यदि कोई हालावादी से पूछ उठे कि महाशय! आप चाहते क्या हैं तो वह उमर खैयाम के शब्दों में कह उठेगा—एक नदी

माँसलवाद। क्रोध में व्यक्ति क्रोधी ही रहना चाहता है वह पत्थर पर सिर पटकता है और सामने के संघर्ष से दूर रह कर व्यक्ति भाग्यवादी बनकर मधुशाला में आ डटता है।

निष्क्रियता* दो पैरों पर चलती है (१) दार्शनिक ऊहापोह पर (२) उच्छृंखल विलासिता पर। हालावाद में दूसरा तत्व रहा जिसके नीचे रहकर कवि ने दार्शनिक होने का भी दावा किया किंतु वह 'हेत्वाभास' ही रहा। दार्शनिक कहना चाहें तो हम इसे 'उन्माद का दर्शन' या 'दर्शन का उन्माद' कह सकते हैं। बचन में पहला था और उमर खैयाम में दूसरा। किंतु 'कवि' अपने को ही भुलावे में ही रख सका जग को नहीं, जग ने उसके उद्‌गारों को वासना मय ही कहा, वह थे भी। यह अस्वस्थ चिंता-धारा, यह भावुकता-मय-उच्छृखंलता इतिहास के एक ही पृष्ठ में सिमट कर रह गयी। युग-चेतना हालावादियों की गणना करते समय बच्चन के नाम पर अँगुली रख कर मौन रह गई।

और बच्चन को भी 'हालावाद' के पश्चात् क्या मिला, निराशा, नियति, और अतृप्ति। मधुपान के पश्चात् यही मिलता है। कवि ने पीने के पहले ही लिखा था।

छुड़ा मत भुजपाशों से प्राण!
नये मक्खन सा कोमल तन!
दूध से धोया सा है मन!
क्यों कि
ईश्वर को मैं नहीं जानता
उसकी सत्ता नहीं मानता
जिसे न देखा जाना कैसे उसको लेता मान?

ऋषि ने ईश्वर का आविष्कार किया था और 'बच्चन' ने

---

* लाख पटक तू हाथ पाँव पर, इससे कब कुछ होने का
लिखा भाग्य में तेरे जो बस—वही मिलेगी मधुशाला।

हाला का। धन्य है, जिसे देखकर यह कवि सौन्दर्य की हाला का मान कर पाया, वह मधुवाला इस प्रकार आई।

"मनुष्य ने अपने जीवन को अपूर्ण समझा 'पर उसने उस अपूर्णता के सामने सिर न झुकाया, मन में यौवन था, रोम रोम में यौवन था..........उसने मधुवितरण करने वाली मधुवाला के पग-पायलों की रुन, झुन, रुन झुन सुनी........उसने अपने चारों ओर कल्पना का संसार बना डाला..........वह जानता था कि उसके स्वप्न संसार की वास्तविकता के साथ सहयोग न कर सकेंगे इसलिये पाने के अरमान को ही उसने प्राप्ति-सुख समझ रक्खा था, कहता था·"पा जाता तल, हाय न इतनी प्यारी लगती मधुशाला"........

पाने के अरमान को ही 'प्राप्ति समझने वाले हालावादी ने स्वप्नों के संसार को ही सत्य समझा राष्ट्रीय, संघर्ष से आँखें फेरकर कवि 'उषा के गाल चूमने लगा और उस पर भी कवि को अभिमान है।

"समझ सकेगा उसे कोई? आज तक संसार ने एक भी कवि को नहीं समझा"

'वाल्मीक' तुलसी, सूर, शेक्सपियर, दाँते, मिल्टन, रूमी, फिरदौसी, गोर्की को समझने का गौरव रखने वाला संसार 'हालावादी' को न समझ पाया और 'कवि का गर्व देखिये—

यद्यपि 'कवित्व दैव का सबसे बड़ा दण्ड है' फिर भी इस अपराधी (बच्चन) की इतनी पूँछ क्यों है' ? पूँछ हुई तो, किन्तु रही नहीं, न रह सकती थी उसका कारण यह नहीं था कि कवि को संसार समझ ही न पाया अपितु इसलिए क्योंकि यह 'हालावाद' उसके योग्य न था निस्संदेह संसार व्यर्थ और हानिकर 'उन्माद को' अधिक दिनों नहीं अपना सकता। किन्तु कवि कहता रहा—

वस हम दीवानों की टोली चल देने को तैयार हुई। और इन "दीवानों' को कुछ समझना वाकी न रहा—

'कल्पना, सुरा औ साकी है—पीने वाला एकाकी है।'

यह भेद हमें जब ज्ञात हुआ, क्या और समझना वाकी है? हालावादी 'कर में एक सुराही वाकी' लेकर झूमता चला। उसका 'तन मिट्टी का था, मस्ती का मन था' और 'मतवाले' जाम जाम जपते थे ( राम, राम नहीं )। पराजयवादी कवि ने देखा—

'इस पार नियति ने भेजा है—असमर्थ बना कितना हमको।'

और तब उसका 'ध्येय विस्मृति' बन गया। अतः हालावाद के निम्न तत्व स्पष्ट लक्षित हुये—

(१) सामाजिक रूढ़ियों के विपरीत असामाजिक, असंतुलित उच्छृङ्खल विद्रोह।

(२) नियतिवाद का समर्थन

(३) निराशा, विस्मृति का आवाहन

(४) विवशता की कसक पर उसके लिए प्रयत्न शील न बनकर अरण्य-रोदन।

(५) हाला, वाला, मधुशाला, सुराही, प्याला का राज्य स्थापित करने की महत्वाकांक्षा।

(६) पथ भ्रष्ट, लक्ष्य हीन अराजकता।

(७) अभिव्यक्ति सरल, सीधी-उन्मादक भाषा में।

आवारापन का प्रचार देखिये—

मैं दुनियाँ का हूँ एक नया दीवाना।
मैं दीवानों का वंश लिये फिरता हूँ॥
मैं मादकता निःशेष लिये फिरता हूँ।
जिसको सुनकर जग झूम झुके लह
मैं मस्ती का सन्देश लिए फि—

क्षण में आकर्ण निमग्न, आवाहन

ग्री-

त्तित दृष्टि से देखकर जैसे कोई व्यक्ति अफीम-सेवन से उस कष्ट का मानसिक स्थिति से अपना दामन छुड़ा लेता है, अपनी निराशा अक्षमता को नियति का परिणाम समझता है, असफल छात्र की तरह आत्म हत्या न कर सुरा-पान करता है, अपने व्रण को सहलाता है, रोग का ठीक निदान न सोच कर आत्म प्रवंचना को आत्म समाधान समझ लेता है, उसी प्रकार 'हालावादी' दर्शन सामने की भीषण परिस्थितियों को चुनौती न देकर झुठलाता है। विस्मृत के उधेड़-बुन में ही सारा जीवन बिता देना चाहता है।

मैं मदिरालय के अन्दर हूँ—
मेरे हाथों में प्याला।
प्याले में मदिरालय बिम्बित—
करने वाली है हाला।
इस उधेड़बुन में ही मेरा—
सारा जीवन बीत गया।
मैं मधुशाला के अन्दर था—
मेरे अन्दर मधुशाला।

कवि का आग्रह है कि यह मधुशाला' एक रूपक काव्य है। किन्तु रूपक काव्य तो 'कामायिनी' भी है। उसका 'रहस्यवाद' भी आदर्शवाद पर खड़ा है। आत्मा व परमात्मा की उलझन वहाँ भी है। जायसी में भी 'पद्मावती' मधुबाला के समान ही आकर्षक है किन्तु ये कवि निराशा, पलायन, पराजय, विस्मृति की देन नहीं देते। जीवन के कठिन सोपानों पर चढ़कर आशा विश्वास व साधना का सन्देश देते हैं, जीवन की सारी भव्यता वहाँ केन्द्रित है। कवि का ध्यान 'विषयम' जीवन पर गया अवश्य है परन्तु वह उस विष के प्याले को न पीकर 'साकी' से मधु का सागर' माँगने लगता है, कुछ क्षणों को सुखद बनाने के लिए—

विश्व तुम्हारे विपमम जीवन, में लापायेगी हाला ।
यदि थोड़ी सी भी वह मेरी, मादकता साकी वाला ।
शून्य तुम्हारी घड़ियाँ कुछ भी, यदि वह गुंजितकरपाई।
जन्म सफल समझेंगी जग में, अपनी मेरी मधुशाला ॥

'पराधीन विपमता से पीड़ित भारत को बच्चन ने मधुशाला में बैठा दिया ।'

प्रस्ताव तो अच्छा था ।

# माँसलवाद

प्रीति तराने गाने वाले - सांध्य विहग से हम चंचल।
खोल चला अंतस्तल अम्बर, नग्न माधुरी उच्छृङ्खल
यह मुहूर्त शुभ पर्व पड़ा है - इसे मनालें आज सखी।
सागर सीमा तोड़ चला तब, सरि की कैसी लाज सखी ?
आज पीते ही चलो, पी पी जलो उन्माद वाले
जग के इस पुण्य विचारों में, हम आग लगादें झंझा-सी।

'माँसलवाद,, वस्तुतः 'हालावाद' का ही प्राण सखा है किन्तु अभिव्यक्ति में अंतर है। वस्तु की दृष्टि से दोनों कवि प्रेम के विप्लवी तराने गाते हैं—वही वासना के-और विलास के। 'हालावाद' प्रतीक-पद्धति पर चला है उसके पीछे फारसी के सूफी कवियों की परम्परा है अतः उसके कवि की अभिव्यक्ति आपाततः स्थूल लगने पर भी उसके 'उन्माद' के नीचे अपेक्षाकृत कुछ गहराई अवश्य है।'हालावाद' का कवि वासना की प्रशस्ति करता है, किन्तु वह उषा के ही गाल चूमकर उद्‌गार प्रकट करता है, ऐंद्रिकता की वहाँ सिफारिश अधिक है, चित्रण कम है। कवि अपनी 'फिलासफी' को सम्मुख रखना चाहता है। हाला-बाला की पुनरावृत्ति में कवि स्वयं डूबता है, कुछ भुलाने के लिये, स्वप्नों की नगरी बसाने के लिये किन्तु 'माँसलवाद' में कवि अपनी यौन-तृष्णा को प्रतीकों में नहीं बाँधना चाहता वह केवल यह उलाहना नहीं देना चाहता कि 'वृद्ध जग को मेरी जवानी क्यों अखरती है' वह तो जैसे 'सलौनी' के शरीर पर आक्रमण कर अपनी तृष्णा मिटाना चाहता है क्योंकि अनुशासन वह सह नहीं सकता, 'पापी' बनना उसे स्वयं स्वीकार

है पर वह तो "क्रीड़ातुर पंछी" है जो अपनी 'जलन टटोल' टटोल कर उस पर अंकुश नहीं रख पाता। अतः माँसलवाद का कवि 'अंचल' अपनी 'मधूलिका' में ऐंद्रिक चित्र देकर, उन्हें देखकर पागलों की तरह उन्हें पाशबद्ध करने को दौड़ता है। अट्टहास करती हुई यौन-पिपासा उसमें 'फूत्कार' बनकर निकलती है। उसमें एक ओर यौवन का प्रचण्ड निर्बन्ध प्रवाह है तो दूसरी ओर अनुभूति (तृष्णा मात्र) की विचारोत्तेजक आँधी। † माँसलवाद "मनुष्य के पाशविक विकारों का उन्मत्त उभार" मात्र है।

'मधुशाला' में बैठा कवि (हालावादी) अंचल से अधिक समझदार है, वह जानता है कि वह 'प्याला' को समझ बूझकर उठा रहा है, 'मधुबाला' को वासनामयी दृष्टि से देखता है परन्तु वह गिद्ध की तरह टूट नहीं पड़ता, वह वासना की 'घुमड़न' को प्याले में घोलकर बहाता, है जबकि माँसलवादी कवि में सनसनाहट अधिक है। मूलतः दोनों अतृप्ति की 'उमड़' को व्यक्त करते हैं, यौन-वृत्ति पर संयम स्वीकार दोनों नहीं करते, दोनों नकारात्मक-नैतिकता के समर्थक हैं परन्तु जैसा कि मैंने कहा कि माँसलवादी अंचल में ऐंद्रिकता, पाशविकता की सीमा तक पहुंच जाती है वह सौन्दर्य का कवि नहीं, गोरी-गदकारी-सलौनी के 'माँस' की प्यास का कवि है। उसे देखकर उसके शरीर में वेदना नहीं, वेग उत्पन्न होता है। "नोंच नोंचकर तृष्णा पूर्ति के लिये। उसमें अपरिमेय 'भीम-भैरव विस्फूर्जन' है। 'हालावादी' में ख़ुमार अधिक है अंचल में उद्गार, 'बच्चन' में निराशा व नियतिवाद बोलने लगता है, वह अलग दुनियाँ बसाने और मस्ती दिखाने का प्रदर्शन अधिक करते हैं, अंचल उन्माद को व्यक्त ही नहीं करते, उसे कार्य रूप में परिणत करने और 'अस्मत' लूटने के लिए भी प्रस्तुत हो जाते हैं माँसलवाद के पीछे केवल एक दर्शन है—

---

† विनय मोहन शर्मा—भूमिका लेखक (मधूलिका)

"देखो, यदि सुन्दर हो, तो टूट पड़ो, न सोचो न रुको"

मधूलिका, माँसलवाद की प्रथम और अंतिम रचना मानी जाती है यद्यपि 'अंचल' की तृष्णा आज भी शाँत नहीं हुई है तथापि उनकी अभिव्यक्ति में अब वह भैरव-विस्फूर्जन नहीं रहा। संयम आ गया है, ऐंद्रिकता के स्थान पर भाव-तन्मयता आगई है। किन्तु 'मधूलिका' में अंचल की दृष्टि यहाँ है—

फूल उसास प्रदोलित, वक्षः स्थल जब उठ उठ जाता।
पावक सी इस रूप - घटा को, कौन विलोक अघाता?
गमक रही मद भरी मंजरी - सी - मधुमूर्ति नवेली।
गोरे अंग अंग में हाला, हालाहल सी अलबेली॥
कहाँ मिलेगा फिर यह बाँका - प्यारा-प्यारा यौवन?

पंत ने भी 'उकसे थे अमियों से उरोज' कहा था किन्तु पूरी कविता में केवल एक पंक्ति माँसल थी यहाँ प्रत्येक पंक्ति में कवि "गन्ध अन्ध - पागल उच्छृङ्खल" दिखाई पड़ता है।

भूमिका लेखक महोदय ने 'भावों के ज्वार उठने, रूप को आँखों से पीने' की बड़ी प्रशंसा की है। कहना न होगा कि भावों का ज्वार कविता नहीं हमारे यहाँ काव्यात्मा 'रस' है, रस व्यंग्य होता है, अभिधेय नहीं, वासना का, भाव का कच्चापन 'रस' तक पहुँचते २ छूट जाता है यही कारण है कि शृंगार उन्मादक न रहकर प्रसादक हो जाता है।

'ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों २ खरी निकरै सी निकाई' में यही सौन्दर्य है।' मूलभावना वही रूप-तृष्णा है परन्तु अभिव्यक्ति का स्वरूप कला-पूर्ण है, यह परिधान आवश्यक है, नग्न सौन्दर्य नारी शरीर की शव परीक्षा है, इसीलिये इसे 'अश्लीलता' समझा गया था (पर वह तो पुराने युग की चर्चा होगई है) भूमिका लेखक महोदय के (defencive criticism) दृष्टिकोण को देखिये—'एक लेखक ने ठीक ही लिखा है—Beauty is perheps two naked and undomed for the modern

world' आधुनिक युग सौन्दर्य पर किसी किस्म का आवरण पसन्द नहीं करता' किन्तु यह माडर्न मैन की कुरुचि का प्रदर्शन होगा। पता नहीं लेखक के माडर्न मैन की परिभाषा क्या है? सौन्दर्य के अनावृत चित्रण का अर्थ यह नहीं है कि कवि ज्वार के ज्वर में स्वयं काँप उठे और पाठकों को भी पथ भ्रष्ट करने का प्रयत्न करे। शृंगार का वर्णन करना ठीक है, व्यभिचार का नहीं देखिये—

आज सुहाग हरूँ मैं किसका, लूटूँ किसका यौवन ?
किस परदेशी को बंदी कर, सफल करूँ यह वेदन ?

कवि प्रियतमा की वेणी को देखकर पूछता है—

कितने नयनों को मथ तुमने वेणी आज बनाई ?
अतः
आज अमा पूरनिमा का यह मंगल मिलन दिखाओ।
हँस हँस कर वेणी लहराओ, हियरा मस्त बनाओ॥

'मधूलिका' की अधिक कविताओं की प्रथम पंक्ति में 'तृष्णा' शब्द आया है जो 'मदन जल' वहाती है।

छल छल मुक्त छलकती तृष्णा पुन्य मदन जल बहता।

इसीलिये वह स्वयं स्वीकार करता है।

इन सूनी घड़ियों में तुमको हेर रहा मैं पापी।

मस्ती का यह अतिरेक, विवेक को जला कर चलता है। कवि का यह विद्रोह भी विधवा की हाहाकार वन जाता है।

है रही लालसा मेरी सदा असम्भव।
विधवा सा हाहाकार किया करता हूँ।

मांसलवाद के कवि की उष्ण जवानी विध्वंस से भरी है, वह 'अनियंत्रित सत्ता से लथपथ ध्यानी' वनकर भी अनुभव करता है—

तुम क्या जानो इस कम्पन में कितनी मादकता है ?
कितना है उन्माद अरे कितनी घातक कविता है ?

उसके लिये 'जीवन एक पाप है, अभिशापों की छाया मात्र

नहाँ वासना सी लोलुप उर की माया फैली हुई है।' जीवन के प्रति कितना स्वस्थ दृष्टिकोण है।

माँसलवादी के लिये प्रकृति की वस्तुओं में भी वही उन्माद दिखाई पड़ता है।

"अरी पगली मधुमत्त बयार, चली किससे करने अभिसार।"

कहीं कहीं 'प्रिय' 'सरकार' बन कर आगई है।

"सरकार तुम्हीं आये हो जीवन में कविता बन कर।"

हाला-मांसलवादियों को उच्च लक्ष्य की आवश्यकता नहीं—

मंजिल का क्या सोच स्वयं वह आकर मिल लेगी हमसे।
सागर स्वयं चले आवेंगे लख हमको व्याकुल प्यासे॥

और 'मलूकदास' की वाणी को मिलाइये।

दास मलूका कह गये सब के दाताराम।

× × × ×

कौन देखता है भविष्य को वर्तमान ही सार यहाँ।
प्रेमी के मानस से सुन्दर, सपनों का संसार कहाँ?

कवि के सम्मुख अन्धकार ही अन्धकार है, वासना की विद्युत-धाराएँ केवल चकाचौंध ही उत्पन्न करती हैं किन्तु वह प्रेम कह कर अमर बनाने लगता है, व्यक्तिगत कराह को सहने के लिये वह आत्म बल को जगाता है और इस प्रकार Flash and blood को ही सब कुछ समझ कर अतृप्ति की आग में अग्निकीट के समान जलता है।

प्रीति तराने गाने वाले, सांध्य विहग से हम चंचल।
खोल चला अन्तस्तल अम्बर, नग्न माधुरी उच्छृंखल॥

इस नग्नता के लिये तर्क देखिये—

सभी यहाँ से कफन लपेटे जाते किन्तु नग्न आते।
वहाँ सुना सब यौवन अनुभव रंग रूप सुख छिन जाते॥

कवि चाहता है—

जग के इन पुण्य विचारों में हम आग लगादें झंझासी।

हिन्दी के शृंगार क्षितिज पर धूमकेतु के समान उदय होकर ा-वालावादी पाठकों का ध्यान अवश्य खींच सके किन्तु न तो ाँ जीवन की गहरी अनुभूति है न सफल अभिव्यक्ति। उत्तरदा-त्व हीनता के पुण्य-प्रसार में उक्तवादों ने सक्रिय सहयोग किया ौर उससे जिस 'फक्कड़पन' की बाढ़ आई वह कभी कभी तो बड़े वियों में भी ध्वनित हुई थी—

हम दीवानों की क्या हस्ती, आज यहाँ, कल वहाँ चले।
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जिधर चले।
—'भगवतीचरण वर्मा'

संक्षेप में हम माँसलवाद के तत्वों को इस प्रकार रख सकते हैं।

(१) माँसलवाद नग्न नारी-सौन्दर्य का वर्णन करता है।

(२) कामुकता का भीषण प्रदर्शन सबसे अधिक यहीं देखने को मिलता है।

(३) यौन-सम्बन्धों पर किसी प्रकार का कोई अनुशासन कवि को सह्य नहीं है।

(४) कवि उमड़ते हुए वासना के प्रवाह को उत्तेजक चित्रों तथा उत्तरदायित्व हीन उक्तियों में बाँध कर रखता है।

(५) यह 'माँसलवाद' अंचल की 'मधूलिका' नामक काव्य संग्रह तक ही सीमित है जैसे बच्चन का हालावाद मधुशाला, मधुबाला व मधुकलश में। उग्र आचारवादी ( Puritan ) प्रवृत्तियों के विरुद्ध मानवीय भावनाओं की यह अभिव्यक्ति सफल होगई होती यदि कवि उत्तरदायित्व को एक ओर न रख देते, कोई समाज का आदर्श रूप सम्मुख रखते, शैले, कीटस, पन्त, प्रसाद ने भी ऐन्द्रिक चित्रण दिये हैं, स्वप्न बसाये हैं वेदनाँ व्यथा को व्यंजित किया है परन्तु जो असामाजिक अंधविप्लव इन कवियों में मिला है, वः अन्यत्र दुर्लभ है। यह विप्लव वर्तमान समाज से उत्पन्न असंगति का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।

———

# प्रगतिवाद—यथार्थवाद

परिस्थितियाँ:—

मुगल राज्य की अन्तिम छत सन् १८५७ में गिर कर ध्वस्त हो ई। जनता का स्वतन्त्रता संग्राम कुछ समय के लिये रुक गया। और देश गौरव से अभिमंडित सामंतों ने या तो 'अंग्रेज' से सौदा कर लिया या हत तेज होकर मध्यवर्ग में अपने को खो बैठा। शताब्दियों से प्रपीड़ित जनता एक आह छोड़कर पुनः अपने कार्य साधन में रत होगई। विदेशी ने देश को रियासतों और ब्रिटिश इंडिया में बाँटकर एकता के तारों को छिन्न भिन्न कर दिया। विक्टोरिया की घोषणा में पुजारी व मुल्लाओं के लिए बड़ा आकर्षण था, देश के लिए कुछ नहीं। आगे विधान सभाओं का अभिनय प्रारम्भ हुआ, भारतीयों को शासन सिखाने और योग्य हो जाने पर सत्ता हस्तांतरित कर देने का पुनीत विचार चलता रहा। सन् १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना हुई। जिसमें अवकाश-प्राप्त उच्च-मध्यवर्ग वालों ने भाग लिया। जनता सो रही थी क्योंकि १८५७ में वह अधिक थक कर निराश हो गई थी।

१९०९ में हिन्दू मुस्लिम-पृथक चुनाव सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया, राजनीति गोखले, गोविन्द रानाडे तथा आगे 'तिलक' के हाथों में खोलती रही। जनता ने अपना तीव्र असंतोष व्यक्त किया और इसी हलचल में सन् १९१४ का प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। देश से सहायता माँगी गई। परम श्रद्धालु महात्मा गांधी प्रस्तुत थे, लक्ष लक्ष युवक, लक्ष लक्ष मुद्राओं के साथ युद्ध में झोंक दिये गए। परिणाम हुआ १९१९ का माँटेग्यू-चैम्स फोर्ड एक्ट जिसने विधान सभाओं में थोड़ा परिवर्तन कर दिया। स्थानीय स्वराज्य तथा प्रांत

में मुख्य विषय 'रक्षित' कर अमुख्य विषयों को हस्तातंरित करने का प्रस्ताव किया गया।

समझौता वादी कांग्रेसियों ने देश के असंतोष के साथ विश्वासघात करना उचित न समझा और १९२० का खिलाफत आन्दोलन पुनः नमक कानून, तथा प्रथम गोलमेज सभा के वहिष्कार आदि में अपनी दृढ़ता को व्यक्त किया। जनता सुलभ पथ तथा खतरा कम देखकर 'महात्मागांधी की जय' बोलकर काँग्रेस के साथ हो चुकी थी। 'तिलक' की क्रांति पीछे पड़ चुकी थी। सन् ३०, ३१ में जब देश के नेता गोलमेज के सभाओं में देश का भाग्य निश्चय कर रहे थे, तब योरोप 'यंत्रयुग' के पूर्ण वैभव से जगमगा रहा था। १९ वीं सदी में जो वहाँ व्यावसायिक क्रान्ति (१७५०-१८५०) हुई, उसमें जर्मनी फ्रांस, इंग्लैंड आदि देशों की साम्राज्यवादी सरकारों ने बाजार खोजने का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। अफ्रीका, भारत, पूर्वी द्वीप, फारस आदि सभी पिछड़े देशों में आधुनिक यंत्रों से उत्पन्न नवीन वस्तुओं का विक्रय कार्य बढ़ता गया। व्यक्तिगत जोखिम individual interpriso की प्रधानता हुई, स्वतन्त्र शिल्पी कुछ व्यक्तियों द्वारा संचालित कारखानों में नौकरी करने को बाध्य हुए जिनका श्रम के लाभ में उनका भाग न था पिछड़े देशों में सरकारें योरोपीय देशों की थीं और योरोप से ही पक्का माल मँगाना था अतः ढाके की मलमल बुनने वालों के अँगूठे काट कर कपास को इंग्लैएड में ले जाया गया और लिवरपूल व मैन चेष्टर से नग्न भारत व अन्य देशों के लिए वस्त्रों की देन आने लगी। योरोप का अजिर जर्जर पराधीन देशों के रजत और रक्त से चमक उठा। उधर रूस में वहाँ की प्रबुद्ध जनता ने जारशाही के विरुद्ध क्रांति की और समाजवादी शासन स्वीकार किया। योरोप के मशीनरी वाद की प्रतिक्रिया इस समाजवाद में हुई। एकत्र पूँजी का वितरण होना आवश्यक था। पूँजीपति व श्रमिक ये दो वर्ग अधिक समय तक एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी न रह सकते थे, संतुलन का एक ही मार्ग,

था, सब पूँजीपति बन नहीं सकते थे अतः सबको 'मजदूर' श्रेणी में लाना ही स्वाभाविक था। कार्लमार्क्स का 'दास कैपिटल' इस समाजवादी व्यवस्था का मूलाधार बना और लेनिन आदि का नेतृत्व क्रांति की सफलता का हेतु। १६ वीं शती की फ्रांस की असफल राज्य क्रांति से जनता सबक सीख चुकी थी कि किस प्रकार सामंतों के विरुद्ध उच्चवर्ग के पूँजीपतियों ने 'नैपोलियन' को राजा बना कर जनता के पुरुषार्थ तथा असन्तोष को असफल बना दिया था।

तो रूस में समानवादी व्यवस्था स्थापित हो गई। यह व्यवस्था एक नवीन आश्चर्य था, जनता जिस स्वर्ग-सुख के लिये अब तक कैथोलिकों तथा पुराण पंथियों से पुराण-कथाओं में सुनती थी (स्वर्ग-का दर्शन ) वह धरती पर उतर रहा था। अब तक जितनी क्रांतियाँ हुईं थीं उनके सिद्धान्त वायवी ही बन पाये थे, उन्हें क्रियात्मक रूप अब मिल पाया था। यह व्यवस्था कुछ मौलिक और नितान्त नवीन सिद्धान्तों पर खड़ी की गई जिसने डार्विन के विकासवाद तथा हीगल के द्वन्द्वात्मक-न्याय को लेकर भौतिकवाद Materialism की नींव डाली जिसे अन्तिम और पूर्णरूप दिया काल मार्क्स ने। मशीनरी खड़ी करके योरोप वैभव शाली बना, पिछड़े देशों को अपने चंगुल में फाँस कर उनका शोषण कर उसने जिस नये वर्ग—पूँजीपति—को जन्म दिया वह आपस की 'गलाकाट' प्रति-द्वंद्वता (Cut throat comptetion) से अपने लिये ही गर्त खोदने लगा। तैयार माल के वेचने की होड़ में पूँजीवादी देशों ने सेनायें खड़ी कीं, नवीन अन्वेषित विज्ञान की सारी शक्ति युद्ध सम्बंधी मारक अस्त्रों की तैयारी में लगादी गई। बन्दूक और तोपों से आगे की वस्तुयें हमें मिल गई और हाथों में बम लेकर पूँजीवादी भिड़ गये। सन् १६१४ के युद्ध में ये साम्राज्य वादी अपना तांडवनृत्य कर चुके थे और जो प्रलय युद्ध से उपस्थित हुई उससे विषमता की समस्या दिन पर दिन बढ़ती गई। जनता युद्धों से कराह उठी, अकाल,

महामारी, वेकारी की समस्याओं ने जनता की रही सही शक्ति को भी नष्ट कर डाला। बंगाल में लाखों व्यक्ति तड़प उठे।

विचारक अवतक कई व्यवस्थायें देख चुका था, उसने राज्य शाही को देखा,सामंतशाही को देखा और इस नवोत्थित पूँजी शाही को देखा और उसने निश्चय किया कि जनता का भाग्य तभी वन सकता है जवकि विश्व पर उसी का स्वामित्व हो। यदि कुछ कारखाने-दार, कुछ सामंत या उनके एजेंटों का नेतृत्व रहा तो जनता भाग्य को ही रोती रहेगी जैसा कि वह सृष्टि के आरम्भ से अव तक करती आई है। उसने देखा कि मनुष्य के दुःखो के छुटकारे के लिये जितने प्रयत्न हुये वे अव तक सव व्यर्थ प्रमाणित हुये। अध्यात्मवादी दर्शनों ने दुःख को दूर करने का प्रयत्न कम किया उसे भुलाने का तथा अगणित अंतर्विरोध, असंगति, जातीय भेदभाव, संकीर्णता, रंगभेद आदि की देन देकर जनता का हित करने में अक्षम सिद्ध हुआ। जीवन का उद्देश्य अव तक मोक्ष प्राप्ति रहा, इस्लाम में भी, क्रिस्तान-मत में भी और हिन्दुओं में भी। आदर्शवादी 'अध्यात्म को लेकर चलते रहे। परिणाम यह हुआ कि 'अलौकिक की साधना में, शून्य और ब्रह्म की निष्फल आराधना में घोर व्यक्तिवाद का जन्म हुआ जो व्यक्ति-गत धारणाओं के प्रचार में तन मन धन लगाता रहा जनता की यथार्थ समस्याओं को झुठलाया जाता रहा, अध्यात्म चिंतना में जनता का ध्यान वँटता रहा उसने कभी भी यह न सोचा था कि जनता का निर्माण ईश्वर की इच्छा पर नहीं उसकी ही शक्ति पर निर्भर है। आत्मिक साधना से 'नित्य शुद्ध आत्मा को ब्रह्मानन्द तो प्राप्त हो न पाया, जीवन अवश्य एकांगी, विषय, संकीर्ण तथा पलायन-वादी हो गया। व्यक्ति की दृष्टि से अध्यात्मवादियों में अनेकों त्यागी, असाधारण शक्ति सम्पन्न परोपकारी, मेधावी, दार्शनिक नेता उत्पन्न हुये किन्तु अपने समय की व्यवस्था की ओर ध्यान न देकर वे आत्मा-परमात्मा सम्बंधी विचारों की छानवीन में

निमग्न रहे, निस्संदेह वे एक ऊँचा आदर्श दे सके किन्तु यथार्थ की अवहेलना तथा अध्यात्म-जन्य निष्क्रयता के कारण जनता का स्थायी कल्याण न हो सका। साथ ही विकास वाद के सिद्धान्त ने स्पष्ट कर दिया कि व्यक्ति जिन विभिन्न युगों से गुजर कर आ रहा है वे युग विकास के सोपान मात्र हैं अपने में पूर्ण नहीं। इतिहास तथा समाज शास्त्र ने मनुष्य के अब तक के प्रयत्नों, संघर्षों, सभ्यता तथा सामाजिकता के लिये किये गये कार्यों का लेखा स्पष्ट रूप से सामने रक्खा, आखेट अवस्था से किस प्रकार व्यक्ति, खेती की अवस्था में और उसके पश्चात् राज्यशाही में और राज्यशाही के पश्चात् पूँजीवादी व्यवस्था में विकास करता गया किंतु अभी एक क़दम शेष था और वह था साम्यवाद जिस व्यवस्था में उसका पूर्ण विकास सम्भव था। अतः अब तक के सारे दृष्टिकोणों में आमूल परिवर्तन हो गया। कला, साहित्य राज्य, रीति-रूढ़ियाँ, सभ्यता व सँस्कृति परिवार, नारी सभी के सम्बंध को स्पष्ट करने तथा उनके निर्माण और विकास के सम्बंध में नूतन धारणाओं की अवतारणा हुई जिनको क्रियात्मक रूप मिला, रूस में राष्ट्र के पैमाने पर जनता को उठाने का प्रथम प्रयत्न विश्व में इसी देश में हुआ।

इस नूतन व्यवस्था को ऐतिहासिक आवश्यकता कहा गया, और इसी ओर "चलने और ले चलने" के प्रयत्न प्रारम्भ हुये जो इस ओर चले वह प्रगतिवादी है क्योंकि इसी व्यवस्था में जनता का पूर्ण विकास सम्भव है और जो इस ओर न ले चले पीछे की ओर जिन्हें काल और इतिहास अवश्यक समझ कर पीछे छोड़ आया है ले चले वह प्रतिक्रियावादी कहलाया। मानव के सर्वाङ्गीण विकास के प्रयत्न प्रारम्भ हुये और 'साम्यवादी दर्शन के आधार पर प्रयोग प्रारम्भ हुये और 'रूस उसमें कमसे कम अबतक सफल रहा। विश्व के श्रमिकों, कृपकों तथा निम्न-मध्य वर्गों की जनता के लिये 'रूस एक आदर्श बन गया।

## साम्यवादी दर्शन

साम्यवादी (प्रगतिवादी) साहित्य को समझने के लिये 'साम्यवाद' को संक्षेप में समझना अत्यन्त आवश्यक है। उसके मूल सिद्धान्तों को समझ लेने पर उसकी साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं पर प्रकाश पड जायगा।

है, निरपेक्ष्य नहीं। मनुष्य के इतिहास में एक प्रवृत्ति उन्नतिशील होती है, वैसी ही दूसरी विरोधात्मक प्रवृत्ति का आरम्भ होता है। इन दोनों के संघर्ष से एक तीसरी प्रवृति पैदा होती है, जो फिर एक विरोधी प्रवृत्ति को जन्म देती है। इस प्रकार सभ्यता का प्रत्येक दर्जा एक वाद है (Thesis) जो विचार (idea) का एक अपूर्ण समानार्थी है। वाद और प्रतिवाद के संघर्ष से एक समन्वय Syntheisis का जन्म होता है जो दोनों के अच्छे तत्वों का मिश्रण होता है। इस प्रकार मानव का इतिहास प्रगति करता चलता है और इसीलिये 'सत्य' का रूप सापेक्ष्य होगा निरपेक्ष नहीं।

वस्तु का संसार ही सत्य है, विचार का नहीं ❀ अतः वस्तु ही मानवीय इतिहास का संचालन करती है। हेगेल कांट आदि मार्क्स के पूर्व युग के दार्शनिक, विचारों के संसार को ही सत्य मानते थे और शंकराचार्य तो संसार को मिथ्या घोषित कर ही चुके थे। ‡ मार्क्स के अनुसार यह पदार्थमय जगत ही सत्य है, इसी से सृष्टि का विकास हुआ है, जगत किसी अव्यक्त सत्ता का व्यक्तीकरण नहीं है। प्रथम यथार्थ आता है, विचार उसके बाद, बिना किसी पदार्थ के मनुष्य सोच ही नहीं सकता अतः बाह्य जगत ही सत्य है वह किसी अवाङ्ग मनस गोचर—परब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं है। अतः वस्तु के उत्पादन की शक्तियों की उन्नति ही, मानवीय उन्नति की सीढ़ी है। उत्पादन शक्ति की प्रगति का प्रत्येक सोपान उनके प्रयोग के लिये एक व्यवस्था को जन्म देता है। ये आर्थिक सम्बन्ध उचित राजनैतिक व सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं जो स्वयं आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं ये सम्बन्ध मनुष्यों को वर्गों में विभक्त कर देते हैं और इनमें संघर्ष होता है। यही वर्गवाद और प्रतिवाद हैं यह संघर्ष इतना बढ़ जाता है एक नवीन वर्ग-

❀ The palpable world which we see with our senses; is the real world.

‡ एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः।

## साम्यवादी दर्शन

साम्यवादी (प्रगतिवादी) साहित्य को समझने के लिये 'साम्यवाद' को संक्षेप में समझना अत्यन्त आवश्यक है। उसके मूल सिद्धान्तों को समझ लेने पर उसकी साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं पर प्रकाश पड़ जायगा।

यद्यपि कार्ल मार्क्स के पूर्व आदर्शवादी व्यवस्था (Utopia) में विश्वास रखने वाले समाजवादी थे यथा ऑविन और फोरियर (प्रथम युग), लुई ब्लाक तथा लासेली (द्वितीय युग) तथापि मार्क्स ने इन्हें अवैज्ञानिक समाजवादी ठहराया और तृतीय युग में 'दास कैपिटल' लिखकर 'मार्क्सवाद' का प्रवर्तन किया जो कि क्रान्तिकारी साम्यवाद का वेद कहा जा सकता है। चतुर्थ युग में इसी 'मार्क्सवाद' की व्यावहारिक सफलता प्राप्त हो गई जबकि रूस में क्रान्ति सफल हुई और लेनिन की अध्यक्षता में साम्यवादी व्यवस्था स्थापित हुई। साथ ही विश्व में इङ्गलैण्ड, स्वीडन, आदि में समाजवादी सरकारें स्थापित हुई। * मार्क्स के 'कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो' के पश्चात् फैबिनयज्म Febianism बर्न्स्टाइन का सुधारवाद (Revisionism), सिंडीकलाज्म (Syndicalism) आदि मतों की अवतारणा हुई किन्तु मार्क्स के 'क्रान्तिकारी साम्यवाद' का ही प्रभाव बढ़ा आज 'मार्क्सवाद, ही समाजवाद का सबसे अधिक प्रभावशाली रूप है, उसी के द्वारा मनुष्य का सारा ज्ञान-विज्ञान प्रभावित होरहा है। साहित्य की भावनाओं, उसके रूप, उद्देश्य पर भी मार्क्सवादी विचारधारा छाई हुई है अतः जिसे हम प्रगतिशील साहित्य कहते हैं उसके पीछे मार्क्सवाद का दर्शन ही आसीन है।

मार्क्सवाद क्या है—

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—(Dialectical Materialism)

संसार में सत्य स्थायी नहीं, गतिशील है अतः वह सापेक्ष्य

---

*समाजवाद—अमरनारायण अग्रवाल

है, निरपेक्ष नहीं। मनुष्य के इतिहास में एक प्रवृत्ति उन्नतिशील होती है, वैसी ही दूसरी विरोधात्मक प्रवृत्ति का आरम्भ होता है। इन दोनों के संघर्ष से एक तीसरी प्रवृति पैदा होती है, जो फिर एक विरोधी प्रवृत्ति को जन्म देती है। इस प्रकार सभ्यता का प्रत्येक दर्जा एक वाद, है (Thesis) जो विचार (idea) का एक अपूर्ण समानार्थी है। वाद और प्रतिवाद के संघर्ष से एक समन्वय Syntheisis का जन्म होता है जो दोनों के अच्छे तत्वों का मिश्रण होता है। इस प्रकार मानव का इतिहास प्रगति करता चलता है और इसीलिये 'सत्य' का रूप सापेक्ष होगा निरपेक्ष नहीं।

वस्तु का संसार ही सत्य है, विचार का नहीं ❀ अतः वस्तु ही मानवीय इतिहास का संचालन करती है। हेगेल कांट आदि मार्क्स के पूर्व युग के दार्शनिक, विचारों के संसार को ही सत्य मानते थे और शंकराचार्य तो संसार को मिथ्या घोषित कर ही चुके थे। ‡ मार्क्स के अनुसार यह पदार्थमय जगत ही सत्य है, इसी से सृष्टि का विकास हुआ है, जगत किसी अव्यक्त सत्ता का व्यक्तीकरण नहीं है। प्रथम यथार्थ आता है, विचार उसके बाद, बिना किसी पदार्थ के मनुष्य सोच ही नहीं सकता अतः बाह्य जगत ही सत्य है वह किसी अवाङ्‌ मनस गोचर—परब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं है। अतः वस्तु के उत्पादन की शक्तियों की उन्नति ही, मानवीय उन्नति की सीढ़ी है। उत्पादन शक्ति की प्रगति का प्रत्येक सोपान उनके प्रयोग के लिये एक व्यवस्था को जन्म देता है। ये आर्थिक सम्बन्ध उचित राजनैतिक व सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं जो स्वयं आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं ये सम्बन्ध मनुष्यों को वर्गों में विभक्त कर देते हैं और इनमें संघर्ष होता है। यही वर्गवाद और प्रतिवाद हैं यह संघर्ष इतना बढ़ जाता है एक नवीन वर्ग-

---

❀ The palpable world which we see with our senses; is the real world.

‡ एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः।

हीन व्यवस्था का जन्म होता है। और तब वर्ग युद्ध का अन्त हो जाता है।❀

इतिहास की आर्थिक व्याख्या( Economic Interpretation of History )

महान् व्यक्तियों के प्रयत्न तथा प्रभाव से युग बदलता है परन्तु उन्हें उत्पन्न करने वाला समाज है जो भौतिक परिस्थितियों के आधार पर बनता बिगड़ता है सामाजिक विकास की प्रगति और दिशा उत्पत्ति तथा विनमय की रीतियों पर निर्भर करती हैं। ३ एँगिल्स ने कहा था—

'समस्त सामाजिक परिवर्तनों तथा राजनैतिक क्रान्तियों के अन्तिम कारण न तो मनुष्यों के मस्तिष्क में, और न मनुष्य के चरम सत्य और न्याय सम्बन्धी विशेष ज्ञान में पाये जाते हैं वरन् वे उत्पत्ति तथा विनियम के ढंगों में ही मिल सकते हैं' अतः इतिहास का आधार है 'आर्थिक संघर्ष'। ❀ वर्गयुद्ध, नियम-स्थापन, दार्शनिक, धार्मिक, साँस्कृतिक योजनायें जो इतिहास को बनाती हैं, आर्थिक भित्ति पर खड़ी हैं। अतः मनुष्य अपना इतिहास स्वयं बनाता है, महापुरुष अपनी इच्छा या अपनी कल्पना की प्रेरणा के अनुसार इतिहास को नहीं बनाते या यों कहें कि उस समाज को बदलने की कल्पना या प्रेरणा आर्थिक परिस्थितियों के कारण ही मिलती है। कारण यह है कि मनुष्य इतिहास की निर्माण शक्ति के रूप में अपने को अन्य वस्तुओं से सम्बद्ध करके कार्य करता है। अतः ईश्वरेच्छा या अन्य कोई दैवी शक्ति समाज को परिवर्तित नहीं करती है।

वर्गयुद्ध—आर्थिक संघर्ष में एक वर्ग वस्तु पर अधिकार कर

❀ From Marks capital, quoted by अमर-नरायण अग्रवाल

३ Political economy.

❀ Engels, socialism, utopian and sciensific,

लेता है और दूसरा उसके लाभ का साधन मात्र बनता है अतः दोनों श्रेणियों में संघर्ष होता है। सभ्यता का विकासावस्था में यह संघर्ष स्पष्ट न था परन्तु पूँजीवादी व्यवस्था में सारी उत्पादन शक्ति मुट्ठी भर पूँजीपतियों के हाथ में आजाने से शोषित सर्वहारा उनके विरुद्ध क्रांति करता है। इस सिद्धान्त के तत्व संक्षेप में निम्नलिखित हैं—

(१) वर्ग संघर्ष आर्थिक संघर्ष का परिणाम है।

(२) आदि काल की साम्यावस्था से क्रमशः विकसित होते हुए युगों कृषि-युग, सामंत युग, पूँजीवादी युग में समाज दो भागों में बंट गया (१) शोषक वर्ग (२) शोषित वर्ग। इतिहास इन्हीं दो वर्गों के संघर्ष का इतिहास है।

(३) अब सर्वहारा वर्ग समस्त वर्गों के अस्तित्व को मिटाकर सारे समाज को श्रेणी विहीन व्यवस्था देगा ( इसी वर्ग हीन व्यवस्था की ओर ले जाने वाला साहित्य, प्रगतिशील साहित्य है जो वर्ग संघर्ष को तीव्र करे और क्रांति द्वारा सर्वहारा को प्रस्तुत करे जिससे क्रांति हो और इस प्रकार श्रेणी विहीन व्यवस्था का निर्माण हो जिससे मानव-संस्कृति पूर्णता को प्राप्त होगी।

मनुष्य के सुख और शांति के लिए उसके पूर्ण विकास के लिए इस वर्गहीन समाज की स्थापना अनिवार्य है अतः साहित्य का कर्त्तव्य है कि वह 'सर्वहारा' के इस संघर्ष में उचित हाथ बटाये क्योंकि साहित्य सामाजिक चेतना का ही परिणाम है जो व्यक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त होती है, साहित्य समाज से आँखें मूँदकर, मानववादी परम्परा के विरुद्ध यदि किसी 'अलौकिक सत्ता की प्राप्ति पर जोर देता है तो वह प्रतिक्रियावादी होगा। वह किसी आत्यंतिक आनन्द की अभिव्यक्ति नहीं है, साहित्य का सत्य भी सापेक्ष्य सत्य है अतः साहित्य का कुछ कर्त्तव्य है, यही कि वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार यह पहचाने कि प्रगतिशील तत्व क्या हैं ? पूँजीवाद प्रतिक्रियावादी है क्योंकि उसने उत्पादन

के साधनों पर एकाधिकार कर लिया है, वह एकाधिकार बना रहे इसके लिए पूँजीवाद जनतन्त्र का अभिनय करता है, जनतन्त्र ( Democrocy ) में कानून बनाने वाली व्यवस्थापिका सभाओं में उसी के एजेंट होते हैं जो उसकी रक्षा का प्रयत्न करते हैं और 'सर्वहारा' की क्रांति का विरोध करते हैं। प्रेस, सरकार, अन्य सभी सँस्थाओं पर पूँजी के इस एकाधिकार के कारण पूँजीपतियों का प्रभाव रहता है और इससे अधिकांश जनता असँस्कृत, विषमता से पीड़ित, निर्धनता तथा अज्ञान की शिकार रहती है जब तक पूँजीवाद रहेगा मानव का पूर्ण विकास असम्भव है ,क्योंकि पूर्ण रूप से विकसित कर देने तथा अपनी स्वार्थ लिप्सा का पर्दा फाश होने पर पूँजीवाद को भय है कि कहीं जनता उसके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण न करे अतः वह प्रत्येक मूल्य पर वर्ग संघर्ष की चेतना को भाग्यवाद ईश्वरवाद रूढ़ि व अंध विश्वास का प्रचार कर दबाता है और तब समाज के पथ प्रदर्शक कलाकार साहित्य का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस प्रतिक्रियावादी पूँजीवाद के विरुद्ध प्रगतिशील 'सर्वहारा' को साहित्य में स्थान दे, राजाओं व सामन्तों के स्थान पर मजदूर का चित्रण करे, अधिकांश जनता जो भूखी और नंगी है उसके चित्र उपस्थित करे, केवल शृङ्गार प्रधान या झूठी दार्शनिकता प्रधान काव्य लिखकर केवल मुट्ठी भर प्रतिक्रिया वादियों का मनोरंजन न करे, जैसे लोभ या अन्य किसी प्रभाव में आकर ऐसी विचार धाराओं 'सर्वहारा' को भ्रम में रखती हो न फैलाये, कविता, उपन्यास कथा, नाटक, सबका एक ही कर्त्तव्य हो कि जनवादी साहित्य का सृजन करना, पूँजीवादी नहीं।

साहित्यकार प्रत्येक युग में प्रगतिशील रहता है, चतुर बनमाली के समान वह जानता है कि किस पौधे को पानी देना है और किसे उखाड़ कर फेंक देना है, जनता के चरित्र का निर्माण करना उसमें नवीन आशा, अभिलाषाएँ उत्पन्न करना, उसे आगे बढ़ाना, उसके हृदय में निराशा, अन्ध भाग्यवाद, पस्ती, पलायन, दूर कर

आज दरबारी साहित्य नहीं चाहिए जो राजाओं का मनरंजन करता था और सामान्य जनता की उपेक्षा करता था, वह सब कसौटियाँ जैसे शृंगार ही रसराज है अतः वही काव्य है, भ्रामक हैं आज ईश्वर-भक्ति प्रसारक साहित्य नहीं चाहिये क्योंकि वह 'मानव' की कार्य प्रणाली की अनियंत्रित सत्ता से संचालित होने के झूठे 'सत्य' को पुष्ट करता है, आज व्यक्तिगत राग-विराग अश्रु-हास को प्रतिबिम्बित करने वाला साहित्य नहीं चाहिये क्योंकि आज कोटि कोटि भूखों नंगों के आँसुओं को वाणी देनी है और आज ऐसा साहित्य नहीं चाहिए जो जाति-धर्म, देश, सम्प्रदाय की परिधि में व्यक्ति को बाँध कर विश्व-मैत्री पर प्रहार करता है,

आज सारे संसार की जनता को स्वार्थी-वर्ग के विरुद्ध संगठित होना है, साहित्य को इसमें सहयोग देना होगा क्योंकि उसमें मानव के भाव-उद्दीपन की शक्ति है, वह जन-मन का सच्चा शासक होता है, वह वाह्य उपदेश न देकर अन्तर्मन को परिवर्तित करता है, वह युग की चेतना को मोड़ सकता है अतः साहित्यकार को स्पष्ट समझना है कि वह प्रतिक्रियावादी पूँजीवाद का साथ देगा या असंख्य शोषितों का जो युग-युग से पीड़ित रहे हैं आज उनमें मानवीय चेतना जागृत करनी है उन्हें 'दास' के स्तर से उठा कर 'व्यक्ति' के स्तर पर लाना है, उन्हें अपना विधाता स्वयं बनाना है। उन्हें

( १ ) शोषितों के असंतोष को तीव्र कर पूँजीपतियों के विरुद्ध खड़ा करना है।

( २ ) इसके लिए पूँजीवाद के अन्तर्विरोधों उसकी असामाजिक कार्यवाही की दुर्बलताओं को सामने लाना है।

( ३ ) ईश्वर, धर्म-रूढ़ि, आदि सामन्त युगीन आदर्शों के विरुद्ध यथार्थवादी विचारधारा का प्रसार करना है।

( ४ ) वर्गहीन समाज की उच्च व पूर्ण संस्कृति व व्यवस्था का स्वर्णिम चित्र सम्मुख रखना है उसके प्रति मिथ्या आशंकाओं को निर्मूल कर जनता के विश्वास को उसके प्रति दृढ़ करना है।

( ५ ) भूमि-पतियों, धर्म के ठेकेदारों-पुजारी-पादरियों मुल्लाओं, सामन्तवाद के दलालों तथा जनता को गुमराह करने वालों के प्रति जनता के श्रद्धामूलक दृष्टिकोण को समाप्त कर जनवादी व्यवस्था के प्रति उसे वफादार बनाना है।

( ६ ) वर्ग-संघर्ष की चेतना को जगा कर सामन्तवादी पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करने के लिए जनता को क्रान्ति की आवश्यकता समझा कर, उसके लिए सर्वस्व-त्याग की भावना को दृढ़ करना है।

( ७ ) सम्पूर्ण प्रगतिशील संस्थाओं, व्यक्तियों तथा विचारधाराओं को सहयोग देकर जनवाद की प्रतिष्ठा को बढ़ाना है।

(८) मानव की स्वाभाविक वृत्तियों instincts पर अब तक जो अनावश्यक दबाव था उसे समाप्त कर उन्हें स्वाभाविक रूप से प्रकट करना है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें असामाजिकता के पथ पर डालकर मानव को प्रवृत्तियों का दास बनाना है।

(९) वस्तु को उसके यथार्थ रूप में देखकर उसका यथार्थ चित्रण करना है, जगत के प्रति रोमांटिक दृष्टिकोण असामाजिक है।

प्रगतिवादी साहित्य मुख्यतः यही तत्व हैं इनको ध्यान में रख कर हम साहित्य को प्रतिगामी या प्रगतिशील ठहरा सकते हैं। किन्तु आज प्रगतिशील साहित्य क्या है यह कहना अत्यन्त कठिन और खतरनाक भी हो गया है। कुछ आचार्यों ने भी फ्रायडियन यथार्थवाद और प्रगतिशील यथार्थवाद को मिलाकर बड़ा भ्रम फैलाया है। हम 'प्रगतिवाद' के तत्व सम्मुख ला चुके हैं अब हम प्रगतिशील कहलाने वाली साहित्यिकधारा को 'फ्रायडियनधारा' से अलग करके तब उसका रूप हिन्दी में क्या है, यह स्पष्ट करेंगे।

## फ्रायडियन यथार्थवाद या अतियौनवाद

यथार्थवाद के नाम पर दो धारायें चल रही हैं "एक है अति यौनवाद जो नग्न-चित्रण को भी यथार्थ के नाम पर प्रस्तुत करता है। दूसरी ओर है साम्यवादी यथार्थवाद"*। इसी में यौन-समस्याओं का नग्न चित्रण रहता है। यौनवाद फ्रायड के अन्तश्चेतनावाद पर आधारित हैं। जिसके अनुसार कलायें अवचेतन की विस्फोट मात्र हैं। मनुष्य बाह्य दृष्टि से अत्यन्त सभ्य और सुसंस्कृत दिखाई पड़ता है, किन्तु वस्तुतः वह प्रवृत्तियों से ऊपर उठ ही नहीं सकता और उन प्रवृत्तियों में केवल 'काम' की प्रवृत्ति मुख्य है अतः 'काम वासना' मनुष्य की सभ्यता के नीचे कैसे २ जघण्य दृश्य

---

* डा० रांगेयराघव—साहित्य में यथार्थवाद-लेख से आलोचना अंक ३।

उपस्थित करती है इसे दिखाना ही यौनवाद का उद्देश्य है। व्यक्ति का वाह्य व्यक्तित्व इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य ही ठहरता है, व्यक्तिगत उलझनों की वृद्धि होती है इस धारा में (dream-work wish fulfillment+ yantacy स्वप्न, हवाई इच्छाओं आदि की प्रधानता रहती है। यहाँ कला यथार्थ से वचने का प्रयत्न हो जाती पिकासो, मातिस, हेनरीमूर के चित्र तथा ज्वायस के अन्तिम उपन्यास, एजरापाउण्ड तथा ई० ई० कमिग्ज का साहित्य इसी यथार्थवाद के अन्तर्गत रखा जाता है। डी० एच-लारेंस भी फ्रायड से अत्यधिक प्रभावित है। अति यथार्थवाद (सुररियलिज्म) नामक नवीन कला सिद्धान्त फ्राइडवाद का ही नवीन संस्करण है। इस पर फ्रायड से भी अधिक 'युंग' का प्रभाव अधिक है। अति यथार्थवाद के आचार्य हैं हर्वर्ट 'रीड'। चेतन मन को महत्व न देकर अवचेतन मन को ही 'कला' का केन्द्र वना देना स्वयं यथार्थ के विरुद्ध है। यह ठीक है कि 'काम वासना' जीवन की एक मूल भावना है परन्तु 'वही सव कुछ है' यह यथार्थ नहीं अतः कला को दिवा-स्वप्न वना देना, या मन की उलझनों को वढ़ाकर, उनसे छूटने का पंथ न निकालना वैयक्तिक अहम् को अनुचित महत्त्व देना है। इस 'यथार्थ वाद' को कुछ आलोचक 'साम्यवादी यथार्थवाद' से मिला देते हैं यह चित्य है।

यौनवादी यथार्थवाद के लेखक हैं श्री अज्ञेय (शेखर एक जीवनी) इलाचन्द्र जोशी (सन्यासी आदि) तथा भगवती शरण वाजपेयी आदि। डा० रांगेयराघव का मत इस सम्वन्ध में पठनीय है—

"यौनवाद के समर्थक कहते हैं कि क्या हमारे समाज में यौन समस्यायें नहीं हैं उनके लिये उत्तर है 'हैं' परन्तु नग्न चित्रण यदि रस लेकर भावनाओं को विकृत करने के लिये हैं तो वह हमें शरीर की उन परिधियों से घेर लेता है जो समाज की सामाजिकता

+ अमृतराय नयी समीक्षा।

के स्थान पर व्यक्तिगत उलझनों में डालता है, यह व्यक्तिगत उलझनें पथ को प्रशस्त नहीं करतीं—भाग्यवाद को स्थान देती हैं। इस समाज में दिगम्बर नहीं रहते। समाज ने हमारे लिये अथवा यों कहें, हमने समाज में रहने के लिये कुछ नियम बनाये हैं, उन्हें हमको देखना है, उनकी जाँच करनी है, यौन समस्यायें भी उन्हीं विषयों के अन्तर्गत हैं, समाज केवल यौन समस्याओं का ही भंडार नहीं है, यौन समस्याओं का उतना ही रूप श्रेयष्कर है (सामाजिक यथार्थवाद में यौन समस्या का अन्य समस्याओं का एक भाग मान कर ही विचार किया जाता है) जो अपने सापेक्ष रूप में उचित और स्वस्थ है"* काँट ने 'सत्य' को निरपेक्ष माना था और उसके जानने के सम्बन्ध में मनुष्य की बुद्धि को असमर्थ ठहराया था, शापेन हॉवर के आदर्शवाद ने भी इसी पर बल दिया, हमारे यहाँ भी 'नेति नेति' वाद कभी चला था। फ्रायडियन आचार्यों ने प्रतिपादित किया कि पोध वृत्ति को उद्बुद्ध कर जो कुछ भी हम सोचते हैं वह सब वस्तुतः मनुष्य के अवचेतन (unconscious mind) में पड़ी इच्छाओं की ही पूर्ति करता है अतः जिसे हम कला या साहित्य कहते हैं, वह सृजन नहीं है उसमें अवचेतन मन की दमित इच्छाओं का ही व्यक्तीकरण हो जाता है यथार्थ जगत में जो वस्तु हमें अप्राप्य है, उसकी पूर्ति स्वप्नों में होती है और 'कला' भी एक ऐसा ही स्वप्न है। "फ्रायड ने मूल इच्छा शक्ति को 'लिबिडो' नाम देकर इस धारणा की पुष्टि की है कि मनुष्य की चेतना के भिन्न भिन्न रूप वास्तव में कामवासना के ही मुँदे ढँके रूप हैं।" इस कामवासना के आगे बुद्धि बार-बार परास्त होती है। इस विचारधारा के परिणाम स्वरूप हमें जो साहित्य मिला उसमें वैयक्तिक उलझनों से भरे चरित्र मिलते हैं जो अपनी काम वासना के पाश से मुक्त नहीं हो पाते 'शेखर' एक ऐसा ही पात्र है यदि मनुष्य की वासनात्मक उलझनों का चिट्ठा देना ही यथार्थवाद

---

* साहित्य में यथार्थवाद।

है तो वह प्रगति का शत्रु है क्योंकि इसको पढ़कर 'व्यक्ति' की गरिमा केवल काम-क्रीड़ाओं तक ही परिसीमित रह जाती है। 'व्यक्ति' का यथार्थ इसके ऊपर है। समाज का यथार्थ वासना के कर्दम में फड़फड़ाने वाले नर-कर्कटकों के चरित्र-चित्रण में ही नहीं, 'व्यक्ति' के सम्मुख मुख्य समस्या है—भूख, बेकारी, शोषण व विषमता की, उनमें यौन समस्या भी एक है किन्तु सब वही है यह कहना 'व्यक्ति' के प्रति अन्याय है।

अवैज्ञानिक फ्रायडियन दृष्टिकोण को किंचित विस्तार से समझ लेने पर यौनवादी साहित्य को समझने में अधिक सुविधा होगी।

चेतन मस्तिक की अपेक्षा अवचेतन को अधिक महत्त्व देने की बात हम कह चुके हैं। फ्रायड प्रवृत्ति मूलक शक्ति का नाम 'लिविडो' देता है (Libido, the fund of instinctive energy) यही 'लिविडो' मनुष्य के स्वतंत्र कार्यों का स्रोत है। किंतु समाज इस पर अँकुश रखता है अतः मनुष्य की इच्छाएँ चित्रित होकर 'अवचेतन मन' में पड़ जाती है जहाँ से वह 'स्वप्नों की सृष्टि करती है इस प्रकार फ्रायडवाद का मूल सिद्धान्त मनुष्य के कार्यों पर अविचेतन की प्रेरणा स्वीकृत करता है (The human behaviour is conditioned by man's in born impulses)❀

समाज ऐसा हो जिसमें मनुष्य की इच्छायें दमित न हों काम वासना की पूर्ति में बाधा न पड़े (ऐसा समाज केवल पशुओं का समाज ही हो सकता है) रूसो ने "Natural man" प्राकृत-व्यक्ति की कल्पना पर जोर दिया था कि किस प्रकार सभ्यता व समाज के द्वारा व्यक्ति बंधन में पड़ गया है, 'फ्रायड' इस बंधन को अस्वीकार करता है और हमें काम वासना की पूर्ति के लिये पशुता के युग की ओर ले जाता है। स्वतंत्रता का यह रूप श्रेयष्कर न

---

❀ By salamat ullah

होगा। ऐंजिल ने कहा था—Freedom does not consist in the dream of independence of natural laws, but in the knowledge of these laws and in the possibility this gives of systematically making them work towards definite ends. This holds good in relation both the laws of external nature and to those which govern the bodily and mental existence of men themselves.*

फ्रायड के अनुसार सारा जीवन 'काम वासना' की परिधि में फिर जाता है। किंतु फ्रायड ने 'सैक्स' की बड़ी व्यापक परिभाषा की है अँगूठा चूसना, काटना, तरलपदार्थ का पीना और मल त्याग तक में वह 'सैक्स' को खोजता है।

उसके अनुसार दो अवस्थायें हैं—(१) जन्म लेने से पाँच वर्ष की अवस्था तक, (२) ६ से १२ वर्ष की अवस्था तक, तृतीय अवस्था (१३ से १८ तक) सैक्स की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है किन्तु प्रथम पाँच वर्ष की सैक्स भावना ही आगे विकसित होती है अतः यही प्रथम अवस्था जीवन को निश्चित करने में मुख्य कार्य करती है। इस अवस्था में oedipus complex तथा castration complex कार्य करते हैं जो मनुष्य की मानसिक व शारीरिक शक्तियों के विकास के उत्तरदायी हैं। फ्रायड कहता है—

The son when quite a little child, already begins to develop a peculiar tenderness towards his mother, whom he looks upon as his own property, regarding his father in the light of a rival who disputes this sole possession of his, similarly the little daughter sees in her mother some one who disturbs her tender

---

* Angel's, Frederick-Anti-Dahring.

relation to her father and occupies a place which she feels she herself could very well fill".×

तात्पर्य यह कि पुत्र एक विशेष कोमलता के साथ माता को अपनी सम्पत्ति समझने लगता है और पिता को अपना प्रतिद्वन्दी समझता है तथा पुत्री माता से प्रतिद्वन्द्विता रखकर पिता को अधिक प्यारी होती है, (विरुद्ध लिंग धारी जीवों का आकर्षण पुत्री व माता को भी प्रतिद्वन्द्वी बना देगा यह अबतक किसे पता था? विज्ञान तुम धन्य हो।)

चूँकि पुत्री एक अनिश्चित काल के लिये 'आडीपस' अवस्था में रहती है अतः उसका हीन होना स्वाभाविक है (इस दृष्टिकोण से मनुष्य व स्त्री की समता की चर्चा करने वाले मूर्ख हैं)।

यौन भावना को इतना अधिक महत्त्व 'फ्रायड' ने क्यों दिया इसका भी कारण है। १६ वीं शती में योरोप में पूँजीवाद ने वहां के समाज को आक्रान्त करना प्रारम्भ कर दिया था। इस व्यवस्था के फलस्वरूप भूख-बेकारी-विषमता का बढ़ना स्वाभाविक था, यौन-सम्बन्धों में भी अस्वाभाविक जटिलता बढ़ गई थी।

फ्रायड ने चिकित्सक के रूप में कार्य किया था, उसके प्रयोग व एक वर्ग विशेष की भावनाओं तथा यौन-सम्बन्धों पर आधारित थे। इस वर्ग में यौन भावना का अत्यधिक दमन हुआ था अतः इस बूर्ज्वा वर्ग पर प्रयोग कर 'फ्रायड' ने अपना विज्ञान प्रस्तुत किया, फ्रायड भूल गया कि 'दमन' का कारण पूँजीवादी व्यवस्था थी, मनुष्य की मूलप्रवृत्ति का इससे उतना सम्बन्ध न था।

"He ignored the fact that the illness caused by tensions, inhabitions and repressions relating to sex were the fruits of the specific social system and not the charateristics of mankind"§

---

× Frevd S—A General Introduction to Psycho analysis

§ वही।

बुराइयों को दूर करने के लिये शिक्षा-दान में विश्वास करता था।*

फ्रायड के अनुसार सामाजिक आंदोलन मनुष्य के 'भय' तथा सुरक्षा के अभाव को व्यक्त करते हैं। वह इनके पीछे सामाजिक दुर्व्यवस्था को नहीं देखता तब उसके अनुसार चलने वाले व्यक्तिवादी व्याख्या कार सामाजिक यथार्थवादी कैसे हो सकते हैं? यौनिवादी फ्रायड समाजवाद के सम्बन्ध में कहा करता था।

In exactly the same way, as religion, Bolshevism is obliged to compensate its believers for the suffering and deprivations of the present life by promising them a better life hereafter in which there will be no unsatisfied needs"❋

तात्पर्य यह कि 'समाजवाद' भी धार्मिकों के समान वर्तमान समय के कष्टों को दूर करके एक श्रेष्ठ जीवन का वादा करता है।

तो फ्रायड तो धर्म व समाजवाद दोनों के विरुद्ध है तब उसका अनुगामी 'साहित्य' वैज्ञानिक यथार्थवाद कैसे होगा? इस प्रकार यौनिवादी-साहित्य जिसे सामान्यता 'यथार्थ वाद' कहा जाता है, व्यक्तिगत उलझनों की घोषणा देता है, व्यक्ति के असाधारण कार्य को अवचेतन की प्रतिक्रिया निर्धारित करता है। सारा सृजन, अवचेतन का ही लावा मात्र है यह निश्चित करता है अतः स्पष्ट है कि यह स्वयं अवैज्ञानिक 'विज्ञान' है, कामवासना को एक मुख्य भावना मानते हुये भी हम "यौनिवर्जनाओं के पुंज हैं" यह स्वीकार करना पशुता की विजय स्वीकार करना है। क्या तुलसी, वाल्मीक, का काव्य, अजन्ता के चित्र, अवचेन के विस्फोट मात्र हैं?

* "To limit and do away with this demoralization a chair of curative pedagogy should be established" एडलर

❋ Frond S New Introductory Lectures quoted by by salamut ullah;

के नाम पर 'व्यक्ति' के सारे व्यक्तित्व को 'काम-वासना' में बंदकर देता है, यह यथार्थ नहीं यथार्थ को भुलाने की छलना है।

## यथार्थवाद विकास के पथ पर

रोमाँटिक काव्य की चरम परिणिति फ्रांस के 'कलावाद' के रूप में हुई जिसमें 'प्रतीकवाद, चित्र कल्पनावाद imagism संवेदनावाद impressionism का समष्टि रूप था। अन्तिम मत संवेदनावाद के प्रवर्तक फ्लिंट महोदय ( Flint ) का है। इन वादों में वर्ण्य वस्तु का गौरव कुछ भी न रहा केवल शब्द-शिल्प, मूर्त विधान आदि ही प्रमुख रहा, व्यक्तिगत राग-विराग को ही वाणी मिलने के कारण यह जनता से दूर होता चला गया। अतः इस रीतिवाद' की प्रति क्रिया हुई और फ्राँस में यथार्थवादी साहित्य की रचना की ओर प्रवृत्ति हुई "कला का उद्देश्य कला है" सिद्धांत को को स्वीकृति न मिली अतः एडगर एलिन पो, मलारमे, ह्यूमे, क्रोचे, बोदलेयर, वर्लेन, रोजेटी, आस्कर वाइल्ड, आदि आदर्श-वादियों, कल्पना व कलावादियों के समानान्तर मोपाँसा, फ्लावेयर, जोला आदि प्राकृत-वादियों ने यथार्थवादी साहित्य दिया। फ्राँस की राज्यनीति रूसो, वाल्टेयर, गाडविन की लेखनी से हुई थी किंतु लेखकों के आदर्शवाद के परिणामस्वरूप व्यक्तिवाद का जन्म हुआ जिसके प्रतिनिधि हुये थे शेले-वायरन आदि रोमाँटिक कवि। इससे आदर्श राज्य utopia की स्थापना के प्रति भावुकता का अपव्यय होता रहा। वैज्ञानिक यथार्थवादी दर्शन के अभाव में साहित्यकार हवाई महल तैयार करता रहा।

'जोला व मोपाँसा' के प्राकृतवाद ने समाज से अलग अपनी सत्ता की घोषणा करने वाले लेखकों के विरुद्ध—उनके रोमाँटिक दृष्टिकोण के विरुद्ध यथार्थवादी परम्परा स्थापित की किंतु इन्होंने बूर्ज्. वा वर्ग की पोल खोलने का ही कार्य अधिक किया, पूँजीवाद

कर दिया था । नवीन शिक्षा के सम्पर्क से भारतीय सुप्त चेतना नेत्र उन्मीलन कर रही थी, 'कृष्ण' के सखा और 'राधा' के गुलाम तथा अभिमानियों के 'नकद दमाद' बाबू हरिश्चन्द्र ने सर्व प्रथम 'प्रेम योगिनी' में यथार्थ बात कही—'देखो तुम्हारी कासी।' कवि यथार्थ की अब तक अवहेलना करता रहा था, राधा कन्हाई के सुमरन का बहाना अब अधिक नहीं चल सकता था क्योंकि मध्य-युगीन रूढ़ियों, शताब्दियों के अज्ञान आदि से जर्जरित अधीन भारत जब विदेशियों द्वारा चूसा जाने लगा तब 'यथार्थ' प्रकट हुआ—

अँगरेज राज सुख साज महासुख भारी।
किन्तु
"पै धन विदेश चलि जात यहै दुःखभारी॥"
तथा
पै दुख अति भारी इक यह तो बढ़त दीनता।
भारत में सम्पति की दिन दिन होत छीनता॥

'प्रेमघन'

तथा

हे धनियो क्या दीन जनों की नहिं सुनते हो हाहाकार।
जिसका मरे पड़ोसी भूखा, उसके जीवन को धिक्कार॥

'बालमुकुन्द गुप्त'

यह भारतेन्दुयुग का यथार्थवाद था। भारतेन्दुयुग की चेतना ने प्रगति के इस पथ पर द्रुतगति से पैर बढ़ाया (१) सरल भाषा में जीवन के सभी क्षेत्रों को स्पर्श करने वाले निबन्ध लिखे गये दरबारी भाषा का बहिष्कार किया गया।

(२) रीतिकालीन नायिकाभेद के स्थान पर जनवादी-साहित्य की रचना हुई, संकीर्ण संस्कारों के प्रति द्रोह, सुधारों को प्रोत्साहन मिला, रंगमंच की स्थापना हुई।

(३) खड़ीबोली का रूप स्थिर किया गया, साम्राज्यवाद क

विरोध किया गया इसका आधार खड़ीबोली बनी जब कि मनों की प्यास बुझाने के लिए शृंगारात्मक समस्या पूर्तियां ब्रजभाषा में होती रहीं।

(४) साहित्य के 'वर्ण्य' अब केवल 'महान्' नहीं रहे यथा राजा अवतार आदि बल्कि 'लघुता' की ओर प्रवृत्ति बढ़ी। कवि सामयिक विषयों पर कलम चलाने लगे, जिससे यथार्थवादी प्रवृत्ति आगे चल कर पुष्ट होती गई।

परन्तु यह प्रगति अभी तथा कथित प्रगतिवादी साहित्य की भूमिका मात्र ही थी। द्विवेदी युग में भी राजनैतिक चेतना राष्ट्रीयता की परिधि में घूमती रही, सामाजिक चेतना आर्य समाज के वेद मंत्रों व वाद विवाद में भ्रमण करती रही।

राजनैतिक जीवन में निराशा, रोमांटिक काव्य के अध्ययन, रवीन्द्र की ख्याति, सामाजिक अनुशासन आदि ने रहस्य काव्य की नींव डालदी, कवि सामाजिक चेतना को 'भारतभारती' में ही बन्द कर स्वप्निल पंखों में बैठकर आकाश में उड़ने लगा उसने रीतिकालीन अश्लीलता तथा द्विवेदी युग की सुधारवादिता का विरोध तो किया पर वह व्यक्तिगत वेदना की विवृत्ति के भँवर में डूबने उतराने लगा, काव्य मात्र अलंकृत संगीत बन गया। सामंती युग की जड़ संकीर्णता तो पीछे छूट गई परन्तु व्यक्तिवाद के कुहासे में जन-वादी साहित्य की सर्जना न हो पाई। रूस की राज्यक्रांति तथा साम्यवादी उत्साह का पवमान भारत से आकर टकराने लगा और वैज्ञानिक भौतिकवाद की किरणें भी भारतीय क्षितिज पर पड़ने लगीं। छायावादियों ने विश्व-करुणा तथा मानवतावादी भावनाओं का प्रसार किया था। 'इलाहाबाद के पथ पर मजदूरिनी' तथा 'पछताते हुये भिखारी' को, दुःखिनी विधवा को कवि करुणा वश ही देख सका था किन्तु अब सजग होकर पलकों से छायावादी ओस को झाड़ कर कवियों ने जनता को देखना आरम्भ किया। कामायिनी कार ने 'कंकाल' दिया, 'तितली' दी, जो यथार्थवादी

साहित्य की प्रकाशस्तम्भ ही कही जाती है। प्रसाद व महादे पद्य में 'रहस्य' को बांधा और 'गद्य' में यथार्थ को, यह भी विचित्र संयोग रहा।

उधर प्रेमचन्द ने रूसी-कथा साहित्य के आधार पर जनता समष्टि रूप में—यथार्थ चित्रण देना प्रारम्भ किया। उनके सा की केन्द्रस्थ भावना 'गोदान' के पहले तक आदर्शवादी रही प चित्रणों की दृष्टि से चिर विपण्ण, शोषितग्राम-जीवन को व मिलगई। 'सेवासदन' से लेकर प्रेमचन्द की दौड़ 'गोदान' आकर रुकी, 'काया कल्प' में सामंत वर्ग का, 'रंगभूमि' में कि का 'कफन' में निम्न वर्ग का तथा 'गोदान' में जमींदार व कि मजदूरों का बहुमुखी चित्रण कर प्रेमचन्द ने वर्ग-चेतना को ज प्रेमचन्द गांधी जी से प्रभावित युग के लेखक थे किन्तु उनके 'मार्क्स' बोलता था उसी के आधार पर वे कहते रहे परन्तु जी सामने थे अतः उनके चरणों पर पुष्प चढ़ाना स्यात् उनके आवश्यक हो उठता था परन्तु शालीनता का कहिये या सं का यह मोह 'गोदान' में छूट गया अतः 'यथार्थवाद' का वि आदर्श 'गोदान' ने उपस्थित किया। 'जर्मनी में टॉमस, फ्रांस अरानों, अँगरेजी में प्रीस्टले, तथा रूस में शोलोखोव ने' भी प्रे चन्द के समान बड़े बड़े उपन्यासों में ही सामाजिक यथार्थ दिये हैं।"

प्रेमचन्द ही ने प्रगतिशील लेखक संघ की प्रथम अध्यक्षता की कला व साहित्य के सम्बन्ध में मौलिक विचार व्यक्त किये। प्रेमच से उनके बाद का साहित्य किसी न किसी प्रकार प्र वित रहा। 'प्रसाद' जी ने भी प्रेमचन्द के कहने पर ही उपन्यास लिखे थे।

१९३६ ई० के बाद प्रगतिशील आन्दोलन शक्ति प्राप्त कर गया। प्रेमचन्द का स्वर्गवास भी इसी वर्ष हुआ था, प्रेमचन्द के दूसरा आकर्षक व्यक्तित्व रहा 'निराला' का। 'निराला' ने

१९३३ में ही 'चतुरी चमार' नामक कहानी लिखी थी ( सुधा ) उनकी 'पगली' कहानी, प्रेमचन्द की 'कफन' की टक्कर की है। सुमित्रानन्दन पन्त ने 'रूपाभ' पत्रिका निकाल कर प्रगतिवाद की आवश्यकता पर जोर दिया था, यह प्रगतिवाद के प्रचार का युग था। प्रेमचन्दजी द्वारा सम्पादित 'हंस' ने प्रगतिवाद का नेतृत्व ग्रहण किया। १९४० ई० के बाद प्रगतिवाद की प्रगति तीव्र होती गई देश की समस्याओं का चक्र भी तेजी से घूमता गया, साहित्य में नवीन प्रतिभाओं का आगमन हुआ। निराला जी ने 'चोटी की पकड़, 'काले कार नामे, 'बिल्लेसुर बकरिहा, लिखे। बंगाल में अकाल पड़ने पर छायावादी कवियों में अग्रगण्य महादेवी ने भी उसमें सक्रिय सहयोग दिया बिहार के 'दिनकर, आरसीप्रसाद तथा शिव पूजन सहाय आदि साहित्यकों ने जनता को नव चेतना दी। 'हिमालय, पत्र 'पूर्व' प्रांतों में सक्रिय सहयोग देता रहा।

काव्य में भी अभूतपूर्व क्रान्ति होगई, भाषा, भाव, शैली में आमूल परिवर्तन हुआ, विचारधारा मार्क्सवाद का प्रभाव लेकर आई। पंत ने 'युगान्त' कर दिया और 'युग की वाणी' देकर 'ग्राम्या' के सौंदर्य में 'पल्लव' व 'वीणा' के स्वरनाद को भूल कर वे यह कहने लगे—

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिये तुम्हें क्या अलंकार॥

'मार्क्सवाद' से प्रभावित कवि-विहग आकाश से लौट पड़ा—

ताक रहे हो गगन ? मृत्यु नीलिमा गहन गगन ?
निःस्पन्द शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भू को, स्वर्गिक भू को।
मानव-पुण्य प्रसू को॥

रूढ़ि बद्ध समाज तरु-स्थित परम्परावादी जीर्ण पल्लव के लिये कहा गया—

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र"

साहित्य की प्रकाशस्तम्भ ही कही जाती है। प्रसाद व महादेवी ने पद्य में 'रहस्य' को बांधा और 'गद्य' में यथार्थ को, यह भी एक विचित्र संयोग रहा।

उधर प्रेमचन्द ने रूसी-कथा साहित्य के आधार पर जनता का समष्टि रूप में—यथार्थ चित्रण देना प्रारम्भ किया। उनके साहित्य की केन्द्रस्थ भावना 'गोदान' के पहले तक आदर्शवादी रही परन्तु चित्रणों की दृष्टि से चिर विपण्ण, शोषितग्राम-जीवन को वाणी मिलगई। 'सेवासदन' से लेकर प्रेमचन्द की दौड़ 'गोदान' तक आकर रुकी, 'काया कल्प' में सामंत वर्ग का, 'रंगभूमि' में किसानों का 'कफन' में निम्न वर्ग का तथा 'गोदान' में जमींदार व किसान मजदूरों का बहुमुखी चित्रण कर प्रेमचन्द ने वर्ग-चेतना को जगाया प्रेमचन्द गांधी जी से प्रभावित युग के लेखक थे किन्तु उनके पीछे 'मार्क्स' बोलता था उसी के आधार पर वे कहते रहे परन्तु गांधी जी सामने थे अतः उनके चरणों पर पुष्प चढ़ाना स्यात् उनके लिये आवश्यक हो उठता था परन्तु शालीनता का कहिये या संस्कारों का यह मोह 'गोदान' में छूट गया अतः 'यथार्थवाद' का विशुद्ध आदर्श 'गोदान' ने उपस्थित किया। 'जर्मनी में टॉमस, फ्रांस में अरानों, अँगरेजी में प्रीस्टले, तथा रूस में शोलोखोव ने' भी प्रेमचन्द के समान बड़े बड़े उपन्यासों में ही सामाजिक यथार्थ चित्र दिये हैं।"

प्रेमचन्द ही ने प्रगतिशील लेखक संघ की प्रथम अध्यक्षता की और कला व साहित्य के सम्बन्ध में मौलिक विचार व्यक्त किये। प्रेमचन्द से उनके बाद का साहित्य किसी न किसी प्रकार प्रभावित रहा। 'प्रसाद' जी ने भी प्रेमचन्द के कहने पर ही अपने उपन्यास लिखे थे।

१९३६ ई० के बाद प्रगतिशील आन्दोलन शक्ति प्राप्त करता गया। प्रेमचन्द का स्वर्गवास भी इसी वर्ष हुआ था, प्रेमचन्द के बाद दूसरा आकर्षक व्यक्तित्व रहा 'निराला' का। 'निराला' ने सन्

१६३३ में ही 'चतुरी चमार' नामक कहानी लिखी थी (सुधा) उनकी 'पगली' कहानी, प्रेमचन्द की 'कफन' की टक्कर की है। सुमित्रानन्दन पन्त ने 'रूपाभ' पत्रिका निकाल कर प्रगतिवाद की आवश्यकता पर जोर दिया था, यह प्रगतिवाद के प्रचार का युग था। प्रेमचन्दजी द्वारा सम्पादित 'हंस'ने प्रगतिवाद का नेतृत्व ग्रहण किया। १६५० ई० के बाद प्रगतिवाद की प्रगति तीव्र होती गई देश की समस्याओं का चक्र भी तेजी से घूमता गया, साहित्य में नवीन प्रतिभाओं का आगमन हुआ। निराला जी ने 'चोटी की पकड़, 'काले कार नामे, 'बिल्लेसुर बकरिहा, लिखे। बंगाल में अकाल पड़ने पर छायावादी कवियों में अग्रगण्य महादेवी ने भी उसमें सक्रिय सहयोग दिया बिहार के 'दिनकर, आरसीप्रसाद तथा शिव पूजन सहाय आदि साहित्यकों ने जनता को नव चेतना दी। 'हिमालय, पत्र 'पूर्व' प्रांतों में सक्रिय सहयोग देता रहा।

काव्य में भी अभूतपूर्व क्रान्ति होगई, भाषा, भाव, शैली में आमूल परिवर्तन हुआ, विचारधारा मार्क्सवाद का प्रभाव लेकर आई। पंत ने 'युगान्त' कर दिया और 'युग की वाणी' देकर 'ग्राम्या' के सौंदर्य में 'पल्लव' व 'वीणा' के स्वरनाद को भूल कर वे यह कहने लगे—

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिये तुम्हें क्या अलंकार॥

'मार्क्सवाद' से प्रभावित कवि-विहग आकाश से लौट पड़ा—

ताक रहे हो गगन ? मृत्यु नीलिमा गहन गगन ?
निःस्पन्द शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भू को, स्वर्गिक भू को।
मानव-पुण्य प्रसू को॥

रूढ़ि बद्ध समाज-तरु-स्थित परम्परावादी जीर्ण पल्लव के लिये कहा गया—

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र"

ग्राम पर लेखनी चली—

यहाँ खर्व नर वानर रहते युग युग से अभिशापित।
अन्न वस्त्र पीड़ित असभ्य, निर्बुद्धि, पंक में पालित॥
यह तो मानव-लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित।
यहाँ अकेला मानव ही रे, चिर विपण्ण जीवन्मृत॥

'दिनकर' ने विषमता का यथार्थ चित्रण किया—

श्वानों को मिलता दूध दही, बच्चे भूखे तड़पाते हैं।
माँ की हड्डी से ठिठुर चिपक जाड़ों की रात बिताते हैं॥
युवती की लज्जा वसन बेच जल व्याज चुकाये जाते हैं।
मिलमालिक तेल फुलेलों पर, पानी सा द्रव्य बहाते हैं॥

भाग्यवाद पर प्रहार हुआ—

एक व्यक्ति संचित करता है अर्थ कर्म के बल से।
और भोगता उसे दूसरा, अरे भाग्य के छल से॥

क्रान्ति का घोप सुनाई पड़ा—

उठ वीरों की भाव रंगिनी, दलितों के दल की चिन्गारी।
युग मर्दित यौवन की ज्वाला, जाग जागरी क्रांति कुमारी॥

'प्रवासी के गीत' के रचयिता नरेन्द्रशर्मा ने 'मिट्टी के फूल' की रचना की और 'रूढ़िवाद' के विरुद्ध स्वर साधना की—

यह मूर्तिमान जाग्रत मसान, अरमान और इच्छाओं का।
यह कारागार, भार भूका, जिसको जग कहता है समान॥
है जीने का अधिकार नहीं, हमको क़िस्मत की मर्जी पर।
जड़ रूढ़िवाद के शव को जो जीवित कहता है आह! आज॥

भगवतीचरण वर्मा ने बहुत पहले ही लिखा था—

चूँ चरर मरर, चूँ चर मर चर चल रही एक भैंसा गाड़ी॥

रूपकों, उपमाओं से लदी, कल्पनात्मक चित्रों से पूर्ण, ध्वनि व वक्रोक्ति मय समास शैली के स्थान पर सरल, सर्व साधारण के समझने योग्य कविता-कला का विकास हुआ। केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा—

मिट्टी, रूस, मजदूर, रोटी और झोंपड़ी हो गये। प्राचीन अन्ध-विश्वासों पर चोट पड़ी—

दिन भर अधरम करने वाले।
पर नारी को ठगने वाले॥
पर सम्पत्ति को हरने वाले।
भीषण हत्या करने वाले॥
धर्म लूटने के अधिकारी।
टोली की टोली में निकले।

(चित्रकूट के यात्री युग की गंगा)

विश्व के सारे मजदूरों को एक करने की भावना—

दुनियाँ के मजदूर भाइयो, सुन लो एक हमारी बात।
सिर्फ एकता में ही बसता, इस दुनिया के सुख का राज॥

किरण सौनरिक्सा

स्वस्थ राष्ट्रीयता:—

हिन्दी हम चालीस करोड़।
क्यों बैठे हैं साहस छोड़॥
यह आजादी का मैदान।
जीतेंगे मजदूर-किसान॥
एक यही है राह-सुगम।
सत्यं, शिवं, सुन्दरम्॥

डा० राम विलास शर्मा

यथार्थ चित्रण:—

रिक्त कमरे की उदासी बढ़ रही है,
दूर के आते स्वरों से।
पास की दीवाल पर के चित्र सारे।
शून्य द्वारों पर पड़े रंगीन पर्दे॥
थक रही है क्वार की सूनी दुपहरी।
श्वेत हल्के बादलों में सूर्य डूबा॥

नीम नीचे बालकों का स्वर मिला सा छा रहा है।
धूल पैरों से हवा में उड़ रही है॥
गिरजाकुमार माथुर

व्यंग्य:—

मृदुल नींद नीड़ की गोद में, और परों की सेज नरम।
बाहर झुलसी हवा बह रही, रह रहकर लू तेज नरम॥
बाहर अर्धनग्न पीड़ा, भीतर क्रीड़ा लबरेज़ हरम।
करुणा के आँगन में; नेता, दे थोड़ी सी भेज शरन॥
प्रभाकर माचवे,

इनके अतिरिक्त अंचल, नरेन्द्र शर्मा, शैलेन्द्र, सुमन, सुकुल, मतई काका, पढ़ीस, कमलेश आदि अनेक कवि हैं, स्थानाभाव से सबकी कविताओं से उदाहरण देना असम्भव है।

प्रगतिवादी कलाकारों ने कथा साहित्य में अच्छा कार्य किया है। यशपाल, अज्ञेय, राहुल, रांगेयराघव, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा, निराला, अमृतलाल नागर, देवेन्द्र सत्यार्थी, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि पर्याप्त सैद्धान्तिक विरोध होते हुये भी प्रगतिवादी लेखकों में गिन लिये जाते हैं।

समालोचकों में डा० रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचन्द गुप्त, अमृतराय आदि हैं। प्रगतिवादी आलोचकों का कार्य कलाओं के प्रति मार्क्स-वादी दृष्टिकोण को उपस्थित करना रहा, प्राचीन रस-ध्वनि के मापदण्ड से केवल काव्यादि का कलात्मक सौन्दर्य ही अभिव्यक्त हो सकता था अतः प्रगतिवादी आलोचकों को प्राचीन व नवीन साहित्य को परिस्थिति विशेष की उपज बतलाकर उस पर उनकी युग की चेतना का प्रभाव दिखाना प्रारम्भ किया गया। मार्क्सवाद के अनुसार इतिहास के संदर्भ में रख कर 'काव्य' की व्याख्या की जाने लगी। वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण उद्भूत विभिन्न विचार-धारायें, काव्य परम्परायें, जन्म लेती रहीं और उनसे

लेखक कहाँ तक प्रभावित रहा या उसने क्यों और कहाँ तक परिस्थितियों को बदला यह दिखाया गया।

साहित्य को सामाजिक भित्ति पर खड़ा करके देखने से आलोचना का वायवीकरण (eatherlaisation) समाप्त हुआ। व्याख्यायें वैज्ञानिक और यथार्थ दृष्टिकोण को लेकर चलीं, साथ ही विश्व-साहित्य की सम्पूर्ण साहित्यिक धाराओं का अवगाहन कर उनके उद्‌गम तथा वेगमय प्रवाह के कारण खोजे गये किस प्रकार विभिन्न युगों में बहता हुआ सामाजिक यथार्थ लेखक के माध्यम से प्रकट होता आया है, यह तथ्य सम्मुख लाया गया।

उधर प्राचीन शास्त्रीय विचारधारा जो आदर्शवादी 'मापदण्ड को लेकर चलती आ रही थी इस क्रांतिकारी विचारधारा को इतने शीघ्र आत्म सात नहीं कर सकती थी फलतः आज द्वन्द्व न्याय से प्रगतिवादी विचार-धारा तथा आदर्शवादी विचारधारा का संघर्ष चल रहा है, ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिवादी धारा की विजय निश्चित है क्योंकि 'आज' तथा 'कल' दोनों की 'यथार्थ' समस्याओं का हल वही प्रस्तुत कर सकती है, 'विश्व' की समस्त पीड़ित जनता का भाग्य उसी के साथ बँधा है और यह निश्चय है कि उसे अधिक धोके में नहीं रखा जा सकता। प्राचीन दार्शनिक 'पहुंच' का विश्लेषण सामाजिक यथार्थवाद की दृष्टि से होने लगा है और यह दिखाया गया है कि किस प्रकार वेदों से लेकर आज तक समाज ने भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न दर्शनों को जन्म दिया है। मनुष्य ने विश्वदेव, सविता या पूषा, सोम, मरुत के स्तोत्र पढ़े, 'उषा' देवी की आराधना की, 'हिरण्य गर्भ' की साधना में वह लीन हुआ, यज्ञों में उसने पशु-बलि देकर देखा, देवताओं के लिये भी सब कुछ किया, अवाङ्मनस् गोचर की प्राप्ति के लिये उसने एकांत-साधना की, 'शून्य' की खोज करते करते वह 'कापालिक' तक बन गया, हिरण्यगर्भ के उच्चारण से लेकर 'हिं', 'हुंग', की रट लगाता हुआ अष्ट सिद्धियों, नव निद्धियों की प्राप्ति में शवों

को शराब पिलाकर श्मशान की राख पीता रहा, उसने 'जगत' को मिथ्या समझ कर भी अपने को भुलाने का प्रयत्न किया, महारास की गोपी बनकर भी वह नाचा, 'मिट्टी' को छोड़कर उसने 'परियों' के लोक की भी सैर की परन्तु उसे क्या मिला ? एक मधुर विस्मृति मात्र ! किन्तु मनुष्य ने आज अनुभव किया, विश्व के समस्त पीड़ितों ने अपने शासकों का मंतव्य आज समझा, और वे आज अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को एकत्र करने के लिये कटिबद्ध हैं अतः आदर्शवाद की गति ( Process ) आज पीछे की ओर है, आगे की ओर नहीं और इसीलिये 'साहित्य' की यथार्थवादी व्याख्या नित्य नवीन शक्ति संयम कर आगे बढ़ रही है। जनवादी साहित्य की यह परम्परा गौरवमय होगी, वह जिस संस्कृति व व्यवस्था को जन्म देने जा रही है वह निश्चय ही मुट्ठी भर लोगों के विलास व स्वार्थों की साधना न होगी अपितु कोटि-कोटि जनता के हितों को लेकर बढ़ेगी और इसीलिये उसका भविष्य सुनिश्चित है।

आज युग की मेधा प्रगतिवाद के साथ है।

किन्तु हिन्दी साहित्य में 'प्रगतिवाद' की सशक्त परम्परा बन जाने पर भी स्वयं उसी के क्षेत्र में दिन प्रतिदिन भ्रांतियाँ बढ़ती जा रही हैं, सैद्धान्तिक विरोध तो ठीक है यदि वह 'सत्य' को समझने का पर्याय हो किन्तु जहाँ 'व्यक्तिगत' प्रभाव-वृद्धि के परिधान में 'सिद्धान्त' की हत्या हो, वहाँ वह असहनीय हो उठता है।

प्रगतिवादी विचारकों में दो प्रकार के आलोचक हैं

एक—वे जो मार्क्सवाद में विश्वास रखते हैं और उसी के दृष्टिकोण से रचनाओं की व्याख्या करते तथा सृजन करते हैं

दो—वे जो भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के कर्मठ सदस्य हैं और उसके आदेशों पर कार्य करते हैं।

कहना न होगा कि कम्यूनिस्ट पार्टी के बहुत से विद्वानों का भारतीय साहित्य सम्बन्धी ज्ञान अपूर्ण है। भारतीय संस्कृति की मनमानी व्याख्याओं* के लिये श्री डाँगे की पुस्तक देखी जा

चीन के सम्मुख यही प्रश्न था ? और है, तब हमें संक्षेप में यह बताने के पहले प्रगतिवादी दृष्टिकोण से साहित्य के मौलिक सिद्धान्तों को समझ लेना होगा और तभी प्रगतिवाद का अध्ययन पूर्ण हो सकेगा।

मार्क्सवादी दर्शन को समझते समय हमने कहा था कि भौतिकवादी के अनुसार चेतना सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित रहती है। Existence determines consciousness इसी दृष्टि से, बाह्य वातावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव टालस्टाय पर लादकर plekhanow ने उन्हें "Art ist Aristocrat" कहा था। लेनिन ने इसका घोर विरोध किया और "टालस्टाय को एक क्रांतिकारी कलाकार ठहराया। उनके अनुसार बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव कलाकार पर पड़ता है किंतु वह सीधी रेखाओं की तरह प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। सभी परिस्थितियों का अध्ययन कर हम कलाकार की कला के सम्बन्ध में कह सकते है कि वह प्रगतिशील थी या प्रतिक्रियावादी। लेनिन ने घोषित किया—He "Rendered with remarkable power the mood of the broad masses, oppressed by the existing regime, he described their situation expressed their spontaneous feeling of protest and indignation" अर्थात् टालस्टाय एक महान् कलाकार था उसने विशाल जनता की भावनाओं को उनकी दशा को, जो अपने समय के कठोर शासन से पीड़ित थी व्यक्त किया है"। क्या एक प्रतिक्रियावादी कलाकार विराट जनता की भावनाओं को प्रतिविम्बित कर सकता है ? यदि नहीं तो टालस्टाय Artist Aristocrat नहीं कहला सकते।

लेनिन का यह मत कितना उदार तथा व्यापक है इसी दृष्टि से हमें अपने साहित्य को देखना है। पहले दौर के प्रगतिवादियों ने विशेष 'हंस' में प्राचीन साहित्य को इसी प्रकार 'बुर्जुवा' और प्रतिक्रियावादी बताया था और प्रगतिवाद के विरोधी उन्हीं विचारों

सकती है (India from primitive communism to slavery) एकबार ऐसे ग्रंथों, व्याख्याओं, की पार्टी की मुहर लग जाने पर उसका समर्थन करना अनिवार्य हो जाता है । यही कारण है शुद्ध सामाजिक यथार्थवाद की दृष्टि से प्रगतिवादी भारतीय साहित्य का अनुशीलन अभी नहीं कर पाया और इसी कारण उसकी धारणायें परस्पर विपरीत, भ्रांति पूर्ण तथा असंगत होती हैं और इस दुर्वलता का लाभ उठाते हैं के प्रतिक्रियावादी जो किसी ऐसी भूल पर उचित दिशा निर्देश न कर अपनी अवैज्ञानिक धारणाओं का प्रचार करने लग जाते हैं और परिणाम यह होता है कि व्यर्थ ही पाठकों का मन शंकाओं से ग्रस्त हो जाता है ।

प्रगतिवाद तो एक वैज्ञानिक दर्शन को लेकर चलता है, भूलों से वह सीखता है, उनकी पुनरावृत्ति से वह अपना महत्त्व नहीं खोना चाहता ।

रूस में भी ऐसा अंतर्विरोध रहा है, 'टालस्टाय' को प्रतिक्रियावादी ठहराकर वहाँ के कुत्सित समाज शास्त्री (Vulgar Sociologists, यथार्थवादी दृष्टिकोण को अवैज्ञानिक बना रहे थे तब 'लेनिन' ने प्राचीन साहित्य के सम्बंध में अपने विचार प्रकट कर प्रति क्रियावादी विचारधारा का खण्डन किया था । आज जनता पूछती है कि प्रगतिवाद की दृष्टि से सूर तुलसी वाल्मीकि होमर शैक्सपियर का स्थान क्या है ? साहित्य किसे कहते हैं ? उसका उपजीव्य क्या है ? नूतन रचनाओं के स्थान पर हमें प्राचीन साहित्य क्यों अधिक प्रभावित करता है यद्यपि प्राचीन विचारधारा से हम सहमत नहीं होते ? इसी प्रकार आधुनिक कवियों उपन्यासकारों आदि के विषय में प्रगतिवादी दृष्टिकोण क्या है ? इसकेलिये पाठक उत्सुक रहता है । रूस के सम्मुख भी यही प्रश्न था ।

---

❀ देखिये—साहित्य में यथार्थवाद लेख—डा० रांगेयराघव (आलोचना अङ्क ३)

चीन के सम्मुख यही प्रश्न था ? और है, तब हमें संक्षेप में यह बताने के पहले प्रगतिवादी दृष्टिकोण से साहित्य के मौलिक सिद्धान्तों को समझ लेना होगा और तभी प्रगतिवाद का अध्ययन पूर्ण हो सकेगा।

मार्क्सवादी दर्शन को समझते समय हमने कहा था कि भौतिकवादी के अनुसार चेतना सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित रहती है। Existence determines consciousness इसी दृष्टि से, वाह्य वातावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव टालस्टाय पर लादकर plekhanow ने उन्हें "Art ist Aristocrat" कहा था। लेनिन ने इसका घोर विरोध किया और "टालस्टाय को एक क्रांतिकारी कलाकार ठहराया। उनके अनुसार वाह्य परिस्थितियों का प्रभाव कलाकार पर पड़ता है किंतु वह सीधी रेखाओं की तरह प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। सभी परिस्थितियों का अध्ययन कर हम कलाकार की कला के सम्बन्ध में कह सकते है कि वह प्रगतिशील थी या प्रतिक्रियावादी। लेनिन ने घोषित किया—He "Rendered with remarkable power the mood of the broad masses, oppressed by the existing regime, he described their situation expressed their spontaneous feeling of protest and indignation" अर्थात् टालस्टाय एक महान् कलाकार था उसने विशाल जनता की भावनाओं को उनकी दशा को, जो अपने समय के कठोर शासन से पीड़ित थी व्यक्त किया है"। क्या एक प्रतिक्रियावादी कलाकार विराट जनता की भावनाओं को प्रतिबिम्बित कर सकता है ? यदि नहीं तो टालस्टाय Artist Aristocrat नहीं कहला सकते।

लेनिन का यह मत कितना उदार तथा व्यापक है इसी दृष्टि से हमें अपने साहित्य को देखना है। पहले दौर के प्रगतिवादियों ने विशेष 'हंस' में प्राचीन साहित्य को इसी प्रकार 'बुर्जुवा' और प्रतिक्रियावादी बताया था और प्रगतिवाद के विरोधी उन्हीं विचारों

को दुहरा कर अपने दुराग्रह को पुष्ट कर देते हैं किन्तु 'मार्क्सवाद' या 'लेनिनवाद' इस संकुचित और अवैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरुद्ध है। मार्क्स ने प्राचीन ग्रीक आर्ट तथा 'शैले' आदि की कला की भूरि भूरि प्रशंसा की है पर साथ ही उनकी सीमाओं की ओर भी संकेत किया है किन्तु तथा कथित कुत्सित समाज-शास्त्रीयता वस्तुतः रूस की तरह हमारे यहाँ इतना घर कर गई है कि निकाले नहीं निकलती। प्रगतिवाद के नाम पर यही लोग साहित्य की शव क्रिया करते हैं और अवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखकर स्वयं आक्षेप के कारण वनते हैं। हिन्दी में इस कुत्सित समाज शास्त्रीयता का प्रभाव डा० रामविलास शर्मा 'पर' डा० रांगेयराघव तथा शिवदानसिंह चौहान द्वारा दिखाया जा चुका है, यह हर्ष का विषय है कि डा० रामविलास शर्मा का दृष्टिकोण कुछ उदार होता हुआ दिखाई पड़ता❀ है परन्तु उनके निर्णयों में जो कि उन्होंने सुमित्रानंदन पंत, महादेवी, बच्चन, यशपाल आदि के विषय में दिये हैं एकाङ्गी हैं। उनके दृष्टिकोण से पंत की 'स्वर्ण किरण' 'स्वर्ण-धूलि' आदि में केवल 'रजस्राव' ही है अन्य कुछ नहीं। पंत जैसे कलाकार के इन काव्य ग्रंथों में कुछ भी अच्छा नहीं है तो तुलसी व सूर में क्या अच्छा है जहाँ भाग्यवाद, वर्णाश्रम प्रथा का समर्थन, ईश्वरभक्ति, आदि तत्व भरे पड़े हैं? यदि हम तुलसी में प्रगतिवादी तत्व खोज लेते हैं, उनकी प्रशंसा करते हैं और साथ ही उनकी सीमाओं के सम्वन्ध में 'दबी जुबान' से संकेत कर देते हैं तो 'पंत' 'महादेवी' बच्चन के साहित्य में भी हमें यही दृष्टि रखनी होगी। 'पंत' द्वारा रक्खा गया आत्मवाद तथा भौतिकवाद का समन्वय चाहे मान्य न हो परन्तु 'पंत' के सम्बन्ध में निम्नलिखित धारणा वीर रसात्मक होकर भी आलोचक की एकांगिता को स्पष्ट करेगी।

'स्थायी साहित्य, सुन्दर साहित्य, ऐसा साहित्य जिसे जनता

❀ देखिए डा० सा० का 'महादेवी' पर लिखा गया लेख 'महादेवी' सम्पादित शचीरानी गुर्टू

युगों तक अपने हृदय में स्थान दे, कायर, अनैतिक और सिद्धान्त-हीन व्यक्तियों की रचना नहीं हो सकती।'

अच्छा होता डा० साहब पंत के नूतन रहस्यवाद के उज्ज्वल पक्ष पर भी दो शब्द कहते और वैज्ञानिक यथार्थवाद के दृष्टिकोण से कहते और तब कलाकार नहीं विचारक 'पंत' के 'समन्वय' की जी खोल कर निंदा कर डालते।

प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त के कभी कभी नम्र हो जाने अर्थात् उनके एकांगी न रहने पर डा० साहब उन पर अपनी खीझ प्रकट कर देते हैं। इसी प्रकार प्रगतिवादी कथा-कार 'यशपाल' पर अनुचित आक्षेप किये गये हैं यदि यशपाल प्रगतिवादी नहीं हैं तो और कौन प्रगतिवादी है? यदि किसी चरित्र विशेष में 'अश्लीलता' आ गई है और यदि वह वस्तुतः उत्तेजना जगाती हो, घृणा नहीं, तो लांछित होनी ही चाहिये परन्तु केवल इसीलिये वह प्रगतिवादी नहीं, यह अनुचित है। हमें ये शब्द न भूलने चाहिये—

"Litrative is an imaginature form of class consciousness, it is a special form of class consciousness, expressing itself by means of verbal images"*

लिफशिज कहता है—

"The contents of litrative are taken not from the external world, but from the depths of a definite class psychology."

वर्ग चेतना जिस व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त हो रही है 'वह व्यक्ति है' यह हमें न भुला देना चाहिये। 'पंत' क्रान्तिकारी कभी नहीं रहे, वह एक मानव वादी कवि हैं, रीतिवादी या वाममार्गी नहीं। 'स्वर्ण किरण' कापालिक का उपदेश नहीं है। 'जघनों' व 'उरोजों' के नाम लेने से 'पंत' अनैतिक और कायर हो सकते हैं परन्तु पूरा ग्रन्थ रद्दी में फेंक देने योग्य नहीं है अन्यथा सारा

* The Literary Enchyclopadia.

अध्यात्म-वादी साहित्य हमें जला देना होगा जो एक अक्षम भूल होगी वर्ग-चेतना से 'पंत' बच नहीं सकते। कोई नहीं बच सकता किन्तु 'तुलसी' अपने वर्ग का सफल प्रतिनिधि था, ब्राह्मण धर्म तथा वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचारक तुलसी भी प्रतिक्रिया वादी नहीं कहा जाता! आश्चर्य है? एक ओर तो "यह पृथ्वी* किसी की नहीं है, यह तो ईश्वर की है" ऐसी भावनायें प्रकट करने वाला टालस्टाय प्रगतिशील माना जाता है और दूसरी ओर कला तथा संस्कृति के एक अत्यन्त उच्च धरातल पर (Humanism) मानववाद को (प्रेम, सामञ्जस्य, स्वार्थ त्याग तथा कल्याण के स्वप्न को) घोषित करने वाला 'पंत' प्रतिक्रिया वादी है। इसी प्रकार अन्य लेखकों के संबंध में संकुचित दृष्टिकोण कितना उत्तरदायित्व विहीन है यह सहज ही अनुमेय है।

प्रगतिवादी को स्वयं अपने को ही संतुष्ट नहीं करना है अपितु प्रबुद्ध-जनता की चिंतना को भी संतुष्ट करना है। 'पंत' जी पर एक नवीन आलोचक 'यशदेव'※ इस संकुचित दृष्टिकोण को लेकर आगे बढ़ रहे हैं। केवल कुछ कविताओं की मनमानी व्याख्या से किसी कवि पर निर्णय देना अनुचित है। सम्भवतः ऐसी ही व्याख्याओं के लिये ( Self Satisfied Sectarianism ) 'स्वयं संतुष्ट सम्प्रदायवाद' शब्द व्यवहृत होता है।

तब ऐतिहासिक यथार्थ क्या है और साहित्यिक चेतना का विश्लेषण उसके द्वारा कैसे होता है? इस प्रश्न का उत्तर दे देने से विगत अतीत तथा वर्तमान साहित्य की व्याख्या वैज्ञानिक हो सकती है।

ऐतिहासिक यथार्थवाद के अनुसार जब हम किसी युग का

---

* "The land belongs to no one, the land is God's" such a peasant could find no better spokes man of his hesitation than Tolstoy—(Lifshits)

※ देखिये 'सुमित्रा नन्दन पन्त और उनका युग'—(यशदेव)

अध्ययन करते हैं, उसके विशिष्ट साहित्य का अनुशीलन करते हैं, तब हम उस समय के समाज की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हैं, उस युग का विशिष्ट लेखक उन प्रवृत्तियों, विचारधाराओं में से कहाँ तक प्रभावित था, अपने समय के युग के धरातल पर खड़े होकर उसने भविष्य का रूप क्या रक्खा ? उसके इस प्रकार सोचने में कौन सी प्रेरणायें कार्य कर रही थीं ? उनसे वह क्यों प्रेरित था ? समाज के सम्बन्धों को उसने किस प्रकार देखा ? वह अपने युग की मान्यताओं, रीतियों, रूढ़ियों के प्रवाह में बहा या उनसे ऊपर उठ कर जीवन की प्रवाह को उसने मोड़ देने का भी प्रयत्न किया ? अर्थात् वह केवल अपनी वर्ग-चेतना को ही प्रतिबिम्बित कर पाया या अपनी प्रतिभा के बल से, पूरे समाज के मनोविज्ञान को समझ कर सामान्य लोक-प्रवृत्तियों को भी वाणी दे पाया ? क्योंकि कोई व्यक्ति पूर्णतया अपने वर्ग का प्रतिनिधि होकर जन्म नहीं लेता, एक पूँजीपति के हृदय में भी दलितों के प्रति सहानुभूति जाग सकती है बुद्ध भी यशोधरा के यौवन की उपेक्षा कर, जीवन के मूल प्रश्नों पर सोच सकते हैं वे क्षत्रिय होकर भी वेदों तथा ब्राह्मणों के हिंसामूलक यज्ञों का विरोध कर सकते हैं, कालिदास दरबार में बैठकर भी केवल 'राजा' के यश के लिये ही लिखें, यह आवश्यक नहीं है, 'मानवता' की सहज स्वाभाविक प्रेरणायें भी व्यक्ति को आंदोलित करती हैं जिनको वह साहित्य में व्यक्त करता है। अतः युग के, युग के नेताओं, कवियों तथा महापुरुषों के दृष्टिकोण को समझने के लिये हमें उस युग की मानसिक, नैतिक तथा राजनैतिक सम्पूर्ण परिस्थितियों का अध्ययन करना पड़ेगा तभी हम किसी 'साहित्य' की वैज्ञानिक व्याख्या कर सकते हैं इसी लिये कहा जाता है—

No one is born as ideologist of a definite class Marxism is not a simple deepening of the Psychology of the worker, not a spontaneous consequence of

factory conditions. Real class consciousness develops only from observation of the life of all classes of society in all its manifastations mental, moral and political,

कोई भी व्यक्ति अपने वर्ग का निश्चित आदर्श लेकर पैदा नहीं होता अतः 'मार्क्सवाद' श्रमिक या कारखानों की दशाओं का परिणाम नहीं है अपितु वर्ग-चेतना का विकास तभी हो सकता है जब कि हम युग जीवन का उसकी प्रत्येक ,अभिव्यक्ति को लेकर अध्ययन करें, ( नैतिक, मानसिक, तथा राजनैतिक आदि )।

चूँकि 'साहित्य' भी युग की अभिव्यक्ति को लेकर चलता है अतः उसमें युग किस प्रकार, कहाँ तक बोल पाया है, इसके लिये उस युग के सम्पूर्ण जीवन-व्यापारों का अध्ययन उचित होगा तब हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि प्रगतिशील था या प्रतिक्रिया वादी। क्योंकि न 'वेद' का रचियता मार्क्सवादी था न पुराण का सृष्टा 'लेनिनवाद' से परिचित था। 'तुलसी' 'सूर' मीरा, कबीर आदि भी "दास कैपिटल" के अपरिचित थे परन्तु 'जीवन क्या है' इसको सब समझते थे उसे आगे बढ़ाने का प्रयत्न उनमें से बहुतों ने किया, बहुतों ने नहीं किया। वे युग की धारा में ही बह गये यथा रीतिकाल के कवि उनका यथार्थ; समाज के यथार्थ को प्रतिबिम्बत करने में ही रहा, वे जीवन की धारा को मोड़ नहीं सके, 'तुलसी' यह कर सके किन्तु अपनी सीमाओं को समेट कर ही, 'सूर' तुलसी की अपेक्षा समाज की ओर नहीं देखते परन्तु उनमें भी 'जीवन' बोलता है एक दूसरे रूप में। उस रूप को भी उस प्रतीक को भी समझना होगा, 'सूर' का कार्य सीधा नहीं है यथा 'तुलसी' का। किन्तु उनका स्वच्छन्दता, तन्मयता, मस्ती तथा उल्लास से भरा 'लीलागान' प्रतिक्रियावादी नहीं है 'सूर' का कोई "राजनैतिक प्रोग्राम" नहीं था, न सही किन्तु उनके 'बालकृष्ण', उनकी 'राधा' उनकी गोपियाँ, अधिक मानवीय हैं अधिक स्वाभाविक। 'रास' में

सामाजिक बंधनों से स्वतन्त्रता-प्राप्ति की कल्पना है, यशोदा में जैसे 'भारतीय माता' का संतान के प्रति जो स्नेह होता है वह विस्तार से प्रकट किया गया है। गोपियों की रूपासक्ति 'नारी' का यथार्थ मनोविज्ञान है जिसके अस्वाभाविक दमन से समाज में मानसिक रोग पनपते हैं। अतः सूर का अध्यात्म्य किसी बाह्य सत्य का साथ नहीं छोड़ता। योग व 'ज्ञान' का विरोध तो जैसे सर्व साधारण जनता की ऋजु-मार्ग गामिनी प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करने के लिये ही किया गया है। अकबरी दरबार के विरुद्ध अध्यात्म्य की भित्ति पर वैष्णव आचार्यों मुख्यतः 'वल्लभ' ने जो साँस्कृतिक शिविर खड़ा किया उसका पूर्ण प्रतिनिधित्व 'सूर' ने किया अतः उनका 'साहित्य' जो प्रेम, वात्सल्य का केवल तटस्थ चित्रण समझा जाता है, एक वृहत्-सांस्कृतिक प्रयत्न के रूप में देखा जाना चाहिये जिसका एक छोर तो मानवीय भावनाओं की कोमल अभिव्यक्तियों से मिलता है और दूसरा अनजाने में ही विदेशियों के विरुद्ध पराजित हिन्दू जाति के संस्कृति-रक्षा के प्रयत्नों से मिलता है, वल्लभ का 'लीलगान' हिन्दुओं के लिये अफीम का कार्य नहीं करता था अपितु अकबर से भी महान् एक सत्ता की प्रतिष्ठा का, उसके प्रति आत्म समर्पण का भाव उत्पन्न करता था, अतः "कृष्ण का लीलागान" जीवन का गायन था, परिस्थिति से पलायन नहीं, "विस्मृति के लिये मधुर औषधि नहीं।"

तुलसी का कृतित्व प्रतीक-पद्धति पर नहीं चलता, प्रत्यक्ष उपदेश को लेकर चलता है, अतः कुछ उपयोगिता वादियों के लिये वे प्रगतिशील दिखाई पड़ते हैं। किन्तु 'तुलसी' व 'सूर' दोनों में मध्य-युग की सारी मान्यतायें, सारी भावनायें तथा 'अशिव' के प्रति सफल विद्रोह मिलता है। अपने आदर्श की प्रतिष्ठा लेखक अपने दृष्टिकोण से ही करता है, 'तुलसी' ने असद् पर सत् की विजय दिखा कर भी 'पौराणिक धर्म' का पुनरुद्धार किया अब यदि कोई कहे कि 'तुलसी' प्रतिक्रियावादी था तो यह शुद्ध भ्रम होगा, "नाथ-

पुराण निगमागम" ने तुलसी का जो दृष्टिकोण बनाया था उसी के आधार पर 'तुलसी' ने कार्य किया अतः अपने युग का 'सत्य' 'तुलसी' व 'सूर' दोनों में प्रतिविम्बत हो रहा है, 'भक्ति-स्कूल' का यह प्रयत्न उस समय के दृष्टिकोण से अप्रगतिशील नहीं था। इसी दृष्टि से हम 'भूषण' व 'राणाप्रताप', 'शिवाजी' को देख सकते हैं। 'प्रताप' व 'शिवाजी' राष्ट्रीय वीर थे किन्तु संकीर्ण प्रगतिवादी इसे सहन नहीं कर सकता, क्यों ? क्योंकि वह सोचेगा कि यह सब सम्प्रदायवादी थे, एक जाति के हित के लिये दूसरी जाति से लड़ने वाला 'वीर' सम्प्रदायवादी ही होगा अतः 'भूषण' राष्ट्रीय कवि नहीं है, सम्प्रदायवादी कवि है। गांधी जी ने हिन्दू-मुसलिम एकता के जोश में भूषण के काव्य को न पढ़ने का परामर्श दिया था, और आज Vulger sociologists कुत्सित समाज शास्त्री भी यही कहता है तब भूषण का यथार्थ क्या है ?

भूषण के समय का मुसलमान शासक विदेशी था, वह आज या अँगरेजों द्वारा आहत मुसलमान न था, वह विदेशी संस्कृति के मद में 'काफिरों, पर जिहाद करना चाहता था। दूसरों के अस्तित्व को मिटाने वाला औरंगजेब यदि शिवाजी की तलवार का लक्ष्य बना, तो यह 'सम्प्रदायवाद, नहीं होगा। शिवाजी भी सम्राट बन जाते हैं, न बनते यदि सामंतवाद न होता, न बनते यदि उन्होंने आज के 'जनवाद' को पढ़ा होता परन्तु इसलिए उनका सारा 'त्याग' केवल सत्ता प्राप्ति का प्रयत्न नहीं माना जा सकता उसके पीछे दलितों, पीड़ितों के प्रति जो कसक थी वह उनकी तलवार को सीधा कर देती थी। अत्याचार के विरुद्ध ऊर्जस्वितवाणी में सिंहनाद करने वाला भूषण इसीलिये प्रगतिशील था।

रहा 'रीतिकाल' उसका भी अभी यथार्थ अध्ययन नहीं हो पाया, यदि हम खोजने चलेंगे तो रीति काल से एक बड़ी मात्रा में पद्यों का ढेर ऐसा मिलेगा जो मानवीय तत्वों से पूर्ण होगा, फारसी के प्रवाह में इन कवियों ने 'फैजी' का शिष्यत्व स्वीकार न कर चाहे

वहाने से ही सही, राधा कृष्ण का सुमिरन किया, उनके उज्ज्वल पक्ष की ओर संकेत करता है, वासना का 'उत्तेजन, तथा रीति का अंधानुसरण करके भी रीति काल का कवि कम से कम ईमानदारी से अपनी रसिकता स्वीकार करता है और उसके प्रति खीझ भी प्रकट करता है, 'कला की आराधना में वह जीवन की व्यापक दृष्टि खो बैठा यह उसकी भूल थी और वह उसे स्वीकार करता है—

ऐसो जो जानतो कि जैहै तू विषय के संग।
ऐसे मन मेरे हाथ पांव तेरे तोरतो॥
आजु लग कत नर नाहन की नांही सुन—
नेह सों निहारि हारि वदन निहोर तो॥

हाँ, समष्टिरूप से देखने पर 'भक्तिकाल' के आगे 'रीतिकाल' का कृतित्व हल्का है और हानिकर भी।

तो साहित्य की व्याख्या इस प्रकार यथार्थवादी दृष्टि से की जा सकती है। इस दृष्टि से हम प्रत्येक युग में प्रत्येक कवि में 'वास्तविकता' को खोजते हैं, उनके कारण बतलाते हैं, इससे पाठक को युग-जीवन का अध्ययन सुलभ होगा और उनमें 'प्रगति' की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति भी जगेगी, अतीत के प्रति अन्ध श्रद्धा भी कम होगी और साथ ही युगों युगों की रक्षित पूँजी के प्रति नकारात्मक कुत्सित समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण भी बदल जायेगा। अतीत ही नहीं हमें आधुनिक कवियों की रचनाओं की भी इसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पढ़ना होगा, हम महादेवी वच्चन, व पन्त को पढ़ते हैं, गुप्तजी निराला, प्रेमचन्द का अध्ययन करते है महादेवी आदिव्यक्तिवाद का चरम रूप लेकर चलते हैं और प्रेमचन्द, निराला, यशपाल आदि क्रांति कारी किन्तु यहाँ भी वही समस्या है, प्रगतिवादी देखता है घोर व्यक्तिवादी कवि प्रतिक्रियावादी होता ही है और फिर यह युग तुलसी-सूर, व्यास का युग नहीं है वैज्ञानिक समाजवाद का प्रवाह सम्मुख है क्यों महादेवी, वच्चन, पंत उसकी ओर नहीं बढ़ते, क्यों

'पंत' 'ग्राम्या' तक आकर स्वर्ण किरण में पीछे लौट गये ? किन्तु जैसा कहा कि इन व्यक्तिवादी कवियों में भी व्यक्तिवाद, 'मानववाद' का माध्यम है, दुःख, निराशा, वेदना पलायन क्यों है उसका सामाजिक कारण है जिसे सब जानते हैं साथ ही पूँजीवादी युग की असंगतियों का प्रभाव भी है,उच्चवर्ग का 'अध्यात्म' शरण्य बनकर आ जाता है वस्तुतः अध्यात्म 'किशलयों का छाजन' बनकर अमर है जिसके नीचे 'युग से आहत' कवि की 'आह निकलती है फिर भी 'महादेवी' पन्त में निराशा नहीं है जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण आशा मय है। 'बच्चन' का नियतिवाद अवश्य चिंत्य है क्योंकि वह व्यक्ति जो पूर्णतया (यहाँ शब्द पर ध्यान देना होगा) अपनी व्यक्तिगत सत्ता में डूब जाता है प्रतिक्रियावादी बन जाता है।

A man who is completely immersed in his individual existence in his basis isolation remains for ever under the influence of reactionary ideology.

इस दृष्टिकोण से प्रगतिवादी भी यह मानता है कि 'महादेवी' व पन्त में मूर्तता है, सूफियों की तरह कल्पना में आये बिम्बों का कोरा चित्रण वहाँ नहीं है, उनकी अभिव्यक्ति मूर्त और स्थूल है, महादेवी के सर्ववाद में जो स्थूलता आ जाती है वही उन्हें बचा लेती है अन्यथा वह 'साधक का संगीत' हो गया होता कवि की तान नहीं। अवाँछनीय भावुकता को संयमितकर, प्रकृति के सहारे नारी के सारी उपेक्षा व करुण स्थिति को, युग की सारी संवेदना को चित्रण करने वाली महादेवी प्रतिक्रियावादिनी नहीं हो सकती हमें नीर-क्षीर विवेक न्याय से चलना होगा, हँसिया, हथौड़ा बांधकर हम कारखाने व खेत में सफल होंगे, साहित्य में सामने से भी नाक पकड़ी जाती है और आवश्यकता पड़ने पर हाथ को घुमाना भी पड़ता है प्रसाद का 'आनन्दवाद' निराला का 'अद्वैतवाद' पंत का 'नूतन रहस्यवाद' महादेवी का दुःखवाद एक ही श्रेणी में हैं,

केवल अभिव्यक्ति का ही अन्तर है, प्रसाद' जिस 'नर्तितनटेश' का रूप सम्मुख रखकर आनन्दमय शिखिर पर हमें पहुंचने के लिए कहते हैं वह क्या संकुचित व्यक्तिवाद नहीं है ? बुद्धि की अवहेलना व विश्वास की अतिशयता बराबर कामायिनी में मिलती है कहने को हम कह सकते हैं कि 'इड़ा व मानव' का अन्त में साथ हो जाता है जो क्रमश: बुद्धि व श्रद्धा के प्रतिनिधि हैं और इस प्रकार प्रसादजी यहाँ पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं किन्तु 'सारस्वतनगर' का ध्वंस और मनु की 'आकाश के नीचे किसी गुफा' में रह लेने की भावना क्या होगी ? अतः हम इस प्रकार नहीं चलते, कवि आनंद, वादी था, क्यों था इसके कारण स्पष्ट हैं कवि ने अपने वैयक्तिक व सामाजिक जीवन का हल विद्रोह में नहीं सामञ्जस्य में खोजा कवि के नायक को 'परिस्थितियाँ' नहीं आंतरिक इच्छा शक्ति व्यथित व विकल किये हैं अतः उसने जो हल दिया वह अवैज्ञानिक होते हुए भी हम उसे 'मानवतावादी' पाते हैं क्योंकि आदि से अंत तक कवि की दृष्टि मानव के दुःखों की निवृत्ति पर है, यही विंदु 'महादेवी' में है, पीड़ा से प्रेम कर जैसे वे अपनी तथा अपने ही समान आज सारे समाज की जड़ता को व्यक्त कर देती हैं जो अपनी पीड़ा मय परिस्थितियों से इतना प्यार करने लगा है कि उसके विरुद्ध सोचता ही नहीं। रह गई कला और अभिव्यक्ति की बात, वह तो विरोधी भी मानते हैं कि इन कवियों की कला विपयक साधना, कितनी परिष्कृत व महान् है, निस्संदेह वह साधारणीकृत नहीं हो सकती जब तक जनता का स्तर ऊँचा नहीं उठता किन्तु वह हमारी अक्षयनिधि के रूप में हमें सदा प्रेरित करेगी यह स्वीकार करने में लज्जा होने का कोई कारण नहीं।

श्री शिवदान सिंह चौहान ने इसी मूल प्रश्न को उठाया है कि कवि चिरन्तन वृत्तियों insoincts की संतुष्टि करने के लिए कविता लिखता है या किसी उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता है या दोनों को एक साथ लेकर चलता है यह दोनों तत्व एक दूसरे के पूरक हैं

जैसा चौहान ने काडवेल के आधार पर इस प्रकार दिखाया है 'वास्तविकता के किसी अंग का प्रत्यक्ष कर उसके (कवि के) मन में एक नया अनुभव उत्पन्न होता है वह उस नये भाव को कविता के रूप में अभिव्यक्त करता है इसे आत्माभिव्यक्ति कहा जाता है लेकिन यह आत्माभिव्यक्ति नहीं आत्म-समाजीकरण है व्यक्तिगत अनुभव को समाज में सम्मिलित करना।'

"काडवेल के अनुसार यह अनुभव दो प्रकार का होना चाहिये अर्थात् पहले वह महत्वपूर्ण हो अर्थात् उसके भाव अपरिवर्तन शील अन्तर्वृत्तियों instincts को गहरे भावोद्रेक से हिला सके " "दूसरे यह अनुभव 'सामान्य' general होना चाहिये......अधिकांश मनुष्यों द्वारा अनुभूत हों। पहली बात से महानकला या कविता को चिरन्तनता का गुण प्राप्त होता है क्योंकि मनुष्य की अन्तर्वृत्तियाँ चिरन्तन हैं, दूसरी बात से उसे सम सामयिकता का महत्व प्राप्त हो जाता है यही कारण है कि यदि आज के कलाकार या कवि की कृति हमारे लिए महत्व रखती है तो होमर, शेक्सपियर, कालिदास या तुलसीदास की कविता भी हमारे लिए अर्थहीन नहीं हो सकती अतः कविता में व्यक्तभाव या अनुभव किस समाज की उपज है .........इसका विवेचन कविता की सामाजिक पृष्ठभूमि और उसके सौन्दर्य मूल्य का निरूपण करने के लिए आवश्यक हो जाता है।'

"कविता की आधुनिक व्याख्या"
शिवदानसिंह चौहान

अब शेष रही एक बात और वह यह कि 'मनोवृत्तियों के रंजन Satisfaction of impulses को लेकर हम चलें या जीवन के प्रति जागरूक दृष्टिकोण को लेकर। यदि कालिदास 'मेघदूत' में यक्ष का विरह गाता है तो वह एक युवक के हृदय की भावनाओं को वाणी देता है और उसमें तीव्रता तथा मर्म स्पर्शिता

होने पर उच्च कलाकार का पद पाता है। 'सूर' में यह तन्मयता अत्यधिक पाई जाती है तो हमारे सम्मुख एक प्रश्न है कला का उद्देश्य 'आनंद प्रदान है' या 'जीवन का उत्तरोत्तर विकास।' उत्तर होगा 'जीवन का उत्तरोत्तर विकास' किन्तु 'आनन्द की पद्धति' पर, इतिहास व ज्योपित की नीरस इतिवृत्त या विश्लेपण की पद्धति पर नहीं। मनुष्य का सारा सृजन उसके विकास के लिए होता है और विकास में उसे 'आनन्द' आता है अतः जिस 'कविता' की अवतरणा ही 'श्रम परिहार के लिए गाये हुये गान' के रूप में हुई हो वह जीवन से विमुख कैसे होगी ? कवि एक युवती के सौन्दर्य का वर्णन करता है, एक शिशु की चेष्टाओं को वाणी देता है, एक प्रवृत्ति का चित्र खीचता है, ठीक किन्तु साथ ही वह प्रेम का वर्णन 'व्याधि' के रूप में नहीं करता, दुष्यंत व शंकुतला का आकर्पण व प्रेम निर्वाह जीवन के संघर्पों व समस्याओं को लेकर चलता है, शंकुतला दुष्यंत के पास जाती है और वह उसे लौटा देता है हमारी संवेदना यहाँ कितनी अधिक तीव्र हो जाती है यदि प्रेम का वर्णन ऐसा हो जिसमें कोरा रोमांस हो, जो हमारी वृत्तियों में सामाञ्जस्य न लाकर उन्हें पतन की ओर ले जाता हो तो वह 'कला' कला न होगी अतः दाँते, गेटे, तुलसी, वाल्मीकि हमें प्रिय इसलिए हैं कि उनमें हमें 'जीवन' मिलता है, ये सब कवि 'मानवादी' हैं, उनको पढ़ कर हम हँसते हैं, रोते हैं, अत्याचार को देखकर तिलमिलाते हैं, सुन्दर चित्र देखकर मुग्ध होते हैं, मनोभावों की व्यंजना पाकर उस 'व्यक्ति' की स्थिति की दशा का अनुमान कर उससे सहानुभूति या घृणा करते हैं, और साथ ही इन महाकवियों की अभिव्यक्ति का सामर्थ हमें अपनी ओर आकर्पित करता है। 'अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति' का जो उदात्त रूप हम यहाँ पाते हैं वह भी आकर्पण का विपय रहता है—

अतः प्रगतिशील दृष्टिकोण न तो हमें संकुचित बनाता है न पक्षपाती। बात यह है कि जब प्रगतिवादी केवल आर्थिक कारणों

को ही लेकर चलता है तब वह असफल रहता है, लेनिन के अनुसार मूल में आर्थिक कारण रहने पर भी अन्य प्रभाव भी युग को प्रभावित करते हैं अतः नैतिक, मानसिक सारे क्षेत्रों का अध्ययन करने पर ही हम 'मिल्टन' व 'व्यास' की महानता को समझ सकते हैं। अतीत के सारे कवियों का आदर दो ही दृष्टियों से होता है एक तो मौलिक कलाकार होने के नाते (कलात्मकसाधना-शब्द व शक्ति पर अधिकार) तथा दूसरे मानवीय संवेदना का संचार कर सकने के कारण। वह संवेदना मौलिक भावनाओं प्रेम करुणा को लेकर चलती है। उसी प्रेम को हमें आज विश्व की अंतिम परिधि तक पहुँचाना है व्यथितों के प्रति करुणा जगानी है किन्तु कोरी बौद्धिक सहानुभूति जगा देने पर कुछ न होगा क्योंकि वह तो हम अब तक करते आये हैं अतः विश्व-प्रेम व विश्व करुणा पर प्रहार करने वाले, अपने ही स्वार्थ के लिये जीवित रहने वाले अर्थ पिशाचों को प्रति क्रांति आवश्यक है तभी विश्व-मानवता व 'करुणा' की रक्षा हो सकती है, बुद्ध ने अंगुलिमाल डाकू का हृदय परिवर्तन कर दिया था किन्तु आज के 'अंगुलिमाल' का हृदय परिवर्तन नहीं हो सकता क्योंकि वह 'मूर्ख' नहीं है वह अपने हितों को जानता है और उनकी रक्षा के लिए देश की पूरी मशीनरी को झोंकता चला आरहा है अतः आवश्यक यह है कि साहित्य 'मानवता की रक्षा के लिए पीड़ितों को ऊपर उठाये, जन मन को विकसित करे, 'कला' के सहज रूप को स्वीकार करे, आकाश वृत्तियों को छोड़कर 'मिट्टी' तक आये और इस प्रकार 'दलितों' को क्रांति के पर अग्रसर करे ताकि युग युग से दलित 'सर्वहारा' को शोषण विहीन व्यवस्था के निर्माण का अवसर मिले। यदि साहित्य प्रत्येक युग में प्रगति का प्रतिनिधित्व करता रहा है तो वह इस युग की 'प्रगति' को क्यों नहीं पह ,चानता, क्यों पीछे लौटता है ? क्यों मिटती हुई शक्तियों का साथ देता है ? हम यह बार बार भूल जाते हैं कि हिंसा, अहिंसा, करुणा, क्रांति आदि अपनी सापेक्ष्यता में

हैं कुछ कवि सफल भी हुए हैं यथा गिरजाकुमार माथुर, उदयशंकर भट्ट, नरेन्द्र शर्मा तथा 'निराला' आदि। यह उपालम्भ कि प्रगतिवाद किसी 'तुलसीदास' या 'प्रसाद' को उत्पन्न अभी तक नहीं कर पाया, व्यर्थ है, कवि शताब्दियों में उत्पन्न होता है, हम प्रगति के पथ हैं, और किसी महान् प्रतिभा के विषय में आशान्वित हैं।

रागात्मक चेतना के अभाव में अरण्य-रोदन सा ही रहा। कवियों का कर्तव्य तो यह था कि छायावादियों की अन्विति के अभाव अत्यधिक लाक्षणिकता तथा अस्पष्टता व अतिचित्र विधान को एक ओर रखकर उनसे अभिव्यक्ति की मर्मस्पर्शिता सीख कर यथार्थ-वादी कविताओं को अधिक संवेदनीय बनाते, खेत, मजदूर, कार-खाना, श्रम, रक्त-शोषण, अश्रु, अकाल, असंतोष को रागात्मक वाणी देते किन्तु उलझी हुई संवेदना वाले कुछ कवियों ने 'प्रयोग' करने प्रारम्भ कर दिये जो एक वैचित्र्य को जन्म दे सके। और यही प्रयोगवाद कहलाया। प्रयोगवाद क्यों ? माचवे ने कहा—

"आधुनिक हिन्दी कविता में आत्मरति, मृत्यु-प्रेम और संकेतों से स्वप्न-पूर्ति करने की आदत के कारण घोर अनिश्चय, तीन दोष Auto-eroticism Necrophilia and Aboulia इतने स्पष्ट हैं कि उन्हें प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं, छायावाद हिस्टीरिया की भाँति एक मानसिक रोग है, दोनों में स्मृतियों की प्रच्छन्न और अज्ञात पुनरावृत्ति तथा तज्जन्य अहेतुक त्रास दिखाई देते हैं अतः एक तरुण स्वस्थमना कवि के लिये छायावाद का माध्यम स्थविर, क्षीण और Spent-up जान पड़ता है।"

छायावाद तो Spent-up है अब प्रगतिवाद को लीजिये।

प्रगतिवाद "अपनी प्रारम्भिक अवस्था में यह अभी अपरिपक्व और नाम का ही प्रगतिवाद है, उसकी जड़ें जीवन में धँसी न होने के कारण जो वह स्फूर्ति पाता है वह एक बुद्धिजीवी, ऊर्ध्वमूल, सीमित वर्ग से ही है जो कि अधुना चौतर्फा Frustrotion का शिकार हो रहा है फलतः प्रगतिवाद में एक अनावश्यक प्रदर्शन-प्रियता, दमित इच्छाओं से निर्मित होने वाला औद्धत्य की सीमा तक पहुँचाने वाला पर-पीड़न प्रेम और प्रचार के विद्रूप कुनैन पर कला का शर्कराचरण पहिनाने की या राजनीतिक पक्ष-विशेष की 'माइक' कविता बनाने की प्रवृत्ति आदि दोष रह गये हैं।

और माचवे के अनुसार राष्ट्रीयतावाद की लहर भी मंद पड़ती जारही है। तब माचवे जी क्या चाहते हैं यह सुनिये—

"हिन्दी कविता में अभी विषयों की विविधता, व्यंग्य का तीक्ष्ण और सुरुचि पूर्ण प्रयोग, प्रकृति के सम्बन्ध में अधिक वैज्ञानिक दृष्टि, जनजीवन के निकट जाकर ग्रामगीत-लोकगाथा और बाजारू कहलाई जाकर हेय मानी जाने वाली बहुत सशक्त और मुहावरेदार जबान से नये नये शब्द रूपों और कल्पना चित्रों को ग्रहण करना और प्रयोग शील अभिव्यंजना के प्रति औदार्य आना चाहिये।"

शैली के सम्बन्ध में आपकी व्यंजना पर अधिक श्रद्धा है। आपका लक्ष्य है 'राग और ज्ञान से पूरित ऐन्द्रिक, आवेगाश्रित और अभिजात images की सृष्टि करना। आपके अनुसार 'निरलंकार' काव्य अधिक श्रेष्ठ है।

प्रयोग के प्रमुख प्रवर्तक 'अज्ञेय' जी का 'प्रवचन' सुनिये अज्ञेय जी के निर्णय प्रायः अस्पष्ट और उलझे हुए होते हैं अतः उन्हें हम इस प्रकार रक्खेंगे।

(१) कवि की सबसे बड़ी समस्या है काव्य विषय की (२) सामाजिक उत्तरदायित्व की (३) संवेदना के पुनः संस्कार की।

(२) मुख्य समस्या है साधारणी कारण की ( अज्ञेय जी कभी भी साधारण कारण नहीं कर पाये ) और कवि की प्रयोग-शीलता की ओर प्रेरित करना करने वाली सबसे बड़ी शक्ति यही है। कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्त्व उसमें नहीं है।

(३) (प्रयोगवादी) शब्दों के साधारण अर्थ में बड़ा अर्थ भरना चाहता है।

(४) उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिये जिन्हें अभी नहीं छुआ गया या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।

(५) (प्रयोगवादी) भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से, छोटे बड़े टाइप से, सीधे या

उलटे अर्थों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से......
उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण' पहुँचाना चाहता है।

(६) साधारणीकारण की प्रणालियाँ जमकर रुद्ध होगई हैं।

(७) जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समिष्ट तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुँचाया जाय, यही पहली समस्या है जो प्रयोग शीलता को ललकारती है।

तार सप्तक में माचवे व अज्ञेय जी ने 'प्रयोगवाद' के सम्बन्ध में कहा है उसका सारांश ऊपर दे दिया गया है, अन्य कवियों ने अपनी कविताओं या अपने जीवन के विषय में कहा है जो इस विवेचन की सीमा के बाहर पड़ता है। किन्तु उक्त निर्णय कम से कम प्रयोगवाद क्यों ? इसे स्पष्ट कर देते हैं।

संक्षेप में कहना चाहें तो प्रयोगवाद, कविता की एक नूतन शैली विशेष है जो कवि द्वारा अनुभूत 'सत्य' को पाठक तक पहुँचाने के लिये विभिन्न प्रयोगों को लेकर चलती है। प्रयोगवाद को 'वस्तु' का कोई विशेष आग्रह नहीं है, क्योंकि अज्ञेयजी के अनुसार संग्रहीत कविताएँ ऐसे कवियों की हैं जो अभी 'राहों' के अन्वेषक हैं और परस्पर विरुद्ध मत रखते हैं। ये 'मित्रों और कुत्तों' पर हँसने वाले व्यक्ति 'तार-सप्तक' में एक साथ संग्रहीत हैं क्योंकि उनकी शैली में कुछ नवीन प्रयोग दिखलाई पड़ते हैं जोकि प्रगतिवाद की एकरसता तथा 'टाइप' से कुछ अलग दिखाई पड़ते हैं (यद्यपि हैं नहीं यथा रामविलास शर्मा की कविताएँ) वस्तु के सम्बन्ध में थोड़ा विचार कर हम प्रयोगवादी शैली का विवेचन करेंगे।

अज्ञेयजी के अनुसार आज का व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है (अभावों का कहते तो अधिक वैज्ञानिक होता) मानव का मन

के ऊपर एक बाह्य संघर्ष भी बैठा है व्यक्ति और श्रेणियों का संघर्ष इस प्रकार व्यक्तिगत चेतना के ऊपर वर्गगत चेतना लदी हुई है ...... कवि को जीवन के दबाव की अभिव्यंजना का मार्ग नहीं दीखता। क्योंकि आज उसकी अनुभूतियाँ तीव्रतर हैं तो वर्जनायें Inhabitions कठोरतर हैं, परिणाम है व्यञ्जना भीरु नेत्रों का विस्फार जो अश्लील इसलिये है कि भावनाओं व वर्जनाओं के संघर्ष को सहसा सामने लाता है।

"और प्रेम एक थका माँदा पक्षी जो साँझ फिरती देख आशंका से भी भरता है और साहस संचित कर लड़ता भी जारहा है।" उक्त कथन को निचोड़ें तो 'तथ्य' इतना ही है कि आपकी कविता का विषय है असंतोष की अभिव्यक्ति और 'स्वप्न सृष्टि' इत्यलम्।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी व डा० नगेन्द्रजी की आलोचनाएँ प्रयोगवाद पर निकली हैं। वाजपेयी जी 'प्रयोगवाद' का नाम सुन कर ही चिढ़ गये हैं डा० नगेन्द्र ने अपने 'कुंठावाद' व 'राग' के सहारे कुछ संयत व्याख्या अवश्य की है। प्रयोग के सम्बन्ध में आपकी स्थापनाएँ ये हैं।

( १ ) आज का जीवन निस्संदेह अव्यवस्थित है, विश्वास का सूत्र छिन्न भिन्न हो गया है, यह अव्यवस्था प्रयोगवाद में भी मुखरित हुई है।

( २ ) प्रयोगवादी व्यक्तित्व से नहीं बच पाया, अन्तमुखी वृत्ति प्रधान होने से प्रयोगवादी मुख्यतः अज्ञेय में अव चेतन की काम-कुंठाओं का प्रतीकों द्वारा यथा तथ्य चित्रण है ( गिरजाकुमार में भी है )।

( ३ ) गहन बौद्धिकता इन कविताओं पर सीसे के पर्त के समान चढ़ी हुई है। रागात्मक तत्व को बौद्धिक माध्यम द्वारा व्यक्त किया गया है यह क्रम-विपर्यय है।

( ४ ) भाषा का सर्वथा वैयक्तिक प्रयोग मिलता है।

( ५ ) कवि को नूतनता का सर्वग्राही मोह है अपरिचित की
ाज रहती है ।

( ६ ) प्रयोगवादी का आग्रह है उपचेतन की उलझी हुई संवे-
नाओं का यथावत् चित्रण ।

( ७ ) जीवन के मूलतत्वों पर दृष्टि केन्द्रित रखते हुए उन्हीं के पोषण और समृद्धि विकास के निमित्त प्रयोग करना, उनको रूढ़ि व स्थविरता से बचने के लिये नवीन विधि का अन्वेषण करना सार्थक वस्तुत्य है। ( नवीनता की खोज में प्रयोग साध्य न बन जाएँ ) ।

किन्तु छायावाद की प्रतिक्रिया में जो 'भदेस' की ओर अभिरुचि प्रकट की गई वह वस्तुतः 'प्रगतिवाद' की वस्तु अधिक है जिसकी प्रेरणा है, सूक्ष्म, ताल और 'रमणीय' के स्थान पर अनग यथार्थ तथा प्रत्यक्ष से प्रेम यथा डा० राम विलास शर्मा की कविताओं में:—

छोटा सा सूरज सिर पर वैसाख का,
काले धब्बों से बिखरे वे खेत में।
फटे अँगरखों में, बच्चे भी साथ ले,
ध्यान लगा सीला चमार हैं बीनते।
खेत कटाई की मजदूरी, इन्होंने,
जोता, बोया सींचा भी था खेत को।

प्रयोग की दृष्टि से प्रभाकर माचवे जी ये पंक्तियाँ देखिये—

कापालिक हँसता है,
पगले ! तू क्यों उसमें फँसता है ? रे दुनियादारी,
यह महीन मलमल की सारी।
उसके नीचे नाम गुलाबी चोली से ये कसे हुये,
पीनोनत रतन,
यह कुंकुम अक्षत से चर्चित माथा, यह तन,
किसी सुहागिन की अर्थी पर,

रखते क्या जीवन का व्रत नेम
प्रेम करोगे सतत ? कि जिससे
उससे उठ ऊपर वह लो—
'नूतन अहम'

'गजानन' ने भी 'स्वरछन्दों' का आभास किया है। किन्तु .म सुखद रहा" यह नहीं कहा जा सकता।

वह मित्र का सुख
ज्यों अटल आत्मा हमारी बन गई साक्षात निज सुख
वह मधुर तम हास
जैसे आत्म परिचय सामने ही आरहा है मूर्त होकर
आत्मा के मित्र मेरे

इन कविताओं से यह स्पष्ट नहीं होता कि अंततः "कविमहाशय, कहना क्या चाहते हैं।"

'भारत भूषण', स्पष्ट अधिक हैं, कुछ विनोद मय भी, 'प्रयोग' अभी बाल्यावस्था में जान पड़ते हैं, 'पथहीन' कविता सुंदर है और 'अहिंसा' में व्यंग्य अच्छा निखरा है। प्रकृति वर्णन में छायावाद का प्रभाव शेष है।

फूटा प्रभात, फूटा विहान
वह चले रश्मि के प्राण, विहग के गान,
मधुर निर्झर के स्वर
झर झर झर, झर
जागो, जगती के सुप्त बाल
पलकों की पंखुरियाँ खोलो, खोलो मधुकर के अलस गंध।

गिरजा कुमार माथुर में प्रयोग भी निरखा हैं और 'कवित्व' भी यत्र तत्र बिखरा मिलता है। वैचित्र्य भी कम है। नवीन उपमाओं की ओर प्रवृत्ति अधिक है। मादन-भाव की कसक कुछ अधिक तीव्र होती हुई जान पड़ती है।

जीवन में फिर लौटी मिठास है।
गीत की आखिरी मीठी लकीर सी॥
वैभव की वे शिलालेख सी यादें आतीं।
एक चाँदनी भरी रात उस राज नगर की॥
रनिवासों की नंगी वाहों सी रंगीनी।
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की॥
(बुद्ध)

कहीं कहीं काव्य घड़ी के समान 'खर खर' करने लगता है—

दो काली आँखों सी चमकीली
एक रेडियम घड़ी सुप्त कोने में चलती
सूनेपन के हलके स्वर सी।

'अज्ञेय जी' को जानते तो सभी हैं कि 'वे क्या हैं और स्यात् इसीलिये कि वे 'अज्ञेय' वने रहना चाहते हैं वास्तव में संवेदना का उलझाव उन्हीं में अधिक है। जहाँ प्रयोग करने पर उतरे हैं वहाँ भी 'योनिवाद' को नहीं छोड़ा वस्तुतः यह कवि "यौन वर्जनाओं का पुंज है।"

फिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित, उरोजों पर झुकासा।
विशद, श्वासाहत, चिरातुर,
छा गया इन्द्र का नील वृक्ष।
वज्र सा, यदि तड़ित से झुलसा हुआ तन।

कहीं कहीं 'छायावादी' पंत भी इस चयन को देखकर मौन रह जाता है—

निविड़ांधकार
को मूर्त रूप दे देने वाली
एक अकिंचन, निष्प्रभ अनाहूत
अज्ञात द्युति किरण
आसन्न पतन, विन जमी ओस की अंतिम
ईपत्कण, स्निग्ध, कातर शीतलता।

'चार का गजर' में चित्र देने का प्रयत्न किया गया है और भादों की उमस में "सुरतिश्रम व मैथुन सुख" पर दृष्टि जा पहुँची है। कहीं कहीं कविता पं० गोविन्द नारायण मिश्र का गद्य बन गई है।

किसने देखा चाँद
किन्तु अंततः है अभिन्न
है अभिन्न, निष्कम्प, अनिर्वच, अनभि वद्य है युगातीत
एकाकी
एकमात्र ?

कहीं कहीं लगता है कि यह कवि पुनः छायावाद को जन्म देने चला है। छायावादी कवि का प्रयोग अधिक सफल रहा था।

( वस्तुचयन की दृष्टि से )
तुल सी माजीर बाला सामने,
निरत थी निज बाल क्रीड़ा में कभी
उछलती थी फिर ढुलक कर ताकती,
घूमती थी साथ फिर फिर
पूँछ के।—पंत

डा० नगेन्द्र व वाजपेयी जी ने जिन उद्धरणों का चयन किया है वे वस्तुतः प्रयोगवादी कविताओं के केवल एक रूप को—वैचित्र्य प्रदर्शन तथा प्रत्येक वस्तु को वर्ण्य बनाने की प्रवृत्ति को ही स्पष्ट करते हैं। वाजपेयी जी व नगेन्द्र जी ने प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कवितायें उद्धृत नहीं की हैं, यदि शुक्ल जी व नगेन्द्र जी पंत के 'झंझा में नीम' व 'टी बी टुट बाद' की प्रशंसा कर सकते हैं तो निम्न चित्र भी उपेक्षणीय नहीं है। यहाँ बौद्धिकता की भी छाप नहीं हैं।

भीगा दिन पश्चिमी तटों में उतर चुका है,
बादल ढकी रात आती है,
धूलभरी दीपक की लौ पर मंदे पगधर।
गीली राहें धीरे धीरे सूनी होतीं,

जिन पर बोझल पहियों के निशान हैं,
माथे पर की सोच भरी रेखाओं जैसे ॥
पानी रँगी दिवालों पर, सूने राही की छाया पड़ती।
पैरों के धीमे स्वर मर जाते हैं,
अनजानी उदास दूरी में।

—गिरजाकुमार

मैं समझता हूँ कि पहियों के निशानों के लिये मस्तक की रेखाओं की उपमा देने में प्रयोग सफल रहा है, यदि ऐसे प्रयोग आगे विकास पावें तो उसमें मर्म स्पर्शिता बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं। प्रयोगवाद में चिंतन सम्बन्धी, तथा सामयिक विषयों पर कवितायें साधारण हैं कुछ रद्दी भी हैं किन्तु प्रकृति पर प्रयोग सफलता की ओर बढ़ रहे हैं। 'प्रगतिवाद' में अन्य 'भदेस' का भद्र उदाहरण लीजिये—

सरग था ऊपर, नीचे पताल था *
अपच के मारे बहुत बुरा हाल था।
दिल दिमाग भुस का, खद्दर का खाल था।

नागार्जुन

और भी

निकटतर धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद,
मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृत्त में।
तीन टाँगों पर खड़ा नत-ग्रीव,
धैर्य-धन गदहा ✻

किन्तु प्रयोगवादी कविताओं में 'अपच' सम्बन्धी तथा 'धैर्यधन गदर्भराज' पर कवितायें अधिक नहीं हैं न 'चप्पल' व चाय पर ही अधिक कहा गया है। प्रयोगवादी तो प्रत्येक वस्तु पर लिखना चाहता है यदि 'मूत्र-क्रिया में रत' 'धैर्यधन' भी मिल गया तो उस

* quoted by डा० नगेन्द्र
✻ quoted by डा० नगेन्द्र

कितने फिर बैठे हैं ) वंशी छेड़नी पड़ी है और 'वीसवीं सदी' में सहानुभूति वश अनाज वेचने वाले देश के लिए यह कहने को वे विवश हो गये हैं—

जब रूस, देश के साम्य राज्य।
की करता इतनी बड़ी बात॥
तब भारत में भी क्यों अनाज।
भेजा? यह तो है सिर्फ स्वार्थ॥
'वीसवीं सदी'

और संसार का अपुण्य, स्वार्थ, हिंसा, संघर्ष सोच कर किं-कर्त्तव्य विमूढ होकर कह उठे हैं—

पूँजी शाही के अन्तर्गत, बढ़ता जायेगा जब विरोध।
आदर्श हो चले सब स्वर्गत॥
वास्तवता का जग पड़ा बोध।
सबका ही पर्दा फाश किया, वीसवीं सदी ने यही दिया।

हमें भय है कि कल से संसार के स्वार्थ से तंग आकर यह न कह उठे—

भगति बिन कूकर शूकर जैसे।
या
अविगत गति कछु कहत न आवै।

वस्तुस्थिति यह है कि न तो छायावादी ही हिस्टीरिया था न प्रगतिवाद प्रचार का विद्रूप, 'छायावाद' की सीमायें थीं, विचार धारा युग के अनुकूल न पड़ने के कारण तथा व्यक्तिवादी तत्व अधिक होने तथा आध्यात्मिकता के लबादे के कारण वह पीछे छूट गया और प्रगतिवाद एक सजग साहित्यक चेतना है, प्रौढ़ता आती नहीं है लानी पड़ती है, कथा क्षेत्र में प्रगतिवाद की सफलता सर्वविदित है, 'काव्य' में भी वह असफल होकर मात्र प्रचार नहीं कहा जा सकता, इसने जीवन को नयी चेतना, नूतन संवेदन तथा नये उपादान दिये हैं, प्रयोग की आवश्यकता है किन्तु एक

'शक्ति' हो। 'शक्ति' का आधार है राग या संवेदना और उसका बिना स्पर्श किये हुए काव्य प्रलाप ही रहेगा। भावात्मक संतुष्टि के लिये जीवन से प्रेम होने की आवश्यकता है, अनुभूति का प्रवाह प्रयोग की पहचान स्वयं कर लेता है, तुलसी व सूर लिखने पूर्व, चम्मचों, जूतों आदि उपादानों को उपमाओं के लिये एकत्र नहीं करते थे, वे 'कुछ' कहना चाहते थे, किन्तु 'प्रयोगवादी' के पास कहना कुछ नहीं केवल प्रयोग की चेष्टा है। अतः 'सौन्दर्य' जो रागात्मक चेतना पर निर्भर करता है इस वैचित्र्य प्रदर्शन से दूर ही रहेगा। जीवन में बिना प्रवेश पाये, मानवता का तार बिना झंकृत किये काव्य 'आकाश कुसुम' ही रहेगा। प्रयोगवादी को सोचना होगा कि व्यक्ति यौनवर्जनाओं का पुंज मात्र नहीं है उसके सम्मुख इससे बड़े प्रश्न हैं, उसे एक ओर से सर्वग्राही पूँजीवाद से बचना है तो दूसरी ओर नूतन संस्कृति का निर्माण करना है जिसमें मनुष्य, मनुष्य हो, दानव न हो, इसके लिए एक ओर तो सारे अन्धविश्वासों का समाप्त करना है, क्रान्ति के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत करनी है तो दूसरी ओर मनुष्य को उसकी दुर्बलताओं से ऊपर उठाना है। मनुष्य 'काम' का क्रीट दास नहीं है और यह तो अज्ञेयजी भी मानते हैं कि 'कवि' के बाहर वाह्य संघर्ष है, श्रेणी संघर्ष के रूप में। 'यौन-वर्जना' भी श्रेणी संघर्ष का ही परिणाम होगा जिस दिन यह मिटेगा और जनता की 'जय' होगी, उस दिवस यह समस्या भी हल होगी। अतः संवेदना का उलझाव यदि तब भी रह जाता है तो वह अवशेष छायावादी घुमड़न ही समझनी चाहिए। यह सौभाग्य का विषय है कि अन्य किसी प्रयोगवादी में यह 'उलझन' उतनी नहीं है। प्रयोगवादी कवि न तो spent-up छायावाद से ही अपना 'पिंड' छुड़ा पाया है न प्रगतिवाद के अनगढ़पन से।

आशा यह थी कि दूसरे 'सप्तक' में (६ वर्ष बाद प्रकाशित द्वितीय युद्ध के पश्चात् की सारी युग-चिंतना प्रतिबिम्बित होगी,

सौरभ का फैला केश जाल-करती समीर परियां विहार।
गीली केसर मद झूम-झूम, पीते तितली के नव कुमार।
मर्मर का मधु संगीत छेड़, देते हैं हिल पल्लव अजान॥

'महादेवी'

निराला की 'जुही की कली,' 'संध्या' आदि अनेक कविताओं में प्रकृति को नारी के रूप में सजीवता से अंकित किया गया है।

प्रकृति के प्रति तादात्म्य—

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि कैसे तूने पहचाना ?
कहाँ कहाँ है बाल विहंगिनि, पाया तूने यह गाना ?

'पंत'

(२) प्रकृति में सर्ववाद की झलक—

कभी उड़ते पत्तों के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार
बढ़ाकर लहरों से निज हाथ
बुलाते फिर मुझको उस पार

शून्य नभ पर उमड़ जब दुख भार सी—
नैश तम में सघन छा जाती घटा।
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी।
जल सुनहले आँसुओं के हार सी
तब चमक जो लोचनों को मूँदता
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?

'महादेवी'

<u>वैयक्तिता</u>—छायावादी कवि अपने अश्रु-हास को काव्य मय अभिव्यक्ति देता है, हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठता है, अपने 'स्व' की व्यंजना छायावाद की प्रमुख विशेषता रही है। हम रोमांटिक कवियों शेले कीट्स के काव्य में यह दिखा आए हैं कि वे किस प्रकार अपनी आशा-अभिलाषाओं का चित्रण किया करते थे।

यों जलद यान में विचर-विचर
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल

'पंत'

चुभते ही तेरा अरुण बान
इन कनक रश्मियों में अथाह
लेता हिलोर तम सिंधु जाग
बुदबुद से बह चलते अपार
उसमें विहगों के मधुर राग

बनती प्रवाल का मृदुल कूल—जो क्षितिज रेख थी कुहर-म्लान।

'महादेवी'

छायावाद में तटस्थ प्रकृति चित्रण कम हुआ है, उक्त पदों में भी मानवीकरण साथ-साथ चला है।

प्रकृति में चेतना की अनुभूति—मानवीकरण के रूप में—नारी रूप

शाँत स्निग्ध ज्योत्सना उज्ज्वल
अपलक अनंत, नीरव भूतल
सैकत शय्यापर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल।
लेटी है श्रान्त, क्लान्त निश्चल
दो बाहों से दूरस्थ तीर—धारा का कृश कोमल शरीर
आलिंगन करने को अधीर

'पंत'

घूँघट उठा देख मुस्क्याती, किसे, ठिठकती सी आती।
विजन गगन में किसी भूल सी, किसको स्मृति पथ में लाती?
पगली हाँ सँम्हाल ले कैसे, छूट पड़ा तेरा अंचल।
देख बिखरती है मणिराजी, अरी उठा बेसुध चंचल॥

'प्रसाद'

( निशा वर्णन, आशा सर्ग, कामायनी )

सौरभ का फैला केश जाल-करती समीर परियां विहार।
गीली केसर मद झूम-झूम, पीते तितली के नव कुमार।
मर्मर का मधु संगीत छेड़, देते हैं हिल पल्लव अजान॥
'महादेवी'

निराला की 'जुही की कली,' 'संध्या' आदि अनेक कविताओं में प्रकृति को नारी के रूप में सजीवता से अंकित किया गया है।

प्रकृति के प्रति तादात्म्य—

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि कैसे तूने पहचाना ?
कहाँ कहाँ है बाल विहंगिनि, पाया तूने यह गाना ?
'पंत'

( २ ) प्रकृति में सर्ववाद की झलक—

कभी उड़ते पत्तों के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार
बढ़ाकर लहरों से निज हाथ
बुलाते फिर मुझको उस पार

शून्य नभ पर उमड़ जब दुख भार सी—
नैश तम में सघन छा जाती घटा।
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी।
जल सुनहले आँसुओं के हार सी
तब चमक जो लोचनों को मूँदता
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?
'महादेवी'

वैयक्तिता—छायावादी कवि अपने अश्रु-हास को काव्य मय अभिव्यक्ति देता है, हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठता है, अपने 'स्व' की व्यंजना छायावाद की प्रमुख विशेषता रही है। हम रोमांटिक कवियों शेले कीट्स के काव्य में यह दिखा आए हैं कि वे किस प्रकार अपनी आशा-अभिलाषाओं का चित्रण किया करते थे।

वैयक्तिता का चरम-उत्कर्ष हम 'बच्चन' में पाते हैं जहाँ 'कवि' बाह्य संसार से नाता ही तोड़ लेता है अपना रोदन, अपनी 'निराशा' ही 'वर्ण्यवस्तु' बन जाती है।

'कह रहा जग वासना मय, हो रहा उद्गार मेरा'।

'बच्चन'

इसमें कवि 'उषा के गाल' चूमता है और भी न जाने क्या-क्या करता है ?

महादेवीजी अपने को "मैं नीर भरी दुःख की बदली" कहती हैं जो कल आकर आज "मिट चली हूँ।" और भी—

"अलि मैं कण कण को जान चली।
सबका क्रन्दन पहचान चली"
"सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी"
"शलभ मैं शापमय वर हूँ किसी का दीप निष्ठुर हूँ ॥"

'महादेवी'

'प्रसाद' के हृदय में भी 'वेदना गरजती है', कहीं भगवतीचरण वर्मा 'आग जलाते हैं', कहीं 'पंत' द्रुमों की मृदुछाया को न छोड़ कर बाला के बाल जाल में लोचन उलझाने में संकोच कर रहे हैं; कहीं नरेन्द्र 'प्रवासी के गीत' गाते हैं और कहीं 'निराला' भी पुकार उठते हैं।

कैसी बजी बीन, सजी मैं दिन दीन।
खुलती मेरी शेफाली, हँसती री डाली-डाली ॥

'गीतिका'–निराला

वस्तुतः छायावाद का यह आत्म-अभिव्यञ्जन उसकी मुख्य विशेषता है महादेवी वर्मा में यह 'निजत्व' का तत्व सबसे अधिक पाया जाता है। छायावादी कवि का यह 'अहम्' उसके कवि व्यक्तित्व को मुखर करने में बड़ा सहायक हुआ है। द्विवेदी युग व रीतिकाल ही नहीं प्रायः सारे साहित्य में इस प्रकार कवि ने अपनी 'निजता के विषय में इतना कभी नहीं कहा। यह अवश्य है कि छाया-

कवियों की उक्तियों में कहीं-कहीं 'जीवात्मा' की पुकार सुनाई पड़ती है परन्तु कवि अपनी आशा-निराशा के विषय में गाता हुआ सुन पड़ता है। असंतोष की व्यञ्जना, स्वप्नों की सृष्टि इसीलिए हुई है—

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे।

'प्रसाद'

विषाद—छाया-कवियों में विषाद की व्यञ्जना सर्वत्र व्याप्त है यहाँ तक कि वेदना ही साध्य हो गई है, प्रिय वस्तु की अप्राप्ति की अवस्था में मन की 'कचोट' से ही प्रेम हो जाना स्वाभाविक है, मन टीस-कसक, छटपटाहट में ही आनंद पाने लगता है, महादेवीजी में पीड़ा के प्रति अत्यन्त प्रेम मिलता है।

तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा, तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा।
रहने दो प्यासी आँखें, भरतीं आँसू के सागर।

यह विवशता की स्थिति अत्यन्त करुण है। 'प्रसाद' की वेदना पहले व्यक्तिगत लौकिक प्रेम की प्रतीक रहती है पुनः उसका विस्तार होता जाता है। वे अन्त में आँसुओं को विश्व सदन में बरसाने लगते हैं।

इस करुणा-कलित हृदय में, क्यों विकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में, वेदना असीम गरजती॥

पंत ने तो वेदना से काव्य की सृष्टि ही सिद्ध कर दी है:—

वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान॥

## अतीत के प्रति प्रेम

यह भी एक प्रकार का स्वप्न ही है—

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल?
मूर्तियों का दिगन्त छवि जाल—
ज्योति चुम्बित जगती का भाल॥

'पंत'

नीति-विद्रोह—छायावादी कवि द्विवेदी युग के पौराणिक आचार-वाद के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ, न तो वह रीतिकालीन कवि के समान स्थूल-शरीर सौन्दर्य में पड़कर सौन्दर्य को देखकर अपने उल्लास, व अनुराग का गला घोंटता है न नारी को वह 'योनि मात्र' ही मानता है, उसे देवि, माँ, सहचरि-प्राण के रूप में देखता है। परन्तु निराला, पन्त व प्रसाद के काव्य में नारी-सुषमा के प्रति अत्यन्त तीव्र झलक मिलती है। 'प्यास' की दृष्टि से छाया-वादी कवि रीतिकालीन है इसमें संदेह नहीं परन्तु वह 'शालीन प्यास' है, नारी को वह कल्पना के लोक में बसाता है। तात्का-लिक परिस्थितियाँ भी कुछ इस प्रकार की थीं कि छायावादी कवि जो कि शैले—कारस को पढ़ता था, और आर्य-समाजी युग का बंधन देखता था तो जैसे असमर्थ होकर दूर से ही प्रेयसी को कल्पना-परी बनाकर अपने अनुराग की व्यंजना करने लगता था।

एक उच्च मानसिक स्तर पर बैठ कर लिखने तथा परिष्कृत रुचि रखने के कारण वासना का वेग रोमांटिक कवियों के समान इनमें नहीं उमड़ता। शैली व बायरन के समान रूप पूजा तो मिलती है परन्तु वह उद्याम वेग नहीं, इस विषय में डा० नगेन्द्र लिखते हैं—

"छायावाद में शृंगार के प्रति उपभोग का भाव न मिल कर एक विस्मय का भाव मिलता है, इसलिये उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट और माँसल न होकर कल्पनामय व मनोमय है। छायावादी कवि प्रेम को शरीर की भूख न समझ कर एक रहस्य मयी चेतना समझता है, नारी के अंगों के प्रति उसका आकर्षण नैतिक आतंक से सहम कर जैसे एक अस्पष्ट कौतूहल में परिणत हो जाता है।" (विचार और अनुभूति पृष्ठ ११) लगता है कि 'नारी' को सुषमा का प्रतीक माना गया है। किन्तु वासना का दमित ऊहा पोह ही यहाँ नहीं हैं क्योंकि कवियित्रियाँ भी प्रकृति से नारी का दर्शन करती हैं—

यथा—

रूपसि ! तेरा घन केश पाश ।

—महादेवी

अतः नारी का वर्णन दो रूपों में हुआ है। (१) सौन्दर्य की ात्री के रूप में। (२) लौकिक प्रेम के आकर्षण के कारण।

'प्रसाद' व 'पंत' में नारी का दूसरा पक्ष अधिक उभर कर ाया है। विशेष कर 'पंत' में। वे आध्यात्मिक रूपकों को भी केलि ीड़ा का जामा पहना देते हैं, 'प्रसाद' में 'मधु भार' अधिक चलता ; और 'कसमसाहट' की व्यंजना अधिक होती है। छायावाद ने ुन्दरतम् नारी चित्र दिये हैं।

करुण भौंहों में था आकाश।
श्रवण नयनों में प्रिय वर्ताव॥
चाँदनी का स्वभाव में वास।
विचारों में बच्चों के साँस॥

'पन्त' में प्रायः सुकुमार किशोर नारी का चित्रण है, और ्रसाद' में तरुण-सौंदर्य का। महादेवी के नारी रूपकों में केवल मलंकृति है, पावन सुषुमा से अभिमंडित।

तारकमय नव वेणी बन्धन।
शीशफूलकर-शशि का नूतन॥
मुकताहल अभिराम बिछादे-चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसंत रजनी॥

प्रसाद' ने भी आँसू व कामायनी में अनेक चित्र दिये हैं :—

बाँधा था विधु को किसने, इन काली जंजीरों से।
मणि वाले फड़ियों का मुख, क्यों भरा हुआ हीरों से॥

अनुभूति की दृष्टि से छायावाद में उक्त तत्व ही प्रायः आते हैं। 'कतिपय विचारक इनमें से केवल प्रकृति पर चेतना के आरोप को ी छायावाद मानते हैं और कतिपय वेदना तथा मानवीकरण ो तत्वों को महत्व देते हैं, कुछ प्रकृति व मानव हृदय के बिम्ब

प्रतिविम्व सम्बन्ध ही महत्व देते हैं, कुछ केवल वैयक्तिता पर ही ध्यान केन्द्रित करते हैं और अन्य सब भावनाओं को उसी में अन्तर्भूत कर देते हैं। किन्तु किसी एक भावना को लेकर छायावादी व्याख्या सर्वथा अधूरी रहेगी।" अतः जिस प्रकार योरोप में रोमांटिक काव्य के आलोचक वहाँ मुख्य विशेषताओं को गिनाकर रोमांटिक-काव्य की व्याख्या करते हैं उसी प्रकार छायवादी काव्य के दृष्टिकोण को इन तत्वों को सामने रख कर समझा जा सकता है। टेकनीकल दृष्टि से छायावाद, जैसा कि हमने देखा, एक शैली मात्र न होकर एक भाव पद्धति विशेष है। प्रकृति व जीवन को देखने का एक निजी दृष्टिकोण जिसको समझाने का ऊपर प्रयत्न किया गया है, अब शैली तत्व को संक्षेप में और देख लीजिये।

( १ ) "कल्पना-प्रवणता" यथा 'पंत' की बादल, छाया आदि कवितायें।

( २ ) "उपमेय के लिये सूक्ष्म उपमान—

यथा- उच्चाकांक्षाओं से तरुवर।

( ३ ) धर्म के लिये धर्मी का प्रयोग (लक्षणा शक्ति के अंतर्गत)।

करुण भौंहों में था आकाश,
विचारों में बच्चों के साँस।

आकाश का गुण गम्भीरता व शून्यता है, उसे न कह कर 'आकाश'—धर्मी का ही प्रयोग किया।

( ४ ) दुहरी लक्षणा—

मर्म पीड़ा के हास, (हे मेरे दुःखी मन)।

( ५ ) "चित्र-विधान" या "मूर्तिमत्ता"—

खैंच कर ऐंचीला भ्रू-सुरचाप।
शैल की सुधि यों बारम्बार॥
हिला हरियाली का संदुकूल।
झुला झरनों का झलमल हार॥

जलद पट से दिखला मुख चन्द्र।
पलक पल-पल चपला के मार॥

( ६ ) "प्रतीक-विधान—

क्या तुम्हें देखकर आते यों, मतमाती कोयल बोली थी।
उस नीरवता में अलसायी कलियों ने आँखें खोली थीं॥

यहाँ तुम ( वसन्त ) यौवन के लिये, कोयल उल्लास के लिये, कलियाँ मधुर अभिलाषाओं के लिये प्रयुक्त हुआ है।

( ७ ) ध्वन्यात्मकता—

तड़ित सा सुमुखि तुम्हारा ध्यान।
प्रभा के पलक मार उर चीर॥
"गूढ़ गर्जन कर जब गम्भीर।
धधकती है जलदों की ज्वाल॥"

× × × ×

शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर।

'पन्त'

अब हम छायावादी काव्य की महत्ता पर संक्षेप में विचार करके इस प्रसंग को समाप्त करेंगे।

छायावाद की देन है इतिवृत्तात्मक कविता के विरुद्ध कल्पना व सौन्दर्य की सृष्टि। विचार की दृष्टि से आचार प्रधान पौराणिक संस्कृति के स्थान पर नवीन मानव-वादी दृष्टिकोण की स्थापना। छायावाद सुधार न लेकर सज्जा लेकर चला, उपदेश न लेकर आद्रता लेकर बढ़ा। विश्व-करुणा को इसने जन्म दिया और जीवन को संवेदना, भावुकता तथा छाया-चित्रों से रंजित किया। यही उसकी ऐतिहासिक उपयोगिता है। किन्तु कुछ आलोचकों ने इस युग को केवल पलायन वादी, कुंठा वादी, अतृप्ति वासना-मूलक, पराजय व कायरता प्रधान युग कहा यह छायावाद के प्रति नहीं 'कला' के साथ अन्याय है, यह आलोचना नहीं आत्म प्रवंचना है।

इस कलात्मक-छाया-सृष्टि को जन-वाद के विरुद्ध बतलाया सर्व प्रथम मार्क्सवादी आलोचकों ने।

इन विचारकों ने 'छायावाद' को सामंती-संस्कृति के विरुद्ध पूँजीवादी क्रांति ठहराया।

छायावाद की कला के प्रतिपूर्ण निष्ठा दिखाते हुये इन विद्वानों ने उसकी वस्तुगत विचार पद्धति को जनवाद के विरुद्ध कहा। चूँकि छायावाद आदर्शवादी विचारधारा को लेकर चलता है, सामाजिक दायित्व की चिंता न कर, साहित्य को केवल सामाजिक चेतना न मानकर व्यक्तिगत 'राग-विराग' को वाणी देता है। कल्पना लोक में विचरण कर यथार्थ की उपेक्षा करता है संघर्ष से भय खाता है, यथार्थ की चुनौती स्वीकार नहीं करता अतः वह प्रगतिशील न होकर प्रतिक्रियावादी है। कला व भाषा के सम्बन्ध में भी यह शिकायत रही कि यह साहित्य केवल सामाजिक चिंताओं से मुक्त, दूसरों के श्रम पर जीवित रहने वालों के मनोरंजन के लिये हैं अतः पूँजीवाद का सहायक है। स्वयं छायावादी कवियों ने कल्पना का पथ छोड़ कहा:—

तुम वहन कर सको जन मनमें मेरे विचार।
वाणी तेरी चाहिये तुम्हें क्या अलंकार॥

'निराला' ने भी अपनी छायावादी रचनाओं पर खेद प्रकाशन किया और जनता को माध्यम बना कर लिखना प्रारम्भ किया।

ऐतिहासिक विकास-क्रम में छायावाद को रखकर देखने से भी 'छायावाद' पूँजीवादी संस्कृति का खिलौना नहीं रहा न वह मात्रपलायन का प्रतीक बना। किन्तु 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला', 'महादेवी' के साहित्य में जनवादी तत्वों का अभाव नहीं है यह स्वयं प्रगतिवादी आलोचकों के आचार्य डा० रामविलास शर्मा स्वीकार करते हैं। यों प्रगतिवादियों में भी 'यशपाल' प्रयोगवादियों में 'अज्ञेय' आदि बहुत से तत्व 'जनवाद' के विरुद्ध मिलते हैं तथापि उन्हें 'प्रगतिवाद' के पंक्ति से सहसा दूर नहीं फेंका जासकता, क्योंकि 'साहित्य' का

सृष्टा व्यक्ति होता है और व्यक्ति की सीमायें होती हैं, युग का प्रवाह होता है। छायावाद अपने १६ वर्षों के अल्प समय में शून्य भित्ति चित्र ही नहीं बनाता रहा उसने रीतिकालीन शृङ्गार के विरुद्ध सूक्ष्म और परिष्कृत शृङ्गार की परम्परा डाली, अन्तर्मन के विकास के लिये उसकी आदर्शात्मक विचार धारा उपयोगी नहीं है परन्तु यथार्थ से सहम कर इन कवियों ने 'व्यक्तिवादी' विचारधारा की सीमा का अति क्रमण किया, युग की परिस्थितियां बदल चुकी थीं. समाज क्षत-विक्षत था, नवोन्मेष के युग में यह असम्भव था कि कवि अपने में ही संकुचित बना रह सके अतः प्रतिक्रिया स्वभाविक थी। चेतना से निर्लिप होकर सौन्दर्य साधना निष्क्रियता की वृद्धि में सहायक होने लगी अतः छायावाद का पतन इसलिये नहीं हुआ कि उसमें अन्विति का अभाव था, शब्दमोह था, अलंकृति थी अपितु इसलिए हुआ कि उसमें यह शक्ति न थी की वह परिस्थिति को संम्हाल लेता, नवीन चेतना का समन्वय कर पाता। वह निराधार आधार में रम कर अब कल्पना के पंखों पर न उड़ सकता था, वह अब 'शाश्वत के नाम पर अपनी सूक्ष्म अनुभूतियों का, जिनका ऐतिहासिक मूल्य नष्ट होचुका था, चित्रण अधिक न कर सकता था उसे प्रतीकों में न बोलकर जनता के स्वर में स्वर मिलाना था, अब आद्रता व द्रवण प्रवृत्ति की आवश्वयकता न थी अब आवश्यकता थी, जनता को वाणी देने और छायावादी यही नहीं कर सका, विशेषकर 'बच्चन', 'महादेवी' आदि कावि अब तक काव्य में 'व्यक्तिवाद' की विवृति करते रहे। 'पंतजी' बीच में बौद्धिक सहानुभूति लेकर 'ग्राम्या' तक गये भी परन्तु पुनः 'स्वर्ण किरण' से खेलने लगे अतः प्रतिक्रिया में 'छायावाद' को कुछ अधिक कस दिया गया अब आवश्यकता इस बात की है कि एक ओर तो 'निराशावादियों' 'हालावादियों आदि का डटकर विरोध हो और प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी के साहित्य की समदृष्टियों से स्वस्थ व्याख्या हो। 'प्रसाद' का आनंदवाद महादेवी की 'करुणा'

निराला का अद्वैतवाद, पंत के "सांस्कृतिक स्वप्न" आलोच्य विषय हों और जनवादी तत्व चयन कर सम्मुख रखे जावें अब ध्वंसात्मक या 'प्रतिक्रियात्मक आलोचना से केवल हानि होगी। संकुचित दृष्टिकोण से देखने पर 'छायावादी साधना' एक अभिशाप सी लगती है परन्तु क्या 'पल्लव' की संवेदनामय कला, दीपशिखा की करुणामय मार्मिक वाणी व्यर्थ ही रही ?

जब गीतिका का कवि कहता है—

जीवन की तरी खोलदे रे, जग की उत्ताल तरंगों पर।
पास ही रे हीरे की खान—खोजता अरे कहां नादान ?

जब आधुनिक युग की मीरा पुकारती है—

तम असीम, तेरा प्रकाश चिर
खेलेंगे नव खेल निरन्तर ॥
तम के अणु, अणु में अच्युत सा
अमिट चित्र अंकित करता चल
सरल सरल मेरे दीपक जल।

'जब' 'पन्त' का कवि कहता है—

पंकिल जीवव में पंकज सी।
शोभित आप देह से ऊपर ॥
वही सत्य जो आप हृदय से।
शेष शून्य जग का आडम्बर ॥
अतः स्वकीया या परकीया।
जन समाज की है परिभाषा ॥
काम-मुक्त और प्रीति युक्त !
होगी मनुष्यता मुझको आशा ॥

और जब 'प्रसाद' का 'आत्म' मुखरित होता है—

चेतना का सुन्दर इतिहास।
अखिल मानव-भावों का सत्य ॥

विश्व के हृदय पटल पर दिव्य।
अक्षरों में अंकित हो नित्य॥

तब 'छायावाद' अभिशाप था, ऐसा नहीं लगता। हमें आशंका है कि प्रतिक्रिया की झोंक में हमीं कहीं प्रतिक्रियावादी न बन जायें।

'पंत का काव्य व उनका युग' छायावादी काव्य पर एक घोर प्रतिक्रियावादी पुस्तक है। लेखक यशदेव जी ने समष्टिरूप से विचार कम किया है, कतिपय कविताओं को डा० देवराज की तरह चुनकर उनकी शवक्रिया उपस्थित की है और भ्रांत धारणाओं का पोषण किया है। यदि 'छायावाद' के प्रति आपको घृणा है तो उसका 'ज्वार' शांत होने पर ही लिखना चाहिए था फिर हिन्दी साहित्य के सारे आलोचकों, कवियों पर गन्दे आक्षेप किये हैं, यह अशोभनीय है। 'पन्त' की सूक्ष्म व मनोहर कला, शब्द शिल्प, ध्वन्यात्मकता, परिष्कार, कल्पना वैभव, सुकुमार चित्र राग आदि जिनके लिए वे प्रसिद्ध हैं सब की उपेक्षा की गई है। कला की दृष्टि से नवीन काव्य का सर्वश्रेष्ठ कवि 'पन्त' इस पुस्तक में इतना अधिक अपमानित हुआ है कि लज्जा से सिर झुक जाता है स्वयं प्रगतिवादी कवियों पर मनमाने आरोप लगाये गये हैं किन्तु किया क्या जाय। प्रेस का सत्य यही है वह भी जनतंत्र का—

"जो लिखदो, छप जाय, सहज सम्भाव्य है।"

जिस युग को पन्त, महादेवी, निराला व 'प्रसाद' जैसे कवि मिले उसे यदि ऐसे आलोचक भी मिले तो उलटा उनका ही गौरव चढ़ा है, आकाश पर थूकने से मुख पर ही आता है। अस्तु

महादेवी के शब्दों में केवल कठफोड़ा बनने से दोषों के कीड़े ही हाथ आवेंगे। हम अपने सीमित दृष्टिकोण से नयी पीढ़ी के शतशत साहित्यकों को प्रतिक्रिया वादी बनाने के उत्तरदायी होंगे।

छायावाद अपनी तथाकथित वैयक्तिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देकर भी उच्चकोटि का काव्य बन सका। छन्द, भाषा शैली,

संगीत, माधुर्य, कल्पना प्रत्येक दृष्टि से उसने क्रांति का एक स्तर बनाया, सौन्दर्य की अनुपम मुद्राओं का चित्रण से उसने हमारा काव्य उपवन, जो झाड़ झखाड़ों व वासना के गन्दे नालों से दूषित था, सजाया, यह सजावट कोरी सजावट न थी, उसने एक ओर मानवता के सौरभ से दिगंत को सुरभित किया, जीव मात्र के लिए 'करुणा' का वरदान दिया। कण कण में एक ही सत्ता का दर्शन कर हमें विश्व-मानव वाद की ओर बढ़ाया और साम्प्रदायिक तत्वों को दबाया। कला के सूक्ष्म अंकन के साथ मनोवैज्ञानिक भित्ति दृढ़ की, मानव वृत्तियों का बारीक चित्रण किया, जड़ चेतन का परस्पर सौहार्द दिखाकर आत्म-विस्तार का पथ खोल दिया। एक परिष्कृत-रुचि को जन्म दिया, भारत के श्रान्त, क्लान्त, पराधीन क्षणों में उसके व्रणों को उसने सहलाया, अतीत का गौरव से उसके प्राणों में स्पन्दन भरा और उसे आगे की क्रांति के लिए प्रस्तुत किया। छायावादी ने दिशाओं के द्वार खोलकर विराट दृष्टिकोण लेकर नवीन युग का अभिनन्दन किया, अतः वह केवल साध्यावस्था का काव्य नहीं न पलायन है, उसमें जीवन की अमिट प्यास, निराशा के भीतर से झलकती हुई शाश्वत आशा, मनुष्य के प्रति अमर अनुराग उत्पन्न करने वाले तत्व उपस्थित हैं यदि हम उन्हें न देखें तो यह उन कलाकारों का दोष नहीं। रही आक्षेपों की बात वह प्रत्येक युग की अपनी सीमा होती है, छायावाद में भी ऐसे पतनोंन्मुख तत्व मिलते हैं—बहुत मिलते हैं परन्तु वही सब कुछ नहीं है उसके अतिरिक्त कुछ और भी है उस 'कुछ' को हमें पहचानना होगा अन्यथा आगे की पीढ़ी हमारे कृतित्व की इस उपेक्षा को सहन न कर सकेगी, कला के क्षेत्र में तो हमें अभी उनसे बराबर सीखते ही रहना है। अस्तु।

# 'रहस्यवाद'

'व्यक्त' जगत के सम्बन्ध में सोचते सोचते 'व्यक्ति' उसके कारण रूप 'अव्यक्त' पर जा पहुँचा। अपनी दिव्य कल्पना शक्ति केवल अपने पर संकुचित न कर उसने उस अज्ञात और 'अनंत शक्ति' के साथ अपना शाश्वत संबंध दृढ़ कर लिया। उसने अपने अपूर्ण [illegible]वन में 'पूर्णता' लाने के लिये अपने को ही उस '[illegible] अंश समझा, क्षणिक एवम् नश्वर पदार्थों में उ[illegible] और शाश्वत सत्ता की खोज की। उस 'सत्ता' के [illegible]भिन्न प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किये। मानवीय सम्बन्धों में सबसे मधुर और तीव्र सम्बन्ध 'दाम्पत्यभाव' का होता है अतः उसने उस 'परमात्मा' को पुरुष और अपनी 'आत्मा' को स्त्री मान कर मिलन-विरह सम्बन्धी प्रेमोद्गारों से पूर्णता पाने का प्रयत्न किया, उस आध्यात्मिक सत्ता का विरल क्षणों में आभास पाकर उसके विरह में मानवात्मा तड़प उठी और ब्रह्म व आत्मा के तादात्म्य की अवस्था को जब वाणी मिली तब वह 'रहस्यवाद' कहलाया।

मानव की यह पहुँच आकस्मिक न थी, हम इस विकास को तो आगे देखेंगे, यहाँ यही समझना चाहिये कि प्रथम दर्शन शास्त्र में विचारकों ने युगों तक उस परम तत्व तथा मानव अन्तर-स्थित आत्मा को एकता की घोषणा की। उपनिषदों का प्रयत्न इसका साक्षी है। साधकों ने अपनी कठिन साधना से इस असाधारण स्थिति की अनुभूति प्राप्त कर उस 'अद्वैत अवस्था' की सत्यता प्रमाणित की। इन्हीं साधकों ने इस 'परमोच्च स्थिति' को सांकेतिक

शैली में अभिव्यक्ति दी क्योंकि उस अनिर्वाचनीय† आनन्द को प्रकट करने में साधारण रूप से वाणी असमर्थ रही अतः रूपकों, प्रतीकों की पद्धति ग्रहण की गई। आगे 'कवि-साधकों' ने भी इस "आत्मा व परमात्मा" की इस अद्वैत-स्थिति का वर्णन किया, इन्होंने भावना की पद्धति ग्रहण की, चिंतन की नहीं। भाव द्वारा निरपेक्ष ब्रह्म भी 'प्रिय' बन गया और आत्मा विरह-विकला 'नारी'। और इस प्रकार आत्मा व परमात्मा के बीच जिज्ञासा, विश्वास, विरह, मिलन आदि की अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद कहलाई।

'रहस्यवाद' के सम्बन्ध में विभिन्न परिभाषायें दी गई हैं। संक्षेप में हम उन पर विचार करेंगे।

आचार्य शुक्ल—*"रहस्यवाद.......... कवि अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। रहस्यवाद के अन्तर्गत रचनायें उस पहुँचे हुये पुराने संतों या साधकों की वाणी के अनुकरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधि-दशा में नाना-रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थी।"

"चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भाव के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।"

रामकुमार वर्मा—'रहस्यवाद जीवात्मा की वह अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य व अलौकिकशक्ति से अपना शान्त व निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में अभिन्नता हो जाती है।"

गंगाप्रसाद पांडेय—मनुष्य जबसे अपनी मानवीय विवशता में

---

† आनन्दद्वेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति—आनन्दम्प्रयान्त्यभिसंविशन्ति-उपनिषद्- आनन्द से सृष्टि हुई, आनन्द की ओर ही इसकी गति है।

* हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६६८।

अथवा प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में किसी एक अलक्षित शक्ति के प्रभाव तथा अस्तित्व को कल्पना करने लगा तभी से रहस्यवाद का बीज रोपण हुआ·········"रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके भावावेश में प्राणी अपने असीम और पार्थिक अस्तित्व से उस असीम एवं अपार्थिक महा अस्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करने लगता है।" ×

महादेवी वर्मा—+ "रहस्यानुभूति में बुद्धि का ज्ञेय ही हृदय का प्रेम हो जाता है।"

जब प्रकृति की अनेक रूपता में परिवर्तनशील विभिन्नताओं में, कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश, एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा परन्तु इस सम्बन्ध में मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में अनुणा जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते। इसी से हम अनेक रूपता के कारण (ब्रह्म) पर एक मधुरतम व्यक्तित्व आरोपण कर उसके निकट आत्म निवेदन कर देना इस काव्य का (छायावादी) दूसरा सोपान नाम दिया गया जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद का नाम दिया गया'※

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सब एक मत होकर परमात्मा के प्रति आत्मा का आत्मनिवेदन—( जिज्ञासा-आभास-मिलन विरह आदि ) ही रहस्यवाद कहलाता है। यह तभी हो सकता है जब आत्मा व परमात्मा की एकता सिद्धान्ततः स्वीकार की जाये और यह 'दर्शन' ने सिद्ध कर दी है अतः भाव पद्धति पर कवियों के लिये रहस्यवादी कार्य का सृजन सरल हो गया तभी कहा गया कि

× छायावाद और रहस्यवाद, गंगाप्रसाद पांडेय

+ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृष्ठ-११२,

※ महादेवी का विवेचकात्मक गद्य—

चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है वही भाव के क्षेत्र में रहस्य-वाद है।

"दर्शन से जो सिद्ध है, धर्म से विश्वसनीय है वही काव्य में प्रेय बन जाता है"१

विकास—रहस्य भावना की अवतारणा मानव मनके मूल में हैं। सृष्टि के वाह्य व्यापार देखकर आदि 'मानव'-समुदाय आतंकित मात्र था। सम्भवतः प्रकृति शक्तियों की पूजा का विधान इसीलिये किया गया था। सृष्टि के रहस्य पर कार्य कारण के नाम से मानव का ध्यान किसी 'सत्ता' पर गया होगा जो सारे प्रपंच का संचालन करती है, वेद तथा विशेषताओं 'वेदान्त में इस सत्ता की खोज हो चुकी थी और साथ ही इसकी वंदना भी प्रारम्भ होचुकी थी साथ ही उस सत्ता को ही शाश्वत सत्य माना गया और सारे प्रपंच को नश्वर तथा मिथ्या तक कहा गया फलतः उस समय के साहित्य में 'आत्मा' की सत्ता स्थापना पर सबसे अधिक जोर दिया गया है और उसे भी अज, अखण्ड, अविनाशी, अनन्त और पूर्ण माना गया है। आत्मा व परमात्मा ऐक्य साधना पर ही बल दिया गया और बाह्य कर्यादि महत्व नहीं दिया गया है।

२ ईशावास्यमित्यादयो मन्त्राः कर्मस्व विनयुक्ताः।

३ "सो ऽ कामयत जाया में स्यात्"

आत्मा की इस अखण्डता, सर्वगतत्व, शुद्धत्व, सर्वज्ञता, सर्वोत्कृष्टता, सर्व प्रभुत्व की स्थापना के कारण परमात्मा से उसके एक्य को निर्देशित करने वाले बहुत मंत्र मिलते हैं जोकि आगे चलकर रहस्य-वादी कवियों के लिये प्रेरक हुये। उपनिषदों के पहले ही यह भावना मिलती है—

---

१ 'मानव' सुमित्रानन्दन पंत पृष्ठ १०५

२ ईशावास्योपनिषद् } देखिये शांकरभाष्य

३ बृहदारण्यक उपनिषद }

‡ उत त्वया तन्वा संवदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि

ऋ० ७–८६–२

( कब मैं अपने इस शरीर से उसकी स्तुति करूँगा, उसके साथ साक्षात सम्वाद करूँगा और कल मैं उस वरण योग्य के हृदय के भीतर एक हो सकूँगा। )

क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो, अग्निः क्व प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतम, स्विदेव सः।

अथर्व० १०–७–४

( यह सूर्य किसकी अभिलाषा में दीप्तमान है, यह पवन कहाँ पहुंचने की इच्छा से निरन्तर बहता है। यह सब यहाँ पहुंचने के लिये चले जा रहे हैं, उस आश्रम को बताओ, वह कौन सा पदार्थ है ? )

यह रहस्यानुभूति वेदों व उपनिषदों में हमें बराबर मिलती है। सांकेतिक शैली देखिये—

❀ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समान वृक्षं परिष्स्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पल स्वाद्वत्य—
नश्नन्नन्यो अभिचाक शीत ॥

( साथ रहने और समान आख्यान वाले दो पक्षी एक ही तरु पर बैठे हैं उनमें एक स्वादिष्ट फल खाता है और दूसरा भोग न करके देखता रहता है )

रहस्यवादी काव्य के विरोधी दाम्पत्य सम्बन्ध द्वारा आध्यात्मिक आभास की व्यक्ति देना गर्हणीय समझते हैं परन्तु वेदों में भी आत्मा को नारी माना गया है।

---

‡ quoted by महादेवी वर्मा—

❀ मुंडक उपनिषद quoted by महादेवी वर्मा

※ इम कल्याण्य जरा मृत्यस्यामृता गृहे—
'अथर्ववेद'

( यह कल्याणी कभी जीर्ण न होने वाली और मरण शील शरीर में अमृता नित्य है )

प्रसादजी‡ ने 'रहस्यवादियों' में आनन्दवादियों की एक अति प्राचीन परम्परा बताई है। आनंदवाद के प्रतिनिधि थे इन्द्र और विवेकवाद के वरुण। आगे मगध के अनात्मवादी ( व्रात्य ) आर्य जैन व बुद्ध के रूप में प्रकट हुए, उधर आगमों में आनंदवादी परम्परा प्रवाहित होती रही जो तांत्रिकों व सिद्धों में कहीं प्रकाश और कहीं मलिनता पाती हुई प्रगति करती गई, दूसरी विवेकवादी व दुःखवादी दर्शन पौराणिकता को लेकर बढ़ते गए, कृष्ण में दुःखवाद व आनंदवाद का समन्वय भी दिखलाई पड़ा पर भक्त-सम्प्रदाय प्रायः संसार को दुःखमय मानकर वैराग्य का ही उपदेश देते रहे। परन्तु उसमें द्वैतभावना व समरसता का अभाव ही रहा आगे मायावाद भी विवेकवादी ही रहा। आगे शंकर के प्रतिक्रिया के आधार पर वैष्णव दर्शन भी विवेकवादी रहे अतः भक्तों के रहस्यवाद में भी दुःख ही प्रधान रहा। निर्गुण स्कूल में भी विरह व दुःख प्रधान रहा किन्तु सिद्धों की रहस्य परम्परा में तुकनगिरि, व रसालगिरि लावनियों में शुद्ध रहस्यवाद की धारा बहाते रहे। प्रसादजी आगे कहते हैं—

§ "आज साहित्य में विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से प्राप्त होता है। यह प्रकृति या शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य लहरी के 'शरीरंत्वं शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी का रहस्यवाद स्वाभाविक रूप से विकसित होकर आया है।"

---

※ quoted ly महादेवी वर्मा

‡ काव्य कला और अन्य निबंध—प्रसाद

§ वही

भारत में 'प्रसाद' व 'महादेवी' जी के विवेचन से स्पष्ट है कि रहस्यवाद की एक परम्परा रही है यद्यपि काव्य में कोई ऐसी धारा नहीं बनी जैसी वर्तमान युग में प्रवाहित होती रही परन्तु रहस्य-वादी-काव्य के स्फुट भाव यत्र तत्र बिखरे मिलते हैं और दर्शन में तो उसका साम्राज्य है हीं। एक बात स्पष्ट समझ लेनी होगी वह यह कि इस सामग्री की ओर भी सर्व प्रथम हमारा ध्यान आकर्षित करने के लिए योरोप ने परिस्थिति उत्पन्न की। रोमांटिक काव्य से प्रभावित जब रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' के स्वर प्रसाद के कानों तक आ टकराए तब उन्होंने अपने 'दर्शन' व साहित्य को टटोला और उन्हें उक्त परम्परा प्राप्त हो गई और चूँकि रहस्य-काव्य युग का तकाजा था अतः प्रसाद ने शेले, प्लेटो व हीगल की ओर न देख कर इसी ऊपर संकेतित सामग्री की ओर देखा। प्रसाद को शैवा-गमों को आधार बना कर अपना आनंदवाद हमें दिया और 'आँसू' तथा 'कामायिनी' में रहस्य-काव्य को चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया, अस्तु।

आचार्य शुक्ल रहस्यवाद' के साथ कभी समझौता न कर पाए उनके अनुसार यह 'रहस्यवाद' सूफियों के यहाँ से उड़ा और विला-यत में जा गिरा, वहाँ ईसाई संतों के छायाभासों Phantasmata बन कर घूमता रहा। अबर क्राम्बे, ब्लेक, और 'रवीन्द्र के दोस्त' कीटस ने इसी की साधना की और विलायत से इस रहस्यवाद ने फिर 'उड़ी' लगाई तो बंगाल आकर गिरा, फिर 'रवीन्द्र' की प्रतिध्वनि बनकर 'प्रसाद' व 'निराला' को अपने प्रवाह में बहा ले गया। शुक्लजी ने 'रहस्यवाद' के विरोध में एक पुस्तक* ही लिख डाली।

इसमें रहस्यवाद को विलायती काव्य सिद्ध कर दिया गया। साथ ही रहस्यानुभूति को दो भागों में बाँट दिया गया (शुक्लजी ने इस प्रकार के अनेकों विभाग किए हैं जो अवैज्ञानिक और अपूर्ण होते हुए भी आज चल रहे हैं) (१) शुद्ध रहस्यानुभूति (२)

* काव्य में रहस्यवाद

साम्प्रदायिक रहस्यानुभूति आचार्य जी के अनुसार शुद्ध रहस्यानुभूति वह है जिसमें अज्ञात के प्रति जिज्ञासा मात्र दिखाई गई हो और (२) साम्प्रदायिक रहस्यवाद वह है जिसमें अज्ञात के प्रति ललक या अभिलाषा का प्रदर्शन हो। आपके अनुसार ब्रह्म सृष्टि के रूप में अपने को व्यक्त करता है और कविता इसी व्यक्त की अभिव्यक्ति है, अव्यक्त की नहीं। अतः 'अज्ञात' कविता का विषय हो ही नहीं सकता यदि बनाया भी जाय तो उसके प्रति प्रकृति का वर्णन करते हुए मधुर संकेत मात्र किए जा सकते हैं, आत्मा को नारी बना कर और परमात्मा को पति बना कर चित्रमयी भाषा में, आकाश-गंगा में तैरने, हृदय की नसों का तार बजाने, प्रियतम असीम के संग नग्न प्रलय सा ताण्डव करने या मुँदे नयन पलकों के भीतर किसी रहस्य का सुखमय चित्र देखने की कविता कहना ठीक नहीं है। इस दृष्टि से आपने रहस्यवादी काव्य को विलायती काव्य सिद्ध कर दिया।

"अज्ञेय और अव्यक्त को, अज्ञेय और अव्यक्त ही रखकर क़ाम वासना के शब्दों में प्रेम व्यंजना भारतीय काव्य धारा में कभी नहीं चली, यह स्पष्ट बात "हमारे यहाँ यह भी था" की प्रवृत्ति वालों को अच्छी नहीं लगती। इससे खिन्न होकर वे उपनिषद से लेकर तंत्र व योग—मार्ग तक भी दौड़ लगाते हैं (यहाँ स्पष्ट संकेत प्रसाद जी की ओर है) योग रहस्यमार्ग है, तंत्र रहस्यमार्ग है पर ये सब साधनात्मक हैं, प्रकट भावभूमि या काव्य भूमि के भीतर चले हुए मार्ग नहीं" (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६५२)।

कौन कहता है ? तंत्र कविता है, योग रहस्य का महाकाव्य है कहना यह है कि 'अज्ञात' के प्रति हमारे यहाँ ऋषियों दार्शनिकों साधकों ने जिज्ञासायें भी प्रकट की हैं और स्थान पर नारी पुरुष के सम्बन्ध को लेकर जीव ब्रह्म के बीच लालसा की अभिव्यक्ति भी की है अतः यद्यपि विलायत के रोमांटिक काव्य की रहस्य भावना से

प्रेरित होकर रवीन्द्र ने रहस्य गीत गाये किन्तु न तो रवीन्द्र की पृष्टभूमि विदेशी थी और न 'प्रसाद' व 'निराला' की। 'प्रसाद'व' 'महादेवी' 'निराला' तीनों ने आत्मा को स्त्री ही रक्खा है। आँसू में अवश्य यत्र तत्र फारसी का प्रभाव लक्षित होता है पर वह तो अपवाद स्वरूप ही है। हमारे रहस्य-काव्य की आत्मा भारतीय है, प्रतीक राष्ट्रीय हैं, साधना अपनी है, जिसके पीछे उपनिषद तथा तंत्र योगादि की पुष्ट परम्परा है। यह तो 'परिस्थितियाँ थी जिनमें रहस्य-वादी काव्य ने उन्मेष प्राप्त किया हमारे कवि भी अपनी परम्परा को खोजकर अपने ढंग से लिखने लगे अतः रहस्यकाव्य को विलायती कहना समीचीन नहीं हैं।

रहा काव्य का विषय 'अव्यक्त' नहीं हो सकता, यह भी दुराग्रह है, काव्य का विषय तो सब हो सकता है, व्यक्त भी और अव्यक्त भी। यह तो कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति की सामर्थ्य और सचाई है कि वह उन्हीं भावनाओं को पाठकों के हृदय में जगा पाता है या नहीं ? यदि नहीं तो 'व्यक्त' जगत का कवि भी सफल नहीं कहा जा सकता (जैसा कि अनुभूति के अभाव में प्रगतिवादी कवियों की दशा दयनीय है) तब कोई यह कह बैठे कि 'व्यक्त' जगत की वस्तु काव्य का विषय नहीं हो सकती तो यह भ्रांति ही होगी। रहस्य-काव्य में धूमिलता, अन्विति का अभाव था, तो उसके लिए 'अव्यक्त' दोषी न था, दोषी था कलाकार, जो अलौकिक अनुभूति को लौकिक नहीं बना पाता अन्य लोग कहेंगे कि वे व्यक्तिगत-निराली अनुभूतियाँ हैं उनका साधारणी करण हो नहीं सकता, किन्तु यह भी भ्रम है। २० वीं शताब्दी के पूर्व सारा भारत आस्तिक था और अब भी काफी प्रतिशत जन संख्या आस्तिक है, उनमें से ऐसे कितने हैं जिन्हें राम या कृष्ण के दर्शन होते हैं किन्तु फिर भी जैसे भक्तों की अभिव्यक्तियों ने उनके हृदय को उदात्त बनाया है उन्हें समर्पण सिखाया है, उसी प्रकार रहस्य की अनुभूति भी असाधारण नहीं कही जा सकती प्रत्येक विचारक, सृष्टि के रहस्य को समझना

चाहता है अतः विना साधक हुए भी
गई जिज्ञासा, ललक को वह समझ स
आलम्बन बनाने में असम्भावना कहाँ
को विधि, हरि शम्भु नचावन हारे'
वार 'यह रहस्य जाने कोउ कोऊ'
हैं, उत्तर * काण्ड में अत्यन्त
विवेचन किया है क्या इनका सा
क्योंकि शुक्ल जी 'तुलसी वाद' में
मानते हैं अतः पर पक्ष का खण्डन
सकता है। रहस्यवादी काव्य इसलिए
करण है और न 'अव्यक्त' काव्य के
रखता है।

शुक्लजी के अनुसार कबीर,
का प्रभाव था परन्तु संतों के
यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
प्रमाणित कर दिया है। और फा
अद्वैतवाद का ही अनुकरण था
है। ( देखिये तसव्वुफ और सूफीमत,

अतः शुक्ल जी की रहस्यवादी स
विचार की आवश्यकता है। पं० न
भी है। वे कहते हैं—

"उनके ( शुक्ल जी के ) समस्त
नाओं पर आश्रित हैं यद्यपि शास्त्र का
है......उनकी व्याख्याओं और विवेचनों
का उद्घाटन सर्वत्र नहीं पाया जाता।"
सदी में भी विद्वत्ता-पूर्वक यह दिखाया है

* गंगाप्रसाद पांडेय—'छायावाद व
* महाकवि सूरदास-भूमिका पृष्ठ ६

ने "लोकमंगलवाद" का केवल संकुचित दृष्टिकोण सामने रख कर चले और इन्होंने 'निवृत्ति' व 'प्रवृत्ति' पक्षों को दो विरोधी शिविरों में रखकर भ्रान्त धारणाओं को जन्म दिया 'सूरदास' तथा रहस्य-वादी कवियों के मुक्तक काव्य के साथ इसीलिये वे उचित न्याय न कर सके और "आलोचना के क्षेत्र में भी एक वर्ग को व्यर्थ नीचा देखना पड़ा।"

## फारस में रहस्यवाद का विकास

इस्लाम में आत्मा ( रूह ) व 'परमात्मा' का सम्बन्ध "बन्दा व मालिक" का सम्बन्ध रहा। उपासना प्रधान इस्लाम में रहस्य का स्थान ही कहाँ था, वहाँ तो पैगम्बर की आज्ञाओं पर चलना तथा उसके माध्यम से ही 'खुदा' को पाने की चर्चा रही। फारस में 'सूफियों' ने रहस्य परम्परा स्थापित की। ईरान पर भारतीय अद्वैत सिद्धान्त का प्रभाव प्रारम्भ से ही रहा। 'यूलुस' यूहन्ना पर बौद्धों का। यूनान के प्लोटोनिस तथा डायनोसिस पर अद्वैत वेदान्त का प्रभाव लक्षित होता है। प्लोटिनिस को सूफी 'शेख अकबर' कह कर आदर देते हैं।+ इस्लाम के आचारवाद के विरुद्ध सूफियों में गुह्य साधना, चमत्कार, सुरा-प्रेमोन्माद चला, इसी को धार्मिक रूप दे दिया गया और लौकिक मादन भाव ही रहस्यवाद का आधार बन गया। सेनानी याहोवा ने इन्हें तलवार की शक्ति से दबाना भी चाहा परन्तु इनका विकास न रुका, ये साधक आत्मा व परमात्मा के प्रेम के गीत गाते ही रहे। 'आत्मा' के प्रेम व विरह को अभिव्यक्ति मिलती रही, सूफी उस रहस्यमय प्रिय का आभास प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में पाकर हर्षोन्मत्त होता था, उस आभास को पाकर उसे 'इलहाम'× हो आता था और

+ तसव्वुफ और सूफीमत—चंद्रावली पांडेय।

× मज़ा शराब ( प्रेम का नशा ) का कैसे कहूँ तुझ से ज़ाहिद !
हाय कम्बख्त तूने पी ही नहीं ॥

चाहता है अतः बिना साधक हुए भी उस रहस्य के प्रति प्रकट की गई जिज्ञासा, ललक को वह समझ सकता है। अतः 'अज्ञात' को आलम्बन बनाने में असम्भावना कहाँ रहती है? तुलसी ने 'राम' को विधि, हरि शम्भु नचावन हारे' से भी ऊपर उठाया है, वे बार बार 'यह रहस्य जाने कोउ कोऊ' कह कर रहस्य समझना चाहते हैं, उत्तर * काण्ड में अत्यन्त रहस्यमय शैली में ज्ञान-भक्ति का विवेचन किया है क्या इनका साधारणी करण हो सकता है? क्योंकि शुक्ल जी 'तुलसी वाद' में श्रद्धा रखते हैं अवतारवाद को मानते हैं अतः पर पक्ष का खण्डन अपनी अमोघ शैली से हो ही सकता है। रहस्यवादी काव्य इसलिए न विलायती काव्य का अनुकरण है और न 'अव्यक्त' काव्य के आलम्बन बनने की अयोग्यता रखता है।

शुक्लजी के अनुसार कबीर, दादू आदि पर फारसी रहस्यवाद का प्रभाव था परन्तु संतों के रहस्यवाद का कम प्रभाव नहीं था यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' में प्रमाणित कर दिया है। और फारसी का रहस्यवाद भारतीय अद्वैतवाद का ही अनुकरण था यह भी विद्वानों ने सिद्ध किया है। ( देखिये तसव्वुफ और सूफीमत, चन्द्रावली पांडेय )।

अतः शुक्ल जी की रहस्यवादी सम्बन्धी मान्यताओं पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। पं० नन्ददुलारे ने इधर संकेत किया भी है। वे कहते हैं—

"उनके ( शुक्ल जी के ) समस्त विवेचन उनकी अपनी उद्भावनाओं पर आश्रित हैं यद्यपि शास्त्र का उल्लेख भी वे करते गये हैं......उनकी व्याख्याओं और विवेचनों में इतिहास समस्त तथ्यों का उद्घाटन सर्वत्र नहीं पाया जाता।"❀ वाजपेयी जी ने 'बीसवीं' सदी में भी विद्वत्ता-पूर्वक यह दिखाया है कि किस प्रकार शुक्ल जी

---

* गंगाप्रसाद पांडेय—'छायावाद व रहस्यवाद'

❀ महाकवि सूरदास-भूमिका पृष्ठ ६।